आत्ममीमांसा प्रवचन

http://www.jainkosh.org

[भाग ५, ६]

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द जी' महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

मुद्रक :
पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस सहारनपुर

१९७०]

सर्वाधिकार सुरक्षित

[न्योछावर ५ रु.

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आप्तमीमांसा प्रवचन

[पंचम भाग]

●

प्रवक्ता :

(अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु. मनोहर जी वर्णी सहजानन्द' महाराज)

●

मोक्षमार्गस्यनेत्तारं भेत्तारं कर्मभूमृताम् ।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ।।

●

लोकमें आप्त कौन है, प्रश्न की समीक्षा– तत्त्वार्थ महाशास्त्रकी बहुत बड़ी टीका करनेके प्रसंगमें स्वामी समंतभद्र चार्यने उक्त मंगलाचरणके प्रसंगको लेकर यह निर्णय बनाना उचित समझा कि लोकमें आप्त कौन हो सकता है ? जो मोक्षमार्गके नेता है, कर्मपहाड़के भेदने वाले हैं और विश्वतत्त्वके ज्ञाता हैं वे आप्त हो सकते हैं । इन तीन विशेषणोंसे यह सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञ निर्दोष और शासनके याने मोक्षमार्गके मूल प्रणायक आप्त कहलाते हैं तो ऐसा निर्णय करनेके प्रसंगमें यह विवाद उठना प्राकृतिक ही है कि ऐसे आप्त भगवान अरहंत ही क्यों हैं ? और उसके कारणके विवरणमें स्वामी समंतभद्र देवने प्रथम उन कारणोंको बताया कि जिन कारणोंसे ही अरहन्त आप्त नहीं कहलाते किन्तु अन्य कारणसे कहलाते हैं, इसे अलंकार रूपमें वर्णित किया है कि मानों आप्तके निर्णयके लिए समंतभद्र चले तो सभी लोकमान्य देवोंको निरखते–निरखते जब अरहंत देवपर दृष्टि पहुंची तो मानो प्रभुकी ओरसे ही ध्वनि हुई कि ठीक है समंतभद्र, हमारी दृष्टि करना उचित है । हम ही आप्त हैं क्योंकि मेरे पास देव आते हैं, आकाशमें चलता हूँ, चामर आदिक विभूतियाँ ढरती है । उसके उत्तरमें कहा गया कि हे प्रभो ! आप इन बातोंसे आप्त नहीं, महान नहीं, क्योंकि ये बातें तो मायावी पुरुषोंमें भी देखी जातीं हैं । तब मानो प्रभु की ओर से फिर प्रश्न हुआ । तब तो चूँकि हमारा शरीर महोदयविशिष्ट है, शरीरके भीतर कोई उपधातुके दोष नहीं हैं और बाहरमें पुष्पवृष्टि आदिक हुआ करती है अतएव मैं महान हूँ । तो समंतभद्र कहते हैं कि शरीरके ऐसे महोदय के कारण तो प्रभु आप महान नहीं हैं,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्योंकि यद्यपि शरीर का इतना स्वच्छ होना एक दिव्य और सत्य है लेकिन ऐसी शुचिता तो देवोंके शरीरमें भी हो सकती है। किन्तु वे हैं रागादिमान, महान तो नहीं, तब तीसरी बार मानो यह प्रश्न हुआ कि हमने एक तीर्थ चलाया है, जैन शासन चलाया है इस कारणसे हम महान हैं, तो उसके उत्तरमें कहा गया कि एक तीर्थ चलानेके कारण भी आप महान नहीं हो, क्योंकि तीर्थ तो अनेकोंने अनेक चलाये। और उन तीर्थोंका एक दूसरेसे विरोध है व उनका परस्पर भी विरोध है। हां, इतनी बात अवश्य है कि परस्पर विरोध होनेके कारण यद्यपि तीर्थ चलाने वाले सबमें आप्तपना नहीं हो सकती, फिर भी कोई तीर्थ चलाने वाला गुरु होता ही है। और, ऐसा गुरु वही तीर्थप्रणेता हो सकता कि जहाँ दोष एक न रहे हों।

निर्दोष निरावरण, सर्वज्ञ प्रभुकी आप्तताका निर्णय और भावैकान्त-वादियोंके आप्तपना हो सकनेका पुनः एक पर्यनुयोग दोषावरणरहित कोई तीर्थप्रणेता गुरु हो सकता है, इस कथनपर पुनः प्रश्न हुआ कि दोष और आवरण मुझमें नहीं रहे यह कैसे निश्चय किया ? तो समन्तभद्राचार्यने कहा कि दोष, आवरण चूंकि औपाधिक चीज हैं और उपाधिके मिलनेपर बढ़ते हैं, उपाधिके घटनेपर कम होते हैं। तो जहाँ उपाधि नहीं रहती वहाँ ये सभीके सभी दोष समाप्त होजाते हैं। यों यह सम्भव है कि कोई आत्मा ऐसा होता है जिसमें दोष और आवरण बिल्कुल नहीं रहते। और इसी कारण उसका इतना शुद्ध विकास होता है कि सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती, त्रिलोक त्रिकालवर्ती सभी पदार्थ उसके प्रत्यक्षमें रहते हैं। और, ऐसे निर्दोष निरावरण सर्वज्ञ हे अरहंत तुम ही हो, क्योंकि निर्दोष हो और युक्ति शास्त्रके अविरुद्ध आपके वचन हैं, जिनके शासनमें कहीं विरोध न आये। जो वस्तुस्वरूपके अनुकूल हो, उस शासनका प्रणेता निर्दोष ही हो सकता है। आपका शासन किसी प्रमाणसे बाधित नहीं होता। किन्तु जो आपके शासन अमृतसे बाह्य हैं ऐसे एकान्तवादियोंका अपना ही खुदका मंतव्य प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे बाधित हो जाता है। एकान्तवादमें जो आशक्त है वे चूंकि अनेकान्त शासनका आलम्बन नहीं लेना चाहते इस कारण उनके यहाँ पुण्य पाप परलोकादिककी सिद्धि नहीं होती। इस सब कथनके होनेके बाद अब मानो भगवानकी ओरसे यह प्रश्न हुआ कि पदार्थोंका भाव ही तो स्वरूप है, अभाव स्वरूप नहीं। तो जब पदार्थोंका अस्तित्व ही स्वरूप है ऐसा निश्चय करते हैं कुछ लोग और उसमें प्रत्यक्ष अनुमान आदिकका विरोध न आये तो ऐसे केवल अस्तित्व को कहने वाले दार्शनिक और उनके गुरुजन भी तो निर्दोष सिद्ध होते हैं। अतएव उन गुरुवोंमें भी, उन ज्ञानी दार्शनिकोंमें भी आप्तपनाकी बात बन सकती है इस कारण व भी स्तुत्य हो जावें ? ऐसा मानो प्रश्न होनेपर आचार्य समंतभद्र कहते हैं—

भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात्।
सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥९॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भावैकान्त माननेमें अभावकी अमान्यता होनेके कारण विडम्बनाका प्रतिपादन– पदार्थोंमें यदि केवल सत्ताका ही एकान्त माना जाय और अभावका निराकरण किया जाय तब तो फिर सभी पदार्थ सर्वरूप हो जायेंगे, अनादि हो जायेंगे, अनन्त हो जायेंगे और स्वरूपरहित हो जायेंगे। किन्तु ऐसा तो आपका या वस्तुका सिद्धान्त है ही नहीं। वह आपके शासनसे बहिर्भूत ही मंतव्य है। इस कारिकाका स्पष्ट अर्थ करनेके अर्थ एक सांख्य सिद्धान्तका आश्रय लेकर बताया जा रहा है कि पदार्थ जैसे माने गए हैं प्रकृति आदिक २५ तत्त्व। सांख्य सिद्धान्तमें भाव एकान्त है अर्थात् पदार्थ सद्रूप है, सदैव सद्रूप है। कभी किसी पर्यायकी उत्पत्ति होती है तो वहाँ यह नहीं माना जा रहा कि वह कार्य अब हुआ है। वह यों भी अनादिसे ही था, पर वह तिरोहित था अब व्यक्त हुआ है। जैसे कि एक बड़के दानेमें कितने ही बड़के पेड़ और कितने ही बड़ोंके फल मौजूद हैं लेकिन उनका आविर्भाव नहीं है। उस बीजको बो देनेसे जो अंकुर पैदा हो जाते, बट वृक्ष हो जाते, आविर्भाव होगया। तो कुछ भी बात ऐसे नहीं होती सांख्य सिद्धान्तके मंतव्यमें किकोई पदार्थ पहिले न था और अब बन गया हो। तो यों इस भावैकान्तके सिद्धान्तमें पदार्थ २५ माने गए हैं और उन पचीसोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है कि मूल प्रकृति तो प्रधान कहलाती है। वह है कार्यरहित वह किसीका कार्य नहीं है। वह मूलभूत चीज है। अब महान अहंकार और ५ तन्मात्रायें अर्थात् स्पर्श रस गंध, वर्ण, शब्द ये ७ प्रकृतिके विकार हैं। और ये किसीके कारण भी हैं और कार्य भी हैं। और ५ बुद्धि इन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और ५ महाभूत पृथ्वी, जल अग्नि, वायु आकाश तथा मन ये १६ विकार हैं, कार्यरूप ही हैं। पर प्रकृति और पुरुष ये विकृतिरूप नहीं हैं, इस तरह २५ तत्त्वोंकी व्यवस्था की गई है। उन २५ पदार्थोंका अस्तित्व ही है। सदा अस्तित्व है ऐसा निश्चय करनेका नाम है भावैकान्त। ऐसे भावैकान्तके माने जानेपर सभी पदार्थोंमें चूंकि किसी भी प्रकारसे अभाव तो माना नहीं गया कुछ तो इतरेतराभाव आदिक जो अभाव हैं उन सब अभावोंका अपह्लव (निराकरण) हो जायगा। अर्थात् अभाव तो रहे ही नहीं। और जब अभाव कुछ रहे ही नहीं तो सर्व पदार्थोंमें सर्वात्मकताका प्रसंग किस तरह आता है उसका वर्णन अब किया जा रहा है।

अभावके भेद और अभावका अपन्हव करनेसे होनेवाली विडम्बनाकी सूचना–अभाव एकान्त मानने वालों ने चूंकि अभावको नहीं माना है सो अभावके न माननेसे अनेक दोष उपस्थित होते हैं उनका वर्णन करते हैं। अभाव ४ प्रकारके होते हैं—इतरेतराभाव, प्रागभाव प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। इतरेतराभाव—एक व्यक्तरूपका अन्य व्यक्तरूपमें अभाव रहना। जो प्रकृतरूप है, परिणतियाँ हैं वे सब अपनेमें अपना–अपना लक्षण रखती हैं। एकका दूसरेमें अभाव है, इसको कहते हैं इतरेतराभाव। प्रागभावका अर्थ है--किसी भी कार्यका अपने कालसे पहिले अभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहना। जैसे मृत्पिण्डसे घट बनता है तो घटका घट कालसे पहिले अभाव रहना अर्थात् मृत्पिण्डादिक सकलोंका नाम है घटका प्रागभाव। प्रध्वंसाभाव कहते हैं किसी कार्यका प्रध्वस होनेपर आगे अभाव रहना। जैसे घटका अभाव होनेपर फिर घट आगे नहीं रहता कपाल आदिक पर्यायें रहती हैं। तो कपाल आदिक परिणतियोंका नाम है घटका प्रध्वंसाभाव। अत्यन्ताभाव कहते हैं एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें सदा अभाव रहनेको। कभी भी एक द्रव्य किसी अन्य द्रव्यरूप नहीं बन सके ऐसे अत्यन्त अभावको अत्यन्ताभाव कहते हैं। अब इन अभावोंके न माननेसे भावैकान्तवादियोंके यहाँ क्या-क्या आपत्तियाँ आती हैं इस बातका वर्णन करते हैं।

भावैकान्तवादमें इतरेतराभावका अपह्नव होनेसे होनेवाली विडम्बना का निर्देश—भावैकान्तवादमें सांख्यसिद्धान्तानुयायियोंने २५ तत्त्वोंकी व्यवस्था की है। जिसमें संक्षेपरूपसे उन्हें तीन श्रेणियोंमें रखें, एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त, तीसरा पुरुष। व्यक्त और अव्यक्त तो अचेतनभाव हैं। प्रधानका नाम अव्यक्त है। जो कार्यरूप नहीं बनता उसको अव्यक्त कहते हैं और जो कार्यरूप होते हैं वे कहलाते हैं व्यक्त और दोनों प्रधानके ही तत्त्व हैं. मूल तत्त्व तो प्रधान अव्यक्त है। उस प्रधानसे प्रादुर्भूत जिन सृष्टियाँ व्यक्त कहलाती हैं। तो अब देखिये—व्यक्त हुए महत् अहंकार घट आदिक कार्य और अव्यक्त हुआ प्रधानतत्त्व। सो जब इन भावैकान्तादियोंने इतरेतराभाव नहीं माना तो इसका अर्थ यही तो हुआ कि व्यक्त अव्यक्त स्वरूप बन जायगा क्योंकि व्यक्तका अव्यक्तमें इतरेतराभाव तो माना नहीं। जब व्यक्त अव्यक्तमें अभाव रूपसे नहीं है तो अर्थ यही हुआ कि व्यक्त और अव्यक्त एक बन गए। यों व्यक्तका अव्यक्तात्मक बन जानेपर अब सर्वात्मक बन गया अर्थात् अब रूप ही व्यक्त अव्यक्त है। अब उनमें यह भेद नहीं किया जा सकता कि यह महान है, यह अहंकार है ये मात्राएं हैं, यह प्रधान है आदिक। और, जब व्यक्त और अव्यक्तमें कुछ लक्षण न बना सर्वात्मक सब बन गया तो ऐसा व्याख्यान करना जिसमें व्यक्त और अव्यक्तके लक्षण को भेद बताया है वह कैसे संगत होगा? भावैकान्तवादियोंने कहा है कि व्यक्त तो होता है हेतुमान अर्थात् कारण वाला। व्यक्तोंका कुछ न कुछ कारण होता है। व्यक्त होते हैं अनित्य, क्योंकि वे अपने कारणसे उत्पन्न हुए हैं। तो जो उत्पन्न हुआ है वह अनित्य होता है। व्यक्त होता है अव्यापी। चूंकि वह एक अंश है और वह उत्पन्न होता है तब वह व्यापी कैसे बन सकता है? व्यक्त होता है सक्रिय, क्रियावान परिणतिरूप। व्यक्त होता है अनेक, क्योंकि जो कार्यरूप बने हैं वे तो अनेक ही हैं। व्यक्त होता है आश्रित, क्योंकि वह प्रधानके आश्रित है। व्यक्त होता है लिङ्गरूप। लिङ्ग कहते हैं चिन्हको जो किसीका अनुमान कराये तो व्यक्त प्रकृतिका अनुमान कराता है। व्यक्त होता हैं सावयव। चूंकि वह अनेकरूप है, अनेक अंशरूप है अतएव सावयव है और व्यक्त होता है परतन्त्र। प्रधानके आधीन है, ऐसा तो होता है व्यक्त, और अव्यक्त होता है इससे विपरीत। अव्यक्त कहते हैं प्रधानको। प्रधानका और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई कारण नहीं है। प्रधान ही तो सबका मूल कारण है। अतएव वह नित्य है, व्यापी है, उसमें परिणति नहीं, क्रिया नहीं, वह एक है, किसीके आधीन नहीं, उसका कोई चिन्ह भी नहीं, उस प्रधानको ज्ञानीजन अपने ज्ञानसे समझ पावेंगे। देखनेमें, समझाने–बतानेमें, आ सकने वाला प्रधानका कोई चिन्ह नहीं है। अतएव वह निरवयव है स्वतन्त्र है, इस तरह जो व्यक्त और अव्यक्तके लक्षणोंके भेदका कथन किया है वह सब विरोधको प्राप्त होता है, क्योंकि अब तो सब ही कुछ बन गया। इतरेतराभाव न माननेसे सभी पदार्थ सब स्वरूप हो गए। यह तो हुई इतरेतराभाव न माननेपर विडम्बना। अब प्रागभाव न माननेपर क्या विडम्बना होती है, सुनो!

भावैकान्तवादमें प्रागभावका अपन्हव होनेसे होने वाली विडम्बनाका निर्देश—प्रागभावका अर्थ यह है ना, कि जो जो कार्य होना है वह कार्य कार्यकालसे पहिले न रहे। लेकिन प्रागभाव जब नहीं मानता है कोई तो उसका अर्थ यह हुआ कि उसके मंतव्यमें प्रत्येक कार्य अनादिसे हैं। प्रागभाव न माननेसे महान अहंकार आदिक जितने व्यक्त भाव हैं, विकार भाव हैं वे सब अनादि हो जायेंगे। तो यों प्रागभाव न माननेपर ये सब विकार अनादि हो जाते हैं और महान अहंकार आदिक जब अनादि हो गए तब सृष्टिके क्रमका कथन करना अत्यन्त विरुद्ध हो जाता है। जैसे कि भावैकान्तवादने प्रकृतिको सृष्टि बननेका क्रम बताया है वह सब प्रसिद्ध हो जाता है। उन का सिद्धान्त है कि प्रकृतिसे महान तत्त्व उत्पन्न होता है। महानका अर्थ है बुद्धि कल्पना। जो ज्ञानात्मक भाव हैं वे सब महान माने गए हैं। वे महान प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं। इस महान तत्वको पुरुषका धर्म नहीं माना सांख्यसिद्धान्तानुयायियोंने। तो प्रकृतिसे महान तत्व हुआ, महानसे अहंकार हुआ, अहंकारसे १६ गण हुए ५ बुद्धि इन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां, ५ तन्मात्रायें व मन। इन १६ गणोंमें जो ५ मात्रायें हैं उनसे ५ पृथ्वी, जल अग्नि, वायु व आकाश इन ५ भूतकी उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार जो इन व्यक्त भावोंकी सृष्टिका क्रम कहा है वह कथन निषिद्ध हो जाता है। तो प्रागभावके न माननेपर इन सब विकारोंको अनादि माननेकी विडम्बना बनती है।

भावैकान्तवादमें प्रध्वंसाभावका अपन्हव होनेसे होने वाली विडम्बना का निर्देश—अब प्रध्वंसाभाव न माननेपर क्या आपत्ति आती है, इसको सुनो! प्रध्वंसाभावका अर्थ है कि किसी विकारका, कार्यका प्रध्वंस होनेपर आगे अभाव रहना। अब प्रध्वंस यदि नहीं मानते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि समस्त विकार अनन्त हो जायेंगे। और जब समस्त विकार अनन्त हो गए तो इन विकारोंका संहार मानना कि ये सब विकार नष्ट होकर केवल प्रकृति रह जाती है। इस प्रकार उन विकारोंके संहारका कथन कहना बिल्कुल विरुद्ध पड़ता है। भावैकान्तवादियोंने सृष्टिके संहारका क्रम यह बताया है कि पृथ्वी आदिक ५ महाभूत ५ तन्मात्राओंमें लीन हो जाते हैं। जैसे कि पृथ्वीका गंध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द इन तन्मात्राओंमें प्रवेश हो जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थात् पृथ्वी इन ५ तन्मात्राओंमें प्रवेश हो जाता है अर्थात् पृथ्वी इन ५ तन्मात्राओंमें लीन हो जाती है। जलका रस आदिकमें अग्निका रूपादिक तन्मात्राओंमें प्रवेश हो जाता है। और, वायुका स्पर्श और शब्द इन तन्मात्रावोंमें प्रवेश हो जाता है। और, आकाशका शब्द तन्मात्राओंमें प्रवेश हो जाता है। इस तरह ये ५ महाभूत इन ५ तन्मात्रावोंमें लीन हो जाते हैं और ये ५ तन्मात्रायें, ५ बुद्धि इन्द्रिय और ५ कर्मेन्द्रिय और मन, ये हुए १६ गण। इनका अहंकारमें अन्तर्भाव हो जाता है और अहंकारका, महानमें तथा महानका प्रकृतिमें अन्तर्भाव हो जाता है। इस तरह विलीन हो होकर केवल अन्तमें प्रकृति तत्त्व रह जाता है। इस तरह सृष्टिके संहारका कथन करना यह अटपट प्राप्त हो जाता है यह संहार व संहारक्रम सिद्ध ही नहीं होता तो प्रध्वंसाभावके न माननेपर यह विडम्बना बनती है।

अन्यन्ताभाव न माननेसे होने वाली विडम्बनाका निर्देश—अब अत्यन्ताभावके न माननेमें क्या आपत्ति आती है इस बातको भी परखिये। अत्यन्ताभाव कहते हैं द्रव्योंका द्रव्योंमें अभाव होनेको याने किसी भी द्रव्यका अन्य द्रव्योंमें अभाव होना अत्यन्ताभाव है सो जब ऐसा अत्यन्ताभाव नहीं मानते तो भावैकान्तवादियोंक यहाँ दो द्रव्य माने गये हैं प्रकृति और पुरुष। सो प्रकृति और पुरुषमें जब अत्यन्ताभाव नहीं मानते तो प्रकृति बन गया पुरुषात्मक। तो इसका अर्थ यह है कि सर्वात्मक बन गया। अब वहाँ फिर कुछ भी द्रव्य न रहेगा। प्रकृति बन गया। अब वहां फिर कुछ भी द्रव्य र रहेगा। प्रकृति बन गया पुरुषात्मक, पुरुष बन गया प्रकृतात्मक, फिर रहा ही क्या? और तब प्रकृति और पुरुषके सम्बन्धसे लक्षणभेदका करना बिल्कुल विरुद्ध पड़ जाता है। भावैकान्तवादियोंने कहा है कि व्यक्त तो होता है सत्त्व रजः तमः, इन तीन गुणों वाला व्यक्त होता है अविवेकी अर्थात् भेदरहित व्यक्त होता है आत्माके भोग्यरूप. ऐसा सामान्य अचेतन प्रसव धर्म वाला व्यक्त होता है, जिसकी कि प्राप्ति हो गई और अव्यक्त अर्थात् प्रधान हुआ व्यक्तसे विपरीत, और पुरुष होता है उन दोनोंसे विरुद्ध। अर्थात् केवल चिन्मात्र। इस तरह उन सबके लक्षणका भेद कहना असंगत है, क्योंकि अत्यन्ताभाव न माननेसे सर्व सर्वात्मक हो गया फिर लक्षणभेदका अवसर ही क्या?

स्याद्वादशासनसे वहिर्भूत भावैकान्तवादमें ही विडम्बनाकी आपत्ति—भावैकान्तमें जब किसी भी प्रकारका अभाव नहीं माना है तब वहाँ सभी पदार्थ अस्वरूप हो जाते हैं। उनका कुछ स्वरूप नहीं रहता, क्योंकि अपने आपका असाधारणरूप क्या है यह बात किसी भी तत्त्वमें व्यवस्थित नहीं रह सकती, क्योंकि वस्तुस्वरूपके नियामक हैं ये चार प्रकारके अभाव, उनको माना नहीं। तब द्रव्य, गुण, पर्याय सजातीय विजातीय सब कुछ एक हो जायगा, तब किसीका भी स्वरूप न रह सकेगा। यों अभाव अह्नह माननेवाले क्षणिकएकान्तवादियोंका मंतव्य दूषणका स्थान है। और ऐसा एकान्त अभिमत हे प्रभो! आपका नहीं है। आपके शासनसे बहिर्भूत

Version 1

एकान्तवादियोंका यह मंतव्य है। सो उनके यहाँ अभावका अपन्हव करनेपर सब कुछ सब रूप हो गया। द्रव्य, गुण, पर्याय ये सर्व सर्वात्मक हो गए। पदार्थमें अब कोई विशेष तो रहा नहीं। सभी तत्त्वोंका व्यक्त अव्यक्त और उभयरूप, सत् असत् और उभयरूप द्रव्य पर्याय और उभयरूप भाव अभाव और उभयरूप, ये सबके सब सर्वरूप हो गए। जब उनमें कोई विशेष ही न रहा ऐसी स्थितिमें एक इस ही साधारण प्रश्नका कोई उत्तर दे दे कि जब अभावका अपन्हव करने वाले भावैकान्तवादियोंसे कहा जाय कि दधि खाओ तो वे दधिके बजाय ऊँटको खाने और खानेके लिये क्यों नहीं दौड़ते? अब तो किसी भी तत्त्वका कोई असाधारणरूप रहा नहीं। तत्त्वका असाधारणरूप रहता है अभावके नियमसे। अभाव न माननेपर सर्व सर्वात्मक हो गए। तब दही और ऊँट ये कोई अलग थोड़े ही रहे। सर्व सर्वरूप हो गए। ऐसी विडम्बना क्यों नहीं बन जाती? सो यों भाव एकान्तमें अभावका अपन्हव करनेसे ये सारी विडम्बनायें होती हैं पर हे भगवान अरहंतदेव! तुम्हारे शासनमें ये कोई दूषण नहीं आते, क्योंकि स्याद्वादशासनमें कथंचित् अभावको अपन्हव नहीं माना गया। वस्तु भावाभावात्मक है, अतएव अनेकान्त शासनमें कोई दूषण नहीं आता।

व्यक्त, अव्यक्त व पुरुषके स्वरूपके वर्णनसे ही चारों अभावोंका अभ्युपगम बताकर भावैकान्तवादियों द्वारा आक्षेपनिराकरणका प्रयास – अब ये भावैकान्तवादी शंका कर रहे हैं कि देखिये! व्यक्तमें उनका स्वभाव तो माना ही है। व्यक्तका स्वभाव और अव्यक्तका स्वभाव ग्रन्थोंमें जुदा–जुदा वर्णन किया ही है, तो व्यक्त और अव्यक्तके स्वभावका जो वर्णन है वही तो इतरेतराभावका दर्शन कराता है। और, प्रकृति पुरुषमें जब प्रकृतिका रूप बताया गया और पुरुषका रूप बताया गया, तब दोनोंका रूप जुदा–जुदा बता देना यही तो अत्यन्ताभाव है। इसी प्रकार महान, अहंकार आदिक जो व्यक्त परिणतियाँ हैं उसमें अपने–अपने कारणका स्वभाव तो बताया ही गया। महानरूप कारणका स्वभाव अन्य है, अहंकाररूप कारणका स्वभाव अन्य है, प्रत्येक कार्यके कारणोंका स्वभाव बताया ही गया। तो अपने कारणके स्वभावका जो वर्णन है वही तो प्रागभाव है। इस प्रकार महाभूतोंका मात्रामें अन्तर्भाव होना, गुणोंका अहंकारमें अन्तर्भाव होना आदिकरूपसे जो अन्तर्भावके आश्रयका वर्णन किया जाता है। जहाँ महाभूत लीन होते हैं वह महाभूतका कारण द्रव्य है, और वही स्वरूप है प्रध्वंसाभावका। तो इस तरहसे इतरेतराभाव, अत्यन्ताभाव, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव सांख्योंने भी माना है। जब अभावका उपन्हव असिद्ध है सांख्य सिद्धान्तमें तो फिर सर्वात्मक होना, अनादि अनन्त होना, अस्वरूप होना ये सारे दोष क्यों कहे जायेंगे?

वस्तुमें किसी भी प्रकार अभाव तत्त्व मान लेनेपर वस्तुके भावाभावात्मकपनेकी सिद्धि – उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि केवल किसी आक्षेपसे

वचनके लिए कभी कथन कर देना यह आक्षेपसे बचानेमें समर्थ नहीं हो सकता । यदि वस्तुतः इन चार प्रकारके अभावोंको माना जा रहा है तब भावैकान्त तो न रहा । अब तो समग्र वस्तुवें भावात्मक हो गयी । स्याद्वादी जन भी अभावको भावसे भिन्न ही नहीं मानते । अभाव और भाव ये जुदे-जुदे पदार्थोंमें होते हों ऐसा नहीं मानते हैं, क्योंकि अभावको भावसे अर्थान्तर माननेमें अभाव नीरूप अर्थात् नि.स्वभाव बन जायगा, अर्थात् अभावकी कुछ सकल न रहेगी । कोई स्वरूप न रहेगा । अतएव अभाव भावसे अर्थान्तर नहीं है । एक ही वस्तुमें भाव और अभाव दोनोंकी सिद्धि होती है । यहाँ शंकाकर कहता है कि अभावमें नीरुपता न हो जाय यह बात तो इतना माननेसे ही बन जायगी कि अभावमें "नहीं है यह" ऐसा ज्ञानको उत्पन्न करनेका रूप है. सो अभाव रूपरहित मुद्रारहित न बनेगा उसकी मुद्रा तो है, क्या मुद्रा है कि यह अभाव नास्तिके ज्ञानको उत्पन्न करनेका रूप रख रहा है, तब अभाव नीरूप न बन सकेगा और भावसे अर्थान्तर बना रहेगा । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह अभावको भावसे अर्थान्तर माननेमें अभाव नहीं ठहर सकता, और वह नास्ति । इस प्रकारके ज्ञानका जो जनक बन रहा है इससे तो अभावकी भाव स्वभावता प्रसिद्ध होती है । अभाव भावरूप हुआ करता है । क्योंकि अभाव पदार्थ भी तो ज्ञान और स्वभावका विषयभूत एवं अर्थक्रियाकारी है । अतएव अभाव पदार्थ भी भावस्वरूप बना । जैसे जो पदार्थ सद्भावस्वरूप होता है वह पदार्थ ज्ञानका विषयभूत और अभिधान विषय-भूत होता है, तथा उनमें अर्थक्रिया परिणति भी होती है । ऐसे ही ये सब बातें अभाव बताकर भी जानी जा सकती । अभाव पदका जो अर्थ है उसमें भी घटित होता है तीनों बातें अतएव अभाव नामक पदार्थ भाव स्वभाव ही ठहरता है, क्योंकि नास्तित्व भी वस्तुका धर्म है, जैसे कि अस्तित्व, पदार्थमें सत्त्व है इस प्रकार अस्तित्व पदार्थ-का धर्म है तो पदार्थमें नास्तित्व है यह भी उसहीका धर्म है । अस्तित्व नाम है उसका कि वस्तुमें "यह है" इस प्रकारके प्रत्ययका विषयभूत पर्याय हो । इसी प्रकार नास्तित्व नाम है उसका कि जो वस्तुमें "यह नहीं है" इस प्रकारके प्रत्ययका विषयभूत पर्याय हो । यदि पर्यायरहित द्रव्यका एकान्त माना जाय अर्थात् सद्भूत शाश्वत द्रव्य ही है, उसमें व्यक्तरूप पर्याय या धर्मादिक कुछ नहीं है तब तो उस मंतव्यमें सर्वात्मक होना आदिक दोषोंका प्रसंग आता ही है । वह किसी भी प्रकारसे निवारण नहीं किया जा सकता है ।

सर्वव्यक्त पदार्थोंको एकात्मक माननेकी हठमें प्रकृति व पुरुष तत्त्वका लोप होकर एक सत्ताद्वैत मात्रकी मान्यता बना सकनेका प्रसंग– यहाँ सांख्यसिद्धान्तानुयायी कहते है कि सर्वपर्यायात्मक सर्वविवर्तरूप एक अनादि अनन्त प्रधानको हमने माना है, और उस प्रधानको छोड़कर सारे विशेष वस्तुतः कुछ नही हैं । इस कारण यह सिद्ध साधन होता हैं, अर्थात् अगर सब कुछ सर्वात्मक बनता है तो हमारे लिए यह कोई दोषकी बात नहीं है । यह तो हम मानते ही है कि सर्व कुछ

http://sahjanandvarnishastra.org/

दृश्य सर्व विश्व एक प्रकृत्यात्मक है इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सर्व कुछ विश्वमें एक सादमात्र मानना और उसका कोई विशेष न मानना इन पर्यायरूपोंको, विवर्तोंको वस्तुगत न मानना इस हठमें तो प्रकृति और पुरुषमें भी भिन्नता न रहेगी। प्रकृति और पुरुषमें भी अभेद हो बैठेगा। क्योंकि यह कहा जा सकेगा कि सत्ताको छोड़कर प्रकृति और पुरुष कोई अलग-अलग रूपसे प्रतिभासमें नहीं आते और इस तरह यदि मानलिया जाता है तो इसमें सत्ताद्वैतका प्रसंग आता है? तो यह कहा जा रहा था कि प्रधानकी जो परिणतियाँ हैं बुद्धि अहंकार, इन्द्रिय, पृथ्वी आदिक ये सब विवर्त हैं। ये तत्त्वभूत नहीं हैं। इस रूप यह एक प्रधान ही है अतः प्रधान सर्वस्वरूप है। लेकिन अविवेक रखकर यदि इन सब परिणतियोंको जिनसे कि अर्थक्रिया बनती है भिन्न भिन्न इन्द्रियके द्वारा ग्रहण है, भिन्न-भिन्न प्रकारसे जिनमें कार्य बनता है उनको यदि एकात्मक कह दिया जाय तो इस विधिसे प्रकृति और पुरुषको भी एकान्तक कह दिया जाय तो इसमें कौन सी आपत्ति आती है। देखिये—प्रकृति भी सद्रूप है और प्रधान भी सद्रूप है। केवल सत्वकी दृष्टिसे निरखा जाय तो सर्व कुछ सन्मात्र ही है। यों केवल सन्मात्रकी सिद्धि होनेसे और प्रकृति और पुरुषका विशेष लक्षणके रूपमें प्रतिभास न होनेसे एक सत्ताद्वैतका प्रसंग आता है। तब प्रकृति और पुरुष दो तत्त्व न रहेंगे। एक सन्मात्र ब्रह्म ही तत्त्व सिद्ध होगा। और यों भाव एकान्तकी हठमें २५ तत्त्व न ठहर कर केवल एक ब्रह्माद्वैत ही तत्त्व सिद्ध हो बैठेगा।

सत्ताऽद्वैतवादीका मन्तव्य और उसकी मीमांसा—सत्ताद्वैतके प्रसंगको सुनकर ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि सत्ताद्वैतकी ही बात रहो। सत्ताद्वैत ही युक्तिसंगत विदित होता है क्योंकि सत्वकी अपेक्षासे प्रकृतिमें, पुरुषमें, समग्र वस्तुओंमें किसी प्रकारकी विशेषता नजर नहीं आती। चेतन और अचेतनके जितने भेद हैं, जो लगोंको प्रतीत होते हैं वे सब अविद्यासे ही उपकल्पित हैं। अनादि कालीन अविद्याकी वासनासे ये समस्त पदार्थ भिन्न-भिन्न रूपमें विदित होते हैं। वस्तुतः तो वे सब सन्मात्र हैं। इस प्रकार ब्रह्माद्वैतवादीके कहे जानेपर उनसे पूछा जा रहा है कि भला यह तो बतलाओ कि ये सब जो विशेषके विदित हो रहे हैं इन विशेषोंको आप किस प्रमाणसे निराकृत कर सकेंगे? ब्रह्माद्वैतवादियोंसे स्याद्वादी कह रहे हैं कि देखिये! प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो इन विशेषोंका निराकरण नहीं किया जा सकता, इसका कारण यह है कि प्रत्यक्ष प्रमाणको तो विधायक बताया गया है अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण केवल विधि सद्भावको सिद्ध करने वाला है, वह किसीका निषेध अथवा निराकरण नहीं करता यों सत्ताद्वैतसिद्धान्त नुयायियोंने माना है। तो जब प्रत्यक्षका विषय ही नहीं है किसीके निराकरण करनेका तो प्रत्यक्षके द्वारा चेतन अचेतन विशेषको कैसे खण्डित किया जा सकता है? विशेषका निषेध करनेमें प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति ही नहीं होती और इसी प्रकार अनुमान तथा अथवा आगम प्रमाणसे भी इन विशेषोंका निराकरण नहीं किया जा सकता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि अनुमान और आगम प्रमाण भी प्रतिसेधक नहीं माने गए। अनुमान अथवा आगमसे भी किसी वस्तुकी विधिको ही सिद्ध करना सत्ताद्वैतवादी मानते हैं। प्रत्यक्ष की तरह आगम और अनुमान प्रमाण भी विधायक स्वीकार किया गया है ब्रह्माद्वैतवादके सिद्धान्तमें। यदि अनुमान और आगमको प्रतिषेधक मान लिया जाता है तो प्रत्यक्ष प्रमाणके भी प्रतिषेधकपनेका प्रसंग आयगा। क्योंकि अनुमान और आगम प्रमाण हैं प्रत्यक्षमूलक। उनका आद्य ज्ञान मूल कारण प्रत्यक्ष ज्ञान है। प्रत्यक्ष ज्ञान यदि विधायक ही रहता है तब तो अनुमान और आगम प्रमाण विधायक ही रहेंगे और यदि अनुमान और आगम प्रमाणको प्रतिषेधक मान लेते हैं तो उन ज्ञानोंकी उत्पत्तिका जो मूल कारणभूत प्रत्यक्ष ज्ञान है उसे भी प्रतिषेधक मानना होगा।

ब्रह्माद्वैतवादी और विशेषवाद प्रधान क्षणिकवादियोंमें अभेद और भेदसाधनके विषयमें चर्चा— अब यहाँ ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि यह सिद्धान्त स्वयं किसी प्रमाणसे विशेषोंका निराकरण नहीं करता, किन्तु क्या किया जाता है कि विशेषोंका भेदका सिद्ध करने वाला जो कुछ भी प्रमाण दिया जायगा, जो भी साधन बताया जायगा उसमें व्यभिचार बतानेसे विशेषोंका निराकरण किया जाता है। देखिये! वस्तुमें सर्वथा भेद मानने वाला दार्शनिक है क्षणिकवादी। सो जो वस्तुमें पूर्णतया भेद मानने वाले हैं उन्हींसे हम सत्ताद्वैतवादी बात कहते हैं कि वे वस्तुके विशेषको, भेदको सिद्ध करनेमें साधन क्या देते हैं? या तो वे कहेंगे कि कारण भेदसे वस्तुमें विशेषकी सिद्धि होती है या यह कहेंगे कि वस्तुओंमें स्वयं विरुद्ध धर्म पाये जा रहे हैं सो उस विरुद्ध धर्मके सम्बधसे उनमें भेद पाया जाता है। सो दोनों विकल्पोंके सम्बन्धमें सुनो कि कारणभेद तो वस्तुके भेदको सिद्ध करने वाला साधन नहीं कहा जा सकता। क्योंकि कारणभेद अभेदवादियोंने माना ही नहीं है। भेदवादी अभेदवादियोंके प्रति यदि भेद सिद्ध करना चाहते हैं तो साधन ऐसा कहना चाहिए जैसा अभेदवादी मान सकते हों। सो कारण भेद तो अभेदवादियोंके प्रति असिद्ध है अतः वस्तुमें विशेषको, भेदको सिद्ध करने वाला साधन कारणभेद नहीं बन सकता। इस ही प्रकार विरुद्धधर्माध्यास भी नहीं माना है। प्रत्येक पदार्थमें एक तन्मात्र अविरुद्ध धर्मका अध्यास भी वस्तुके विशेषको, भेदको सिद्ध करने वाला साधन नहीं बन सकता। और, तो क्या, अधिकसे अधिक बारीक चर्चामें चलकर, यदि भेदवादी यह कहे कि चेतन और अचेतनके भेदको जनाने वाला जो ज्ञानाकार है उस ज्ञानाकार के भेदसे वस्तुमें स्वभाव भेद कल्पित कर लिया जायगा, अर्थात् ज्ञानमें जो प्रतिभास भेद हो रहे हैं कि यह चेतन है, यह अचेतन है, तो ज्ञानमें जो जुदे-जुदे ढंगसे प्रतिभास हो रहा है इस प्रतिभासके भेदसे वस्तुमें स्वभावभेद मान लिया जायगा। तो सुनो ज्ञानमें प्रतिभास भेद होनेसे यदि स्वभाव भेदको साध्य बनानेका प्रयास करोगे तो इस प्रकारमें भी यह साधन व्यभिचारी हो जायगा। देखो चित्राद्वैतवादीके यहाँ ज्ञानात्मा अभेदरूप है, उसमें भेद तो नहीं है लेकिन ज्ञान प्रतिभास भेद वहाँ भी पाया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जा रहा है। तो ज्ञान प्रतिभास भेदरूप साधन आत्मामें तो पाया जा रहा है लेकिन वहाँ भेदरूप साध्य नहीं है। तो ज्ञानमें प्रतिभासभेद होनेसे भी वस्तुमें स्वभावभेद सिद्ध नहीं किया जा सकता।

चित्राद्वैतवादी और ब्रह्माद्वैतवादीमें अभेदसाधनके लिये आक्षेप-समाधान—अब यहाँ चित्राद्वैतवादी कह रहे हैं कि देखिये! ज्ञानात्मक जो एक तत्त्व है जैसे कि चित्राद्वैतमें केवल एक ज्ञान ही तत्त्व माना है और उस ज्ञान तत्त्वमें जो खण्ड खण्ड रूपसे प्रतिभास हो रहा है वह प्रतिभास तो भ्रम है, भ्रमसे हो रहा है। परमार्थसे तो वह ज्ञानात्मक तत्त्व एक ही है, इस कारणसे उस ज्ञानात्मक तत्त्वके साथ ज्ञान प्रतिभास भेदरूप साधनका व्यभिचार न बनेगा। जो अभी ब्रह्माद्वैतवादियोंने ज्ञान प्रतिभास भेदसे स्वभावभेद सिद्ध करनेके प्रति ज्ञान प्रतिभास भेदको व्यभिचारी कहा है सो वह व्यभिचार न आयगा क्योंकि अभेद आत्मामें अर्थात् ज्ञान-तत्त्वमें जो भेद प्रतिभासमें आ रहा है वह भ्रान्त है। इस ही बातको क्षणिक सिद्धान्तमें कहा भी है कि यह ज्ञानात्मा ज्ञानक्षणमात्र यह तत्त्व यद्यपि एक है लेकिन जिनकी विपरीत दृष्टि है उन पुरुषोंने इसे ग्राह्य सम्वेदन, ग्राहक सम्वेदन इस तरहसे भेद वाले की तरह देख डाला है। वस्तुतः वह ज्ञानात्मक अन्तस्तत्त्व एक ही है। उसमें जो खण्ड खण्ड प्रतिभास होते हैं अर्थात् नाना वस्तुओंका ज्ञान जिन्हें हो रहा है वे सब भ्रान्त हैं। इस शंकाके उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि फिर तो चित्रज्ञान स्वरूपमें जो बताया जाता है एकत्व उसकी तरह और जो प्रतिभासभेद हो रहा है उसे भ्रान्त माननेकी तरह ब्रह्माद्वैतवादमें भी एकपना मानना और अनेक प्रतिभास होनेको भ्रम मानना इससे क्यों डरा जा रहा है। ब्रह्माद्वैतवादमें भी विभ्रमके अभावके कथनका दिव्यपानका लिया जाना चाहिए, जिससे कि आत्माके उद्धारका भी मार्ग मिल जायगा देखिये, ब्रह्माद्वैतके सिद्धान्तमें भी यह कहा जा सकता है कि यहाँ जो ज्ञान प्रतिभास भेद हो रहा है बाहरमें जब कुछ निरखते हैं तो विविध अनेक पदार्थ दृष्टिगोचर होरहे हैं तो वह सब प्रतिभास भेद अविद्यारूप कारणसे है और अविद्यारूप कारणसे जानने वालेको भ्रम ही बन रहा है। परमार्थतः तो ज्ञानमात्र अद्वैतकी व्यवस्था है। सो देखिये! जिस प्रकार आकाश तो विशुद्ध है, उसमें कोई भेद नहीं पड़ा हुआ है लेकिन जिसको तिमिर रोग लग गया हो ऐसा मनुष्य इस आकाशको भी इस तरहसे निरखता है कि जैसे भिन्न-भिन्न अनेक रेखाओंसे यह आकाश व्याप्त हो। तो जैसे आकाश की मुद्रामें तिमिर रोगके कारण भ्रम चल रहा है ऐसे ही अविद्यावासनाके कारण ज्ञान प्रतिभास भेदका भ्रम बन जाता है। यह ब्रह्म तो उत्पाद आदिक भेदोंसे रहित है निर्विकल्प है, घट पट आदिक भेद भी जहाँ नहीं है लेकिन यह लोक अविद्याके कारण कलुषपनेको प्राप्त हुएकी तरह भेदरूप ही निरख रहा है। तो यों विशेषको सिद्ध करने के लिए जो हेतु दिया जावे, ज्ञानमें प्रतिभास भेद होना, यहाँ तक भी हेतु वस्तुमें भेद सिद्ध करने के लिए समर्थ नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिभास भेदके अन्तरसे ही प्रतिभासताका ज्ञान— उक्त कथनसे यह सिद्ध हुआ कि जब जैसे प्रतिभास भेदके कारण एक चित्रज्ञान ग्राह्य ग्राहक आदिक संज्ञाओंको धारण करता है उस ही प्रकार एक ब्रह्म प्रतिभास भेदके कारण नाना व्यपदेशोंको प्राप्त होता है। जैसे चक्षु आदिक इन्द्रियोंके द्वारा जो नाना प्रकारका ज्ञान होता है उसमें विविध वस्तुवें प्रतिभासमें आती है। तो यहां प्रतिभासका ही तो अन्तर है। उस प्रतिभास भेदकी वजहसे रूपादिक नाम पड़ गए। चक्षुइन्द्रियसे जो जाना उसका नाम रूप रखा, रसना इन्द्रियसे जाना उसका नाम रस रखा, कर्णेन्द्रियसे जाना उसका नाम शब्द रखा, स्पर्शन इन्द्रियसे जाना उसका नाम रखा, चिकना आदिक स्पर्श रखा घ्राण इन्द्रियसे जाना उसका नाम सुगंध दुर्गन्ध रखा। तो भिन्न–भिन्न इन्द्रियसे और मनसे ज्ञान हो रहे हैं उस भेदकी वजहसे ये नाना प्रकारके पदार्थ कहलाने लगे। जैसे कि चित्राद्वैतवादियोंने भी एक ही ज्ञानमें प्रतिभास भेदकी वजहसे ग्राह्यसम्वेदन ग्राहकसम्वेदन इस तरह नाना सम्वेदन माने हैं इसी प्रकार ब्रह्माद्वैतवाद में भी चक्षुरादिज्ञान प्रतिभासभेदकी वजहसे नाना अर्थ मान लिये जावें तत्त्वतः भेद न माना जावे। यों चित्रज्ञान मानने वालेके आक्षेप समाधानकी तरह कि जो कुछ प्रतिभास भेद हो रहा है किसी कारणसे उसके होनेपर भी ज्ञाताको वह भ्रम ही जचता है क्योंकि परमार्थसे एक ब्रह्म अद्वैत ही तत्त्व है यों सत्ताद्वैतकी बात ठीक सही बनती है। भावैकान्तको अद्वैतमें ढालने वाले दार्शनिक स्वपक्ष सिद्धिके लिये कह रहे हैं कि क्षणिकवादियोंने जो विशेषवाद माना है, भेद कथन किया है वह निराकृत हो जाता है।

चित्राद्वैतवादियों द्वारा सत्ताद्वैतमें दिये गए प्रतिभासभेदासिद्धिके आक्षेपपर सत्ताद्वैतवादियोंका तुलनात्मक समाधान— अब यहां क्षणिकवादी ब्रह्माद्वैतवादियोंसे कहते हैं कि आप लोग जो चक्षु आदिक इन्द्रियके द्वारा होने वाले ज्ञानमें प्रतिभासभेद भी तो अभेद एकान्तमें असिद्ध है। जहां केवल एक सत्त्व ही तत्त्व माना है ऐसा सर्वथा अभेदवादमें प्रतिभासभेदकी कथा कहां लगेगी। इसके उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि यदि इस तरह चक्षुरादिक ज्ञानप्रतिभासभेद हमारे पक्षमें असिद्ध बताते हो तो इसी तरह ग्राह्य सम्वेदन, ग्राहक सम्वेदन ऐसे जो प्रतिभासभेद भेदवादी मान रहे हैं, एक ज्ञानतत्त्व मानने वाले योगाचार क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें जो एक ही ज्ञानक्षण मानते हैं तो उस एक ज्ञानात्मामें यह प्रतिभासभेद भी कैसे सिद्ध हो सकेगा? वहां भी प्रतिभासभेद सिद्ध नहीं हो सकता है। यदि कहो कि हम क्षणिकवादी उस ग्राह्याकार सम्वेदन और ग्राहकाकार सम्वेदनके प्रतिभास भेदको, कल्पनासे सिद्ध मान लेंगे तो एक ज्ञानमें जो यह प्रतिभास होता है कि यह ज्ञान जो कुछ जाना जा रहा है, इसमें बाह्य पदार्थोंका आकार आया है। सो बाह्य पदार्थोंका जो प्रतिभास हुआ है वह तो है ग्राह्याकार और यह ज्ञान जो स्वयं जाननहार है, केवल जाननस्वरूपको लिए हुए है यह हुआ ग्राहकाकार सम्वेदन। तो ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो प्रतिभासभेद है, वह काल्पनिक है। वस्तुतः तो वह ज्ञान क्षणमात्र है। यदि ऐसा कहो तो ब्रह्माद्वैतवादमें भी इस ही प्रकारका समाधान हो जायगा। क्योंकि जिस तरह क्षणिकवादी प्रतिभासभेदको कल्पनासे ही हो रहा है अतएव आक्षेपसे बच नहीं सकते। यों ब्रह्माद्वैतवादी विशेषवादियोंके प्रति कह रहे हैं कि इस प्रकार सत्ताद्वैत की बात सही मान लेना चाहिए।

इतरेतराभावप्रत्ययसे ही भावस्वभावभेदकी साधनाके विपक्षमें ब्रह्मवादियों द्वारा यौगोंके प्रति कथन – इस ही प्रसगसे सम्बन्धित ब्रह्माद्वैतवादी नैयायिकोंकी एक आशंकाका निराकरण करते हुये कह रहे हैं कि जो भी लोग इतरेतराभावके ज्ञानसे भाव अर्थात् वस्तुमें स्वभावभेदकी सिद्धि करते हैं उनके सिद्धान्तमें इतरेतराभावका विकल्प भी क्यों न अयथार्थ हो जायगा वर्णादिक विकल्पोंकी तरह। जैसे कि वर्ण, रस आदिकका ज्ञान जो कि कल्पनासे उपाधिके वशसे भिन्न-भिन्न प्रकारका जो हो रहा है वह पारमार्थिक नहीं, काल्पनिक है यह कहा जा रहा इसी प्रकार जिस इतरेतराभाव प्रत्यक्षके द्वारा ये नैयायिक वस्तुमें स्वभाव भेदकी साधना करने चले हैं, भावसाधनाके लिए बताया गया वह इतरेतराभावज्ञान भी अयथार्थ क्यों न होगा? वह भी मात्र कल्पनासे ही माना जायगा। इस प्रकरणमें मूल बात यह कही जा रही है कि पदार्थका केवल भाव एकान्त ही माना जाय। अभावका निराकरण किया जाय तो आपत्तियाँ अनेक हैं। उसका ही समाधान होते होते जब यहां तक नौबत आयी कि इस तरह अनेकान्त माननेपर सांख्यसिद्धान्तमें प्रकृति और पुरुष ये दो मूल तत्त्व भी नहीं ठहरते हैं, किन्तु सत्त्वकी अविशेषता होने से ये दोनों भी एकात्मक बन जायेंगे। और, यों सत्ताद्वैतका प्रसंग आ जायगा। इस प्रकरणको सुनकर सत्ताद्वैतवादी अवसर पाकर अपने सिद्धान्तका समर्थन कर रहे हैं, और उस समर्थनके प्रसगमें इतरेतराभावके ज्ञान द्वारा जो वस्तुमें स्वभावभेद मानने वाले हैं ऐसे नैयायिकोंके प्रति कह रहे हैं कि इतरेतराभावका ज्ञान भी अयथार्थ है, असिद्ध है। केवल इतरेतराभावकी कल्पना की गई है।

नैयायिकों द्वारा वर्णादिज्ञानकी भावभेदसिद्धिमें व्यभिचारिता व इतरेतराभावज्ञानकी अव्यभिचारिता सिद्ध करनेका प्रयास और सत्ताद्वैतवादी द्वारा उसका परिहार—अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि वर्णादिकका ज्ञान तो भाव में, वस्तुमें स्वभावभेदके बिना भी हो जाता है। तब वर्णादिक विकल्पकी बात कह करके जो इतरेतराभावको भी मिथ्या बताया जा रहा सो उदाहरण व्यभिचारी है। वर्णादिकका ज्ञान तो अयथार्थ है क्योंकि इस प्रसंगमें जो अनुमान बनाया उसमें वर्णादिकका ज्ञान होना यह तो हुआ साधन और वस्तुमें स्वभावभेद कर देना यह हुआ साध्य। तो वर्णादिकका भिन्न-भिन्न प्रकारसे ज्ञान हो भी रहा है फिर भी अपने साध्यको सिद्ध नहीं कर पाता। अतएव ये वर्णादिक ज्ञान अयथार्थ हैं, मिथ्या हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर इतरेतराभावका जो ज्ञान होता है वह मिथ्या नहीं है। समाधानमें ब्रह्माद्वैतवादी कह रहे हैं कि नैयायिकोंके द्वारा व किसीके द्वारा भी इस कथनकी व्यवस्था बनाना शक्य नहीं है क्योंकि इतरेतराभावका भाव और अभावमें अभेद है, उसमेंभी इतरेतराभावका ज्ञान चूँकि अपने साध्यको सिद्ध नहीं कर सकता अतः व्यभिचारी है। उनका अनुमान यह बन रहा था कि इतरेतराभावका ज्ञान चूँकि हो रहा है इसलिए वस्तुमें स्वभावभेद पड़ा हुआ है सो यहाँ खुद ही साधन व्यभिचारी बन रहा है, क्योंकि भाव अभावका तो अभेद है, जैसे इस कमरेमें घड़ा नहीं है यह कहा, तो कमरा तो हुआ शुद्ध भूतल। जैसा तैसा है अपने स्वरूपका और घड़ा नहीं है यों घटका अस्तित्व कहलोगा अभाव। तो घड़ेका अभाव और शुद्ध भूतलका होना इसका तो अभेद है, बात एक ही है। तो इतरेतराभावका ज्ञान तो हो गया मगर यहाँ भावभेद न बन सका। तब इतरेतराभावका ज्ञान भी व्यभिचारी हेतु रहा। भाव और अभावमें अभेद है, यह बात यों सिद्ध होती है कि वस्तुको छोड़कर असत्का और कुछ नाम नहीं है। वस्तुका ही नाम अभाव है। अभाव वस्तुको छोड़कर अन्य कुछ नहीं है। क्योंकि प्रमाण पदार्थको ही विषय करता है। तब भावकी ही बात रही। भावमें अभाव अभेदरूपसे रह रहा है। कोई वस्तुमें दो तत्त्व नहीं हुए और न भेद हुआ।

नैयायिकोंके द्वारा अभावके प्रत्यक्षविषयत्वकी सिद्धिका प्रयास और सत्ताद्वैतवादी द्वारा उसका परिहार— नैयायिक यहाँ अपना यह मंतव्य रख रहे हैं कि देखिये! प्रत्यक्ष तो अभावका विषय करने वाला होता ही है, क्योंकि अभावका इंद्रियके साथ संयुक्त विशेषण सम्बन्ध है याने इंद्रियके द्वारा तो इन्द्रियका सम्बन्ध बना पृथ्वीका, तो इन्द्रियसे सीधा संयोग हुआ पृथ्वीका और पृथ्वीपर घड़ा नहीं है, यह उस पृथ्वीका विशेषण बना। तो यों संयुक्त विशेषण सम्बन्ध हो गया इन्द्रियसे। इन्द्रियसे संयोग हुआ पृथ्वीका, पृथ्वीका विशेषण बन रहा है, घड़ा नहीं है तो यों इन्द्रियके साथ अभावका संयुक्त विशेषण सम्बन्ध बन गया और ऐसा ज्ञान होता भी है कि उस घटके अभावसे विशिष्ट पृथ्वीको देख रहा हूं ग्रहण कर रहा हूं। तो भूतल का विशेषण बन गया ना घटका अभाव तो ऐसे घटके अभावसे विशिष्ट भूतलका जब ज्ञान हो तो इन्द्रियसे अभावका सम्बंध बन गया। यों प्रत्यक्षमें भी अभावको विषय कर ही लिया। इस शंकाके उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि यह बात युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो एक पृथ्वी आदिकके सत्त्वको विषय करता है। प्रत्यक्षने अभावको विषय नहीं किया। प्रमाण तो सभी विधायक होते हैं, विधि सत्ता स्वभाव को सिद्ध करने वाले होते हैं। प्रतिषेधको बताने वाले नहीं हैं। क्योंकि यदि प्रत्यक्षके द्वारा अभावका दर्शन करना अंगीकार कर लिया जाय तो फिर कभी भी अभावके अवसानका कारण ही न बनेगा। फिर तो भावके दर्शन होनेका कभी मौका ही न मिलेगा। अब तो प्रत्यक्षसे मान लिया है अभावका दर्शन सो प्रत्यक्ष अभावका दर्शन करता है तो अभाव तो है अनन्त एक वस्तुमें, उस वस्तुसे भिन्न अनन्त वस्तुओंका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभाव पड़ा हुआ है। अब वस्तुमें अभावका दर्शन जब होने लगा तो अनन्त अभावके जाननेमें ही जानने वालेके ज्ञानकी शक्ति क्षीण हो जायगी, कितना अभाव जानेगा ? तो अभाव ही अभावके जाननेमें ही सारा उलझा रहेगा और वहीं ही शक्ति समाप्त हो जायगी। फिर कभी वस्तुके सत्त्वका ज्ञान ही न हो सकेगा अतएव मानना चाहिए कि प्रत्यक्ष अभावका ग्रहण नहीं करता। वह तो केवल भावका ही ग्रहण करता है। यों सर्व विश्व केवल सत्त्व मात्र है। यों एक ब्रह्म अद्वैत ही तत्त्व है यों सत्ताद्वैतवादमें कोई बाधा नहीं आती।

प्रत्यक्षज्ञानसे अभावप्रतिपत्तिके विषयमें योग व ब्रह्मवादियोंकी वार्ता

अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि प्रत्यक्षको अभावका ग्राहक माननेपर जो यह आक्षेप दिया है कि यदि प्रत्यक्ष अभावका दर्शन करने लगे तो अभावके जाननेका कभी अवसान नहीं हो सकता। और तब भावके दर्शन करनेका अवसर ही न आयगा अर्थात् प्रत्यक्ष अस्तित्वका दर्शन कर ही न सकेगा सो यह आक्षेप देना युक्त नहीं है क्योंकि किसी विषयके जाननहार पुरुषके द्वारा स्मरणमें आने वाले घटके अभावका ज्ञान हो गया तो घटके अभावकी प्रतिपत्ति होनेपर इससे अन्य-अन्य प्रकारके जो अनन्त अभाव हैं उनका स्मरण नहीं हो रहा तब प्रत्यक्ष सत्ताका दर्शन कर सके ऐसा अवसर आ जायगा। और यों प्रत्यक्ष सत्ताका भी ग्रहण करने वाला बन जायगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं ब्रह्माद्वैतवादी कि देखिये प्रत्यक्ष जो है वह स्मरणकी अपेक्षा नहीं करता। यदि प्रत्यक्ष स्मरणकी अपेक्षा करने लगे तो वह अपूर्व अर्थका साक्षात्कारी न रहा। अपूर्व कहते हैं उसे जो किसी प्रमाणके द्वारा जाना न गया हो, अज्ञात हो ऐसे अपूर्व अर्थका साक्षात्कार करे कोई ज्ञान तो उसे प्रमाण कहते हैं। अब प्रत्यक्षने तो स्मृतिसे जाने हुए पदार्थका ही ज्ञान किया। अतः वह प्रत्यक्ष अपूर्व अर्थका साक्षात्कारी न बन सका। अतः प्रत्यक्ष केवल अभावको ही देखे ऐसा माननेमें विरोध आता है।

प्रत्यक्षके प्रकारोंको कहते हुए योगों द्वारा प्रत्यक्षसे अभावग्रहणका प्रतिपादन

—अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि प्रत्यक्ष होते हैं दो प्रकारके। भाव प्रत्यक्ष और अभाव प्रत्यक्ष। और वे दोनों होते है दो दो प्रकारके। एक स्मरण निरपेक्ष दूसरा स्मरणापेक्ष। तो इनमेंसे स्मरण निरपेक्ष। भावप्रत्यक्ष तो योगियोंके होता है। जैसे योगियोंका प्रत्यक्ष स्मरणकी अपेक्षा नहीं करता और सीधा ही वस्तुके सद्भावको जान लेता है और कोई होता है स्मरणापेक्ष भावप्रत्यक्ष। जैसे कि यहाँ अल्पज्ञ पुरुषोंने सुख आदिकके साधनभूत किसी पदार्थको देखा और उस पदार्थको देखा और उस पदार्थको देखकर पहिले अनुभव किए गए सुखका साधन है ऐसा ज्ञान किया तो देखिये—अब यह प्रत्यक्ष ज्ञान पूर्व स्मरणकी अपेक्षा करने वाला हो गया ना, सो जैसे किसीको मिठाई खानेकी प्रकृति है। अब वह वर्तमानमें मीठे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भोजनको देखकर पहिले स्मरण करता है, कि इसमें इस इस प्रकारका आनन्द पाया था। यह सुखका साधन है और फिर उस सुखके साधनका स्मरण करके अब प्रत्यक्ष में यह ज्ञान हो रहा है कि यह मिठाई सुखका साधन है तो देखिये अब यह प्रत्यक्ष ज्ञान स्मरणकी अपेक्षा करने वाला हो गया ना! तो भाव प्रत्यक्ष दो प्रकारके हुए। इसी प्रकार अभाव प्रत्यक्ष भी दो प्रकारके हैं। किन्हीं पदार्थोंमें स्मरणकी अपेक्षा न रखकर अभाव प्रत्यक्ष हुआ करता है। जैसे कि योगी पुरुषोंका अभाव प्रत्यक्ष। किन्तु जो अल्पज्ञ पुरुष हैं उनको किसी पदार्थमें जो अभाव प्रत्यक्ष हुआ वह प्रतिषेध्य की स्मृतिकी अपेक्षा रखकर हुआ। शुद्ध भूतल निरखकर जो घटके अभावका प्रत्यक्ष बना तो अभाव प्रत्यक्षमें प्रतिषेध्य घटके स्मरणकी अपेक्षा तो रहती है। ऐसा सब को अनुभव भी होता है। इस तरह कहीं भाव प्रत्यक्ष होता है कहीं अभाव प्रत्यक्ष होता है। और अल्पज्ञजनोंके वह स्मरणकी अपेक्षा रखता हुआ हो जाता है। अतः यह कहना कि प्रत्यक्ष स्मरणकी अपेक्षा नहीं रखता, यह बात युक्त नहीं जचती।

ब्रह्मवादियों द्वारा योगाभिमत अभाव ग्राहकत्वके मन्तव्यका निराकरण—अब नैयायिकोंकी उक्त आशंकाके समाधानमें कहते हैं ब्रह्माद्वैतवादी कि देखिये यदि विकल्पज्ञान कोई स्मरणकी अपेक्षा रख रहा है तो वह प्रत्यक्ष नहीं कहा जा सकता। जैसे कि अनुमान आदिक ज्ञान ये स्मरणकी अपेक्षा रखते हैं तो उन्हें प्रत्यक्ष नहीं कह सकते। प्रत्यक्ष तो यदि समस्त कल्पनाओंका विषयभूत विषय करता है ऐसा मानकर यदि उसे स्मृतिकी अपेक्षा करने वाला मान लिया जाय तो अनवस्था दोष आयगा। वह अनवस्था दोष इस तरह आयगा कि देखो—स्मरणज्ञान जितना होता है वह पहिले किए गए अनुभवकी अपेक्षा किया करता है। और अब नैयायिकोंने यहाँ मान लिया यह कि जितने अनुभव याने प्रत्यक्ष होते हैं वे स्मृतिकी अपेक्षा किया करते हैं। तो अब यह पूर्व अनुभव भी किसी अन्य स्मृतिकी अपेक्षा करने वाला बनेगा। फिर वह स्मृति पूर्व अनुभवकी अपेक्षा करेगा। वह पूर्व अनुभव अन्य स्मृतिकी अपेक्षा करेगा। तो यों अनवस्था दोष आता है। यदि यह कहें कि बहुत दूर जाकर कोई अनुभव ऐसा होता है अर्थात् कोई प्रत्यक्ष अन्तिम ऐसा होता है कि स्मृतिकी अपेक्षा नहीं करता तो भाई जब कोई अनुभव स्मृति निरपेक्ष भी मान लिया गया तो प्रकृत अनुभव भी वर्तमानमें जो कुछ भी जाना जा रहा घट आदिकके अभावका ग्रहण करने वाला यह प्रत्यक्ष भी, स्मृतिकी अपेक्षा नहीं रखता ऐसा मान लो। इसमें ही स्मरणापेक्षपनेकी कल्पना क्यों की जा रही है? यह कल्पना व्यर्थ होती है।

सहयुक्त प्रत्यक्ष द्वारा तुच्छ अभावका ग्रहण किये जानेके सम्बन्धमें योग व ब्रह्मवादियोंका विवाद—अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि पूर्व अनुभव किए गए पदार्थको विषय करने वाली स्मृति किसी भी प्रकार अपूर्व अर्थमें जैसे कि प्रकृतमें अभावकी बात चल रही उस अभाव अर्थमें ज्ञान उत्पन्न करनेके लिये समर्थ हो ायगी।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अर्थात् स्मृति अभावका ज्ञान करानेमें समर्थ है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात संगत नहीं बैठती कारण कि यदि स्मृति उस अपूर्व अर्थमें कुछ ज्ञान करानेका सामर्थ्य रख सकी तो प्रत्यभिज्ञान नामक ज्ञानको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य रख सकी है। कभी कभी तो स्मृति जिसकी स्मृति हुई है उस ही अब वर्तमान पदार्थका ज्ञान करानेमें सामर्थ्य रखती है। वह तो हुआ एकत्व प्रत्यभिज्ञान। और कभी-कभी पूर्व प्रत्यक्ष किए हुए पदार्थका स्मरण होकर जो वर्तमानमें अन्य अर्थका सादृश्यरूपसे कुछ ज्ञान कराता है तो वह होता है सादृश्य प्रत्यभिज्ञान क्योंकि उस स्मृतिने यहाँ सजातीय अर्थका स्मरण कराया। तो स्मृति किसी प्रत्यक्षभूत पदार्थका ज्ञान करानेमें सहयोगी तो है लेकिन उस सहयोगमें प्रत्यभिज्ञान नामका ज्ञान बनेगा, प्रत्यक्ष ज्ञान न बनेगा देखिये ! पूर्व अनुभूत किए हुए घटमें तो स्मरण बने और वह उससे विजातीय पदार्थान्तरमें याने घट रहित भूतलमें उसका अभाव जो विजातीय है उसका ज्ञान उत्पन्न कराये तो ऐसी अटपटी अनहोनी बातको कौन बुद्धिमान मान सकता है ? अतः यदि प्रत्यक्षको स्मरणापेक्ष मान लिया जायगा तो वह प्रत्यक्ष अपूर्व अर्थका साक्षात्कारी न बन सकेगा, इस कारण यह मानना चाहिए कि समस्त प्रत्यक्ष ज्ञान स्मृति निरपेक्ष ही होते हैं। और, वह प्रत्यक्षज्ञान यदि अभावको विषय करने वाला मान लिया जायगा तो अनन्तों अभावके ज्ञानमें उलझे रहना होगा, फिर ऐसी स्थितिमें किसी पदार्थके सत्त्वका दर्शन होनेका अवसर ही न आ सकेगा क्योंकि अभावके ही ज्ञानमें उलझे रहनेसे अभावके दर्शनका ही पूरा काम न बनेगा।

यौगाभिमत भावदिदृक्षाकी कारणताके मन्तव्यकी मीमांसा—यहाँ नैयायिक कहते हैं कि जो जानने वाला पुरुष है उसको पदार्थके भावके जाननेकी इच्छा हुई है तो वह सत्त्वके दर्शनकी इच्छा पदार्थमें सत्त्वके प्रत्यक्षका कारण बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी युक्तिसंगत नहीं जचती। कारण कि प्रत्यक्षज्ञान पुरुषकी इच्छाकी अपेक्षा नहीं रखता। देखिये ! जैसे—घटके दर्शनकी इच्छा भी हो रही है लेकिन घट न हो तो घट रहित प्रदेशमें घटका दर्शन नहीं हो रहा और कभी घटके दर्शनकी इच्छा नहीं हो रही फिर भी सामने यदि घट है तो उसके दर्शन हो जाते हैं। इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि पुरुषको जब भावकी दिदृक्षा हुई तो वह सत्ताके दर्शनका कारण है याने पदार्थको देखनेकी इच्छासे पदार्थका सत्त्व देख लिया जाना नहीं बनता। यों प्रत्यक्ष ज्ञान अभावको नहीं जान सकता है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो सत्तामात्रका ही कथन करने वाला है। प्रत्यक्षकी प्रमाणता तो वस्तुके सत्त्वमात्रसे ही बनती है। यों प्रत्यक्ष जो कुछ जानेगा वह केवल सत्स्वरूपको जानेगा। प्रत्यक्षका विषय अभाव नहीं है। तब वह पदार्थमें रहनेवाले विशेषोंको भेदोंको किस तरह जान सकेगा और जब भेदको जान न सकेगा तो यह सिद्ध होगया कि सारा विश्व सत्तामात्र है उसमें कोई विशेष या अभाव नहीं है। तब नैयायिकोंका यह कहना कि इतरेतराभावके दर्शन होनेसे वस्तुमें विशेषोंका भेदोंका ज्ञान होता है, यह कथन अयुक्त है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वस्तु केवल सत्वमात्र है और सत्त द्वैत हो सत्व होनेसे न प्रकृति पुरुषका भेद है और न घट पट आदिक पदार्थोंका भेद है। यों तत्त्वमें केवल ब्रह्माद्वैतमात्र है।

निःस्वभाव अभावकी अनुमानसे भी प्रतिपत्तिकी अशक्यता - यहाँ नैयायिक कहते हैं कि यदि अभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं होता तो मत हो, पर अनुमानसे तो अभावका ज्ञान बन जायगा। इस शंकापर ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि जब निःस्वभाव अभाव है, तुच्छाभावरूप अभाव है, भावसे सम्बन्ध ही नहीं है तो वह समस्त शक्तियोंसे रहित कहलाया। और जो समस्त शक्तियोंसे रहित निजस्वभाव अभाव है उसकी सिद्धि करने वाला न तो स्वभाव हेतु हो सकता है और न कार्यहेतु हो सकता है। तो स्वभावलिंग और कारणलिंगकी असम्भवता होनेसे फिर अनुमानसे अभावकी प्रमिति कैसे हो सकती है? जो स्वभावरहित है, तुच्छाभाव है, असत् है उसका तो कोई स्वभाव ही नहीं हो सकता। यदि कोई स्वभाव मान लिया जाय तब तो वह भाव विसरूप हो गया, फिर अभाव कहाँ रहा? तो इस ही कारण निःस्वभाव अभावको सिद्ध करने वाला कोई स्वभावलिंग हो हो नहीं सकता और इस ही प्रकार कार्यलिंग भी अभावको सिद्ध करने वाला नहीं हो सकता। क्योंकि यदि अभावका साधक कोई कार्यलिंग बनता है तब अभाव भाव स्वभावरूप बन गया। यदि कार्य है लिंग तो उसका साध्य कारण है तो कारण सद्रूप बन जायगा। फिर अभाव कहाँ रहा? यों न तो किसी स्वभावसे और न किसी कार्यरूप हेतुसे अभावकी प्रमिति होती है। अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि अनुपलब्धि तो अभावकी सिद्धि कर देगा अर्थात् अनुपलब्धिरूप हेतु अभाव ज्ञानकी सिद्धि कर देगा। इसके उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि अनुपलब्धि तो अभावकी असिद्धिकी ही व्यवस्था करेगे, क्योंकि अभाव माना गया है तुच्छाभाव और तुच्छाभावका अर्थ है असत्। तो अनुपलब्धि हेतुसे तुच्छाभावकी सिद्धि करनी होगी सो अभावसे अभाव कैसे सिद्ध होगा? अनुपलब्धि तो अनुपलब्धि ही सिद्ध करेगी। उस तुच्छाभावका अभाव ही बतावेगा। अतएव अनुपलब्धिरूप हेतुसे भी निःस्वभाव अभावकी प्रतीति नहीं हो सकती। प्रमितिका अर्थ है प्रमाण, जानकारी। तो अभाव कोई प्रमाण है, कोई तत्त्व है इसकी व्यवस्था जैसे प्रत्यक्षसे न हो सकी थी, अनुमानसे भी नहीं हो सकती है। नैयायिक कहते हैं कि भावोंकी अनुपलब्धि होनेसे तो अभावकी प्रमिति बन जायगी। अभावरूप होकर भी फिर यदि नहीं पाया जाता तो उस अनुपलब्धिसे अभावसे ही तो प्रमाण व्यवस्थित होता है। उत्तरमें ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि यह कथन भी सही नहीं है क्योंकि तुम्हारे कहे गए हेतुसे अर्थात् भावरूप होनेपर फिर अनुपलब्धि होना इस हेतुसे तो भावान्तर स्वभावरूप ही अभावका प्रतिभास बना। जब यह हेतु हो गया कि कोई पदार्थ भावरूप है और फिर उसकी अनुपलब्धि है तो वह अभाव है। तो इस कथनसे तो तुच्छाभाव नहीं आया। किन्तु जो शुद्ध भूतल भावरूप बना जिसकी सत्ता ग्रहण की गई। तो वह भावान्तर स्वभावरूप ही तो अभाव सिद्ध हुआ। इस तरह अभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की सिद्धि न प्रत्यक्षसे हो सके । न अनुमानसे हो सकेगी। जब किसी प्रमाणसे अभाव की सिद्धि न हुई तो कभी कोई विरोधी लिङ्ग उपस्थित करके अर्थात् अभावका विशेषी हो भव और भावरूप लिंग उपस्थित करके निज स्वभाव अभाव की सिद्धि करना चाहे तो वह अशक्य है। विरोधी लिङ्गसे भी स्वभावरहित तुच्छाभावरूप अभावकी प्रसिद्धि नहीं हो सकती।

निःस्वभाव अभावकी प्रमाणपञ्चकनिवृत्तिसे प्रतिपत्तिके मन्तव्यकी मीमांसा—यहां मीमांसक सिद्धान्तके अनुयायी कोई शंकाकार कहते हैं कि सत्ताका अनुपलम्भ करने वाले प्रमाण पांच हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, अर्थापत्ति, उपमान और आगम ये ५ प्रमाण जहाँ घटित न होते हों सत्ताको सिद्ध करने वाले ५ प्रमाण जहाँ जहाँ निवृत्त हो जाते हैं वहाँ तो अभावकी प्रमिति बन जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी मिथ्या है, क्योंकि प्रमिति अर्थात् अभावका जो प्रमाण किया गया वह अथवा सत्ताका ग्रहण करने वाले पाँचों प्रमाणोंकी निवृत्ति भी तो निज स्वभाव है। तो निज स्वभाव है, वह भी तो तुच्छाभावरूप है सो पाचों प्रमाणोंका अभाव वह भी स्वभाव रहित हुआ। तब अभावमें प्रमितिको उत्पन्न करनेकी, प्रमाणपंचक निवृत्ति अभावको प्रमाणित करनेकी सामर्थ्य नही है। प्रमाण निवृत्ति कुछ चीज ही नहीं है, तुच्छाभाव है। अतएव सत्ताको ग्रहण करने वाले पाँच प्रमाणोंकी निवृत्तिसे किसी भी अभावकी प्रमिति उत्पन्न नहीं हो सकती है, क्योंकि सत्ताका उपलम्भ करने वाले ५ प्रमाणोंके रूपसे जो परिणमा नहीं है ऐसे अभावमें कुछ जानकारी बने इसका विरोध है, क्योंकि अभाव होता है दो प्रकारका प्रसज्यरूप और पर्युदासरूप, प्रसज्य का अर्थ है सर्वथा उसका निषेध करना अर्थात् जो बात प्रसंगमें आती हो उसका प्रतिषेध कर देना, किन्तु पर्युदासरूपका अर्थ है कि यह नहीं किन्तु इसके एवजमें अन्य कुछ। जैसे किसीने कहा कि अब्राह्मणको लावो तो इसका अर्थ यह भी हो सकता कि ब्राह्मणको मत लावो अन्यके लानेका कोई संकेत नहीं हो, और इसका अर्थ यह भी हो सकता कि ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य किसीको लावो, तो ब्राह्मणके अतिरिक्त अन्य किसीको लावो यह अर्थ तो पर्युदास रूप है और लावो ही मत, सर्वथा निषेध करना यह प्रसज्य प्रतिषेधरूप है। तो अब अभावमें यह बतायें कि प्रसज्य प्रतिषेधरूप अभाव की बात करते हो या पर्युदासरूप अभावकी बात करते हो। यदि प्रसज्य प्रतिषेधरूप अभावकी बात कहते हो तो वहां कुछ है ही नहीं, ऐसे अपरिणामको किस प्रमाणसे ग्रहण नही हो सकता, क्योंकि लोकमें परिणाम ही देखा जाता है। जो विधिरूप है, व्यक्त रूप है वही दिखनेमें आ सकता है। जैसे मृत्पिण्डका अभाव घटका उत्पाद। यदि कोई कहे कि हमने देख लिया मृत्पिण्डका अभाव है, तो देखा क्या? घटकी सकल देखी क्योंकि मृतपिण्डके अभावका घटके उत्पादरूपसे परिणम जानेका ही स्वभाव है, या उत्तरके पर्यायके उत्पादका ही नाम पूर्व पर्यायका व्यय है। तो अभाव भावस्वरूप कहलाता है। अभावकी कुछ मुद्रा ही नजरमें आयी। अभाव तुच्छाभावकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पद्धतिसे दृष्टिमें नहीं आ सकता है। तो प्रसज्य प्रतिषेधरूप अभावकी प्रमाणताकी विरोध है। यदि कहो कि हम पर्युदासरूप अभाव कहेंगे। जैसे घटका अभाव बताते तो घटसे अन्य है भूतल। पृथ्वीमें पृथ्वीका विज्ञान हुआ इस ही के मायने हैं घटकी निवृत्ति। तो यों अन्य पदार्थोंके सद्भावरूप अभावको यदि मानते हो तब तो उस विज्ञानसे अतिरिक्त किसी भावरूप वस्तुके विज्ञानसे निःस्वभाव अभावकी प्रसिद्धि न हो सकी। उससे तो यही सिद्ध हुआ कि अभाव सद्भावरूप हुआ करता है। क्योंकि यहाँ अब अन्य वस्तुके सद्भावरूप ही अभाव सिद्ध हुआ। अभावको जाननेका अन्य कोई प्रकार नहीं है। इस कारण निःस्वभाव अभावके किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सकता है।

अभावके निराकरणमात्रसे सत्ताद्वैतवादकी सिद्धिकी असंगतता—उक्त प्रकार ब्रह्माद्वैतवादियोंने अभावका प्रतिषेध किया, क्योंकि उनका सिद्धान्त है एक सत्ताद्वैत। किन्तु मात्र अभावके निराकरणका प्रयत्न कर देनेसे कि निःस्वभाव अभावका न तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे ज्ञान होता है और न अनुमान प्रमाणसे ज्ञान होता है, कदाचित् इस बातको मान लिया जाय लेकिन इतने मात्र कथनसे सत्ताद्वैतको सिद्धि नहीं होती अर्थात् एक अस्तित्व मात्र ही हो, कुछ केवल सत् ही हो सब एक-मात्र इस बातकी सिद्धि नहीं होती। प्रमाणसे तो वस्तुके नानापनका ही परिज्ञान हो रहा है। अतएव ऐसा भावैकान्त जिसमें किसी भी प्रकारसे अभावको स्वीकार न किया जाय। केवल सन्मात्र ब्रह्ममात्र ऐसे सत्ताद्वैतकी मान्यता युक्त नहीं होती है।

बुद्धयादिकार्यनानात्व मात्रसे वस्तुके नानात्वका सत्ताद्वैतवादियोंका कथन—अब सत्ताद्वैतवादी कहते हैं कि वस्तुवोंमें जो नानापनका परिज्ञान हो रहा है सो वस्तु नाना हैं इस कारणसे नहीं हो रहा, किन्तु बुद्धि आदिक कार्य नाना पाये जारहे हैं इस कारणसे वस्तुमें नानापनका परिज्ञान होता है, अन्यथा नहीं। यदि नाना बुद्धि आदिक के हुए बिना वस्तुमें नानापन सिद्ध हो जाय तब तो लोकमें एक पदार्थ कुछ ठहरेगा ही नहीं जहाँ बुद्धि आदिक कार्य नाना न हो रहे हों और फिर वस्तु मान ली जाय नाना तब तो एक कुछ न रहेगा इस कारण यह समर्थन करना सदोष है कि वस्तुके नानापनका ज्ञान होनेसे सत्ताद्वैतकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि नाना कारणपना तो एकत्व होनेपर भी देखा जाता है। कहीं स्वभाव एक है। अभेद है तो भी नाना क्रिया वहाँ देखी गई है। जैसे कोई एक नर्तकी का नृत्य हो रहा है, अब उसपर एक साथ जितने दर्शक भी दृष्टि लगाये है, उन सब दर्शक जनोंके नाना भाव हो रहे हैं, नाना क्रियायें हो रही हैं। सुखादिक भी सबके नाना हो रहे हैं। तो देखो! नर्तकीका रक्षिणमन तो एक है। वहाँ तो स्वभावका अभेद है और फिर भी नाना कार्य हो रहे। तो स्वभावके अभेद होनेपर भी नाना क्रियायें देखी जाती हैं। इस कारण यह कहना कि बुद्धि आदिक रूप कार्य नाना हैं तो परमार्थतः वस्तु नाना हो जाये, यह बात युक्त नहीं बैठती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शङ्काकार द्वारा कार्यनानात्व होनेपर भी वस्तुनानात्व न माननेके मंतव्यकी मीमांसाकी मीमांसा—ब्रह्माद्वैतवादी उक्त कथनके प्रसंगमें कहे जा रहे हैं कि जो ब्रह्माद्वैतवादीने यह कहा है कि विविध कर्म क्रिया आदिक तो स्वभावके अभेद होनेपर भी हुआ करते हैं, इस कारण बुद्धि आदिक नाना कार्य होना, नाना कर्म होना, ये नानापनको सिद्ध नहीं करते। सो इस सम्बन्धमें सुनो—जो दृष्टान्त दिया है नर्तकीका कि नर्तकीको देखकर अनेक लोग अनेक प्रकारके अपने सुख ज्ञानादिक भावों को करते हैं तो वह नर्तकी एक है मगर उसमें स्वभावभेद कितने हैं सो बात यह है कि नर्तकी आदिककी क्रियावोंमें स्वभावका भेद है ही। स्वभावका अभेद असिद्ध है क्योंकि शक्तिका नानापन उसमें मौजुद है, इस कारण कार्यके नानापनसे जो साधन बनाया गया है शक्तिका नानापन सिद्ध करनेके लिए वह व्यभिचारी नहीं हो सकता और यह बात संयुक्तिक है कि जब कार्य नाना हो रहे हैं तो स्वभावमें भी नानापन है, उतनी ही शक्तियाँ है जितने कि कार्य होते हैं। इसपर सत्ताद्वैती कहते हैं कि नर्तकी आदिक किसी एक पदार्थमें जो शक्तिका नानापन प्रतीत होता है वह कार्यविशेषसे ही तो कह रहे हो कि चूँकि उसके निमित्तसे दिखता उससे कार्य नाना प्रकारके होते हैं, इस कारण उस पदार्थमें शक्ति नाना है, सो आपका यह कार्य विशेष नामक हेतु जब यह व्यभिचारी बन जाता है तब फिर उस कार्य नानापनसे शक्तिके भी नानापनकी सिद्धि कैसे हो सकती है? समाधान कर्ता कहते हैं कि जो नर्तकीका काल है, परिणति है उसमें भी तो शक्ति नाना मानी गई है। और, जब शक्ति उसमें नाना है और उसी को सिद्ध करनेके लिए बुद्धि आदिक कार्य विशेष हेतु दिया गया है कि चूँकि दर्शक जनोंकी नाना प्रकारकी बुद्धि अथवा नामकरण या सुखादिक कार्य होते हैं, अतः शक्ति नाना है यह सिद्ध होता है फिर वह प्रसव विशेष नामका हेतु अर्थात् नाना कार्योंको उत्पन्न करता है, इस प्रकारका जो हेतु है वह व्यभिचारी कैसे होगा? प्रसव विशेष नामका हेतु निर्दोष है और वह शक्तिकी विविधताको सिद्ध करता है इस पर सत्ताद्वैतवादी कहते हैं कि यदि बुद्धि आदिक कार्य विशेषके साधनसे शक्तिमें नानापन मानोगे तो इसमें अनवस्था दोष आता है, फिर तो नर्तकी आदिक किसी क्षणमें याने किसी सत्वमें, परिणमनमें एक शक्तिमें अर्थात् नाना शक्तियोंमेंसे किसी भी बुद्धि आदिक कार्य नाना हो रहे हैं ऐसा दिखाकर शक्तिके नानापनका प्रसंग आ गया। मायने उस एक शक्तिमें नाना शक्तियोंकी सिद्धि होती है। फिर जो नाना शक्तियोंकी सिद्धि होगी उसमें भी प्रत्येक शक्तिमें नाना शक्तियोंकी सिद्धि होगी, इस तरह उन शक्तियोंका ही परिचय न पाया जा सकेगा। तो प्रकृतमें शक्ति नाना है, इसकी सिद्धिका अवसर ही कहाँसे आयगा और इस तरह जब कि अनवस्था दोष आता है तब बहुत दूर जाकर भी अर्थात् अनवस्थाकी पद्धतिमें बहुत दूर तक अनवस्थाका आक्रमण सहकर फिर कहीं ऐसा अगर मान लेते हैं कि बुद्धि आदिक कार्य विशेष होनेपर भी अब शक्ति नाना नहीं हैं। तो जब अनवस्थासे तंग होकर किसी जगह यह मानना पड़ा कि बुद्धि आदिक कार्य विशेष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होनेपर भी शक्तियाँ नाना नहीं है, तब आपका हेतु कैसे व्यभिचारी न होगा ? और, फिर यह स्वभावका अभेद कैसे सिद्ध न होगा ? फिर तो वस्तुमें नानाधर्मोंका ज्ञान न बन सकेगा।

सत्ताद्वैतवादियों द्वारा केवल अविद्यासे नानामिथ्याव्यवहारके उपनयनका कथन—यहाँ कोई शंका करते हैं ब्रह्माद्वैतवादियोंसे कि अगर वस्तुमें विविधता नहीं मानते, उसमें नाना शक्ति, नाना कार्य यदि नहीं मानते तब फिर देशकी अवस्थाका भेद और कालकी अवस्थाका भेद यह सब कैसे घटित होगा ? इसपर सत्ताद्वैतवादी कहते हैं कि बात यह है कि स्वयं असत् होकर भी केवल यह अविद्या अपनेमें और दूसरेमें विद्यमान पदार्थोंको जहाँ कि स्वभावका भेद देशकालका भेद और अवस्थाका भेद नजर आता है, इस भेदको मिथ्या व्यवहारकी पदवीमें ले जाता है अर्थात् अविद्याके कारण ये सब देश काल अवस्थाके भेद जचा करते हैं। और, फिर जिस कारणसे कि क्षणिकवादियोंके जो भिन्न संततिका मंतव्य है और स्कंधोंकी मान्यता है वे सब विकल्पित हो जायेंगे कि इसमें सत्य कौन है ? क्षणिकवादियोंने स्कंध ५ माने हैं —विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप तो, इन स्कंधोंके और भिन्न संतति वाले के सम्बन्धमें विकल्प बन जाता है कि नैयायिक द्वारा माने गए नित्य पदार्थ एक संतति वाले वे भी मिथ्या हैं और यहाँ क्षणभंगवादमें भी मिथ्या है। इस तरह चूँकि विकल्प नाना हैं तब सत्ताद्वैतवादी इन सब विशेषोंका अपह्नव करते हैं। वस्तुमें कोई भेद अथवा धर्म नहीं है, न वस्तु एक सत्तामात्र ही है। क्षणिकवादियोंके ही द्वारा कहा गया विज्ञान वेदनादिक स्कंध और नैयायिकोंके द्वारा कहे गये द्रव्य, गुण, कर्मादिक पदार्थ वे सब निःस्वभाव अभावकी तरह वस्तुतः सिद्ध नहीं होते क्षणिकपना अक्षणिकपना और कुछ अंश नित्य कुछ अंश अनित्य इस प्रकारसे निरपेक्ष नित्यानित्यपना अथवा कोई स्वभाव ही न मानना। न वस्तुमें नित्यपना है न अनित्यपना है, न उभयपना है, अर्थात् शून्य है। इस तरह शून्यादिक विशेषकी सिद्धि करनेमें भी साधनमें व्यभिचार आता है। अर्थात् ये भी सिद्ध नहीं होते तब एक विशुद्ध सत्त्व मात्र ही सिद्ध होता है। इस प्रकार सत्ताद्वैतवादियोंने एक सन्मात्र तत्त्वको सिद्ध करना चाहा और वे इस भावैकान्तको चरमसीमा पर ले गये। भावैकान्तवादियोंमें कुछ तो ऐसे सिद्धान्त हैं कि जो अनेक पदार्थ मानकर भी उन पदार्थोंमें एक सत्त्वका एकान्त करते हैं। किसी भी प्रकार उनमें अभाव नहीं मानते, लेकिन सत्ताद्वैतवादी उन भावैकान्तवादियोंमें बढ़ चढ़के यह कह रहे हैं कि पदार्थ भी नाना नहीं है। ऐसा एक सत्त्व ही तत्त्व है अन्य भावोंकी तो चर्चा दूर रहे। इस प्रकार भावैकान्तमें अपनी एक प्रमुखता जाहिर करते हुए सत्ताद्वैतवादी सन्मात्र ब्रह्मकी सिद्धिका प्रयास कर रहे हैं।

सर्वथा अभेदवादमें इष्ट मन्तव्यकी सिद्धिकी अशक्यताके वर्णनमें उक्त शंकाओंका समाधान अब उक्त शंकाओंके समाधानमें स्याद्वादी कहते हैं कि सत्ता-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

द्वैतवादियोंके द्वारा कहा गया जो परमतका निराकरण है उसको स्वीकार करते हैं अर्थात् अन्य भ वैकान्तादिक अथवा अभाव एकान्त आदिकके सम्बन्धमें जो कुछ निराकरण किया है वह तो कुछ मानने योग्य है लेकिन केवल ब्रह्म विश्व सन्मात्र है, केवल सत्ताका ही अद्वैत है इस सम्बन्धमें आपत्ति है और यह मंतव्य दूषित है। मुख्य प्रतिभास और वस्तुके विविध कार्य इनमें यदि अभेद मान लिया जाय तो अभेद होनेपर भी किसी एक ब्रह्मके एकत्वको सिद्ध कैसे किया जायगा ? क्योंकि एकत्वके मायने है सब कुछ एक मात्र। वहाँ साध्य साधन भी न रहे, साध्य साधनका भी अभेद हो गया, तो अब यह बतलावो कि किसके द्वारा और क्या सिद्ध किया जा रहा है ? न साधन है न साध्य है। न पक्ष है न विपक्ष है। जहाँ सत्ताद्वैतका मत है केवल एक सन्मात्र तो जब पक्ष विपक्ष साध्य साधन ये कोई तत्त्व नहीं रहते तब फिर अनुमान ही क्या और किस साधनके द्वारा किसकी सिद्धि करनेकी बात। यदि मान लेते हैं साध्य साधन आदिक भेद तो सत्ताका अद्वैत नहीं रह सकता। लो यहाँ अब साध्य साधन आदिक बहुतसे तत्त्व हो गए। तो यों केवल सत्त्वका अद्वैत माननेपर एकत्व भी सिद्ध नहीं हो सकता। भला बतलाओ कि सत्तामात्र ही है स्वरूप जिसका ऐसा किसी परम ब्रह्म का जो समर्थन करते हैं वे एकत्वको किस तरह सिद्ध करेंगे ? प्रतिभास कार्य है इस हेतुसे सिद्ध करोगे या प्रतिभासमात्र है इस हेतुसे सिद्ध करोगे या स्वभावहेतुसे सिद्ध करोगे ? अथवा कारणभेदका भाव है अतएव सन्मात्र है ऐसा सिद्ध करोगे ? किसी भी साधनके द्वारा तो सिद्ध करनेका ही प्रयास करोगे, सो जो भी साधन देवे वह साधन तो साध्यसे अभिन्न ही रहेगा। यदि अभिन्न न रहे तो द्वैतका प्रसंग आता है। साधन अलग चीज हुई साध्य अलग वस्तु हुई। तो जब साधन और साध्य यदि भिन्न होते हैं तब तो इष्ट मंतव्यकी सिद्धिका कोई उपाय नहीं रहता। और साधन साध्य आदिक सब मानते हैं तो एक बात न रही। अब तो अनेक बातें हो गई। फिर अद्वैत न रहा साध्य साधनके अभेद होनेपर प्रतिभासादिक हेतुसे क्या एकत्व निर्णीत हो सकता है ? साधन जहाँ हो वहाँ साध्य होता है। साध्य जहाँ न हो वहाँ साधन नहीं होता। यह जब घटित कर हो लोगे तब तो साधन साध्यका साधक होगा, पर यह घटित हो ही नहीं सकता सत्ताद्वैत एकान्तमें, क्योंकि वहाँ पक्ष विपक्ष सपक्ष कुछ भी नहीं है जिसमें साध्य धर्म बताया जाय उसका तो नाम पक्ष है अब सभी पदार्थ असिद्ध हैं तो उनसे भिन्न कोई साध्यधर्म रहा ही नहीं तब किस साध्यको सिद्ध करोगे, इस कारण सत्ताद्वैतके एकान्तमें यह कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता।

साध्य साधनादिका भेद माने बिना अभेद साधक अनुमानकी असिद्धि

सन्मात्र ब्रह्मवादके आग्रहमें सन्मात्र तत्त्वकी सिद्धिका कोई उपाय ही नहीं हो सकता। उस सन्मात्र तत्त्वको यदि अनुमानसे सिद्ध करनेका प्रयास करें तो अनुमान बन ही कैसे सकता ? क्योंकि सत्ताद्वैतके आग्रहमें पक्ष, विपक्ष, सपक्ष साध्य साधन इस सबका अभाव है। देखिये ! साध्य धर्मका आधाररूपसे प्रसिद्ध होना उस हीको तो पक्ष कहते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। अब समस्त पदार्थ याने कुछ भी तो सत्ताद्वैतमें प्रसिद्ध हो नहीं है क्योंकि एक सन्मात्र तत्त्व है, तब धर्मियोंसे भिन्न होनेके कारण जो एकत्व है साध्य धर्म है, सन्मात्र साध्य है वह असम्भव हो गया तब पक्ष किसी भी प्रकार सिद्ध न हो सका। विपक्षकी बात सुनो, विपक्ष कहलाता है वह जो पक्षसे विरुद्ध हो, जिसमें साध्य न पाया जाय। तो पक्षसे विरुद्ध कुछ क्या होगा ? पक्ष ही कुछ नहीं है। विरुद्ध धर्मका अध्यास कहाँ बताया जाय ? विपक्ष भी अद्वैतवादमें अपना कुछ स्वरूप नहीं रखता। सपक्ष कहलाता है वह जहाँ ऐसा उदाहरण दिया जा सके कि साध्यधर्मका अविनाभूत साधन सिद्ध किया जा सके। तो जब सत्ताद्वैतमें केवल सन्मात्र ही है तो सपक्ष कहाँ रहा ? और, यदि इस किसीको भिन्न मान लेते हैं कि पक्ष भी है, सपक्ष है विपक्ष है, साधन तब फिर भेदवाद प्रसिद्ध हो गया। अद्वैत कहाँ रहा ?

पराभ्युपगत भेदसे स्वार्थ सिद्धिकी अशक्यता—यहाँ ब्रह्माद्वैतवादी कहते हैं कि हम नहीं मानते हैं इन सब भेदोंको, लेकिन दूसरोंने तो पक्षादिक भेदोंको माना है। तो दूसरोंके माननेसे पक्षादिक सिद्ध हो जायेंगे। फिर सत्ताद्वैतके साधक अनुमान में कोई दोष न आयगा। इसके उत्तरमें कहते हैं कि सत्ताद्वैतमें तो स्व और परका विभाग भी सिद्ध नहीं होता कि कौन स्व है, कौन पर है ? जब एक सत्ताका ही अद्वैत है, अन्य कुछ माना ही नहीं गया तो स्वपर कहाँ विभक्त हो सकता है ? और स्व पर मान लिया जाता है तो फिर अद्वैत अभेद एक रहा कहाँ ? देखो ! स्व भी है और पर भी है। तो अद्वैतवादमें स्व और परका भेद भी न हो तो पराभ्युपगम भी असिद्ध है जिस पराभ्युपगमसे आप पक्षादिके सिद्ध करना चाहते हैं तो पक्ष सपक्ष विपक्ष जब ये कुछ न रहे और इन सबके न रहनेसे अनुमान भी न बन सकेगा और तब अनुमानसे सत्ताद्वैतकी सिद्धि नहीं हो सकती।

अभेदाद्वैतसाधक अनुमानकी असंगता—जब अद्वैतवादमें पक्ष सपक्ष, विपक्षकी असिद्धि है तब जो ब्रह्म द्वैतवादमें प्रतिभास द्वैतकी सिद्धिके लिए जो एक अनुमान बनाया है वह भी असिद्ध है। अद्वैतवादियोंने कहा है कि समस्त पदार्थ प्रतिभास के अन्तः ही प्रविष्ट है क्योंकि प्रतिभास समानाधिकरणरूपतासे उनकी भासना होती है। जैसे कि प्रतिभासस्वरूप। तो यों जो ब्रह्माद्वैतका साधन बताया जाता वह भी खण्डित हो जाता। इसका कारण यह है कि न ज्ञाता है, न ज्ञेय है, न पदार्थ है, न पक्ष है, न सपक्ष है, न विपक्ष है। तो यह अनुमान बनेगा किस प्रकार। तो अद्वैतमात्रके आग्रहमें अनुमान प्रमाण की व किसी भी अन्य प्रमाणकी व्यवस्था नहीं बनती। प्रमाण मानोगे तो प्रमेय भी है, फिर प्रमाणके साधन भी है। अद्वैत वाद फिर रहा कहाँ ? अपेक्षाभेदसे विपक्षासे तो तन्मात्र पर्याय भी सब सिद्ध की जा सकती है, किन्तु एकान्त आग्रह करके न केवल सत्त्व सिद्ध किया जा सकता न केवल भेद, असत्त्व सिद्ध किया जा सकता। तो यों सत्ताद्वैतकी सिद्धि नहीं बनती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वथा अभेदवादमें आम्नाय आगममें प्रत्यक्ष अनुमानादिका अप्रवेश— शंकाकार कहते हैं कि उस सत्ताद्वैतकी आम्नायोंमें ही सिद्धि हो जायगी। हमारा जो आगमका आमनाय चला आ रहा है, वेद शास्त्र आदिक जो कुछ हम मानते चले आये हैं उससे सत्वाद्वैतकी सिद्धि हो जायगी। सो इसका उत्तर यह है कि इस तरह सिद्ध करना भी असम्भव है क्योंकि वह आम्नाय वह धर्मशास्त्र भी तो साध्यसे अभिन्न है। साध्य है ब्रह्मसत्वमात्र। जब उसमें ही वह अभिन्न है तो आम्नाय भी साधन नहीं बन सकता कि किसी तत्वको वह सिद्ध कर सके। इससे यहां निर्णय हुआ कि जब साध्य और साधनका एक अभेद बन गया (अन्यथाद्वैतका प्रसंग आता है) तो इस द्वैतवादमें जब साध्य और साधन भी भिन्न चीज न रहे तो किस अनुमानसे और क्या सत्ताद्वैत सिद्ध हो सकता है ? अथवा किस आगमसे या प्रत्यक्ष प्रमाणसे सत्ताद्वैत सिद्ध हो सकता है ? जब पक्ष सपक्ष आम्नाय इन्द्रियादिक अनुमान आगम प्रत्यक्षज्ञान किसी भी प्रकारका प्रमाण कारण नहीं ठहरता तब सत्ताद्वैतकी सिद्धिका उपाय क्या रहेगा ? अनुमान प्रमाण तो बन सकेगा जब पक्ष, सपक्ष विपक्ष सिद्ध हो। अद्वैतमें इसकी सिद्धि नहीं है। आगम तब कारण बन सकेगा जब कि आम्नाय सिद्ध हो। भिन्न-भिन्न पुरुषोंके वचनोंकी धारणा चलती आयी हो, किन्तु अद्वैतमें ये सब द्वैत कहां सम्भव हो सकते ? प्रत्यक्षमें कारण पड़ता है इन्द्रिय। जब इन्द्रिय आदिक सत्ताद्वैतमें कुछ नहीं ठहरता तो प्रत्यक्ष प्रमाण बने कैसे ? तो इन सबके अभाव होने से वह ब्रह्म सन्मात्र उन प्रमाणोंके द्वारा साधा गया नहीं बन सकता, क्योंकि साध्य की सिद्धि कहीं भी असाधन नहीं देखी गई याने साधन तो हो नहीं और साध्यकी सिद्धि बन जाय ऐसा कहीं भी सम्भव नहीं होगा। यदि साधनके बिना साध्यकी सिद्धि बन जाय तो इसमें बड़ी विडम्बना होती है। साधन तो प्रमाण कहलाता, ऐसा प्रमाण कि जिसके द्वारा इष्ट मंतव्यकी सिद्धि की जाती, निर्णय किया जाता तो वही साधन जब न हुआ तो किसी साध्यके प्रमेयकी सिद्धि नहीं हो सकती। यदि साधनके बिना कुछ भी सिद्ध किया जाने लगे तो यों शून्य तत्त्व भी सिद्ध हो जाय कि सत्ताद्वैत भी नहीं है कुछ भी नहीं है और कुछ भी न होना यही मात्र तत्व है, यह भी सिद्ध कर दिया जायगा।

स्वरूपकी स्वतः गतिमाननेमें सर्व मन्तव्योंकी सिद्धि होनेसे तथ्यका अनिर्णय— अद्वैतवादी कहते हैं कि स्वरूपकी तो स्वतः ही गति हो जाती है याने जो सत्त्वका ब्रह्मका स्वरूप है उसका बोध तो स्वतः ही हो जाता है, प्रमाणकी वहाँ आवश्यकता ही नहीं है। तो उत्तरमें कहते हैं कि यह बात तो सब वादियोंके लिए समान है। ज्ञानाद्वैतवादी भी यह कह सकते हैं कि उस ज्ञानाद्वैतका बोध तो स्वतः ही हो जायगा, और अधिक तो क्या कहें, अब तो सबका ही अपना-अपना इष्ट तत्त्व प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणके न होनेपर भी व्यवस्थित बन जायगा। वे भी कहेंगे कि स्वरूपकी तो स्वतः ही गति होती है। हम जो कुछ मानते हैं तत्त्वस्वरूप तो वह है और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वरूपका बोध स्वतः ही होता रहता है। तो यों अतिप्रसंग व्यवस्थित बन जाता है। और स्वरूपकी स्वयमेव गति होती है इस प्रकारका रास्ता निकाल लेनेपर तो जैसे यह ब्रह्मवादी स्वरूपकी स्वतः ही गति होती है ऐसा कहकर एक पुरुषाद्वैतको सिद्ध करने में लग रहा है या सत्ताद्वैतको सिद्ध करनेमें लग रहा है तो इस ही हेतुसे कि स्वरूपकी स्वतः ही गति होती है अनेकान्तवाद भी तो सिद्ध हो जायगा। तथा जैसे स्वरूपका ही बोध होता है यह कहकर ज्ञानाद्वैतवादी ज्ञानाद्वैतको सिद्ध करें तो इसी तरह अनेक सम्वेदन भी तो इस ही उपदेशको देकर सिद्ध किए जा सकते हैं। अनेक सम्वेदन भी हैं क्योंकि उनके स्वरूपका बोध स्वयमेव ही हो जाता है। तो यों अतिप्रसंग होनेसे सत्ताद्वैतको भेदरहित निर्विशेष मान लेना शक्य नहीं है। और इस सत्ताद्वैतके सम्बन्धमें विस्तार पूर्वक आगे विचार करेंगे इतने ही कथनसे यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि वस्तु अनेकात्मक है। उसमें किसी भी भाव एकान्त या अभाव एकान्त आदिककी गम नहीं है।

भावैकान्तमें अस्वरूपताके प्रसंगकी आपत्ति— देखो! मूल प्रकरणमें बात यह चल रही है भावैकान्तमें कि २५ तत्त्व मानने वाले सांख्य सिद्धान्तानुयायी आत्मादिक भावस्वरूप ही है, इस तरहका भावैकान्त मान रहे हैं किन्तु उनके भावैकान्तमें दोष दिखाते दिखाते जब सत्ताद्वैतके प्रसंगकी बात आने लगी तो अब सांख्यसिद्धान्तानुयायियोंने अपने मतमें कहे गए दोषके परिहार करनेकी इच्छासे सत्ताद्वैत भी अङ्गीकार करना प्रारम्भ कर दिया था। सो सत्ताद्वैतकी व्यवस्था असत्य है, यह विवरण सहित बता दिया गया है। तब ये अभी केवल एक अपनी पुरानी ही टेक रखें कि नाना आत्मादिक भाव स्वरूप ही हैं सो इस भावैकान्तमें तो दोष बता ही दिया गया था कि भावैकान्त माननेपर चूँकि अभावका लोप हो जाता है अतः याने अभावका अपन्हव कर दिया जानेसे वस्तु सर्वात्मक, अनादि अनन्त और अस्वरूप हो जायगा। यह महादोष भावैकान्तमें दूर किया जाना अशक्य ही है।

प्रागभाव व प्रध्वंसाभावका अपन्हव करने वालोंके प्रति दूषणप्रदर्शन— साधारणरूपसे भावैकान्तके आग्रहमें दोषापत्ति देकर अब विशेषरूपसे उन अभावोंके अपन्हवोंमें प्रत्येक अभावके निराकरणसे क्या दूषण आता है यह बतानेका उपक्रम किया जाता है। तो ४ अभावोंमेंसे इस समय प्रागभाव और प्रध्वंसाभावको जो नहीं मानते हैं ऐसे वादियोंके प्रति दूषण दिया जा रहा है। प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव न माननेका अर्थ है कि जो दार्शनिक घट आदिकका प्रागभाव नहीं मानते याने घट आदिक कार्य पहिले न थे, अब हो गए हैं, इस प्रकारसे जो प्रागभाव नहीं मानते उनके प्रति अथवा जैसे शब्दादिकका प्रध्वंसाभाव नहीं मानते शब्द भी शाश्वत है, प्रध्वंस होनेपर उसका अभाव नहीं होता, इस तरह प्रध्वंसाभाव न मानने वाले दार्शनिकोंके प्रति अब दूषण दिया जा रहा है। जो प्रागभाव नहीं मानते वे सभी पदार्थका प्राग-

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाव नहीं मानते। लेकिन उदाहरण रूपमें घटपट आदिक पदार्थका प्रागभाव न माननेको बताया है ताकि उस दृष्टान्तके आधारसे स्वमत परमतका स्पष्ट परिचय बने और प्रध्वंसाभावमें शब्दादिकका उदाहरण लिया जाय कि जो समझमें तो आता है कि शब्दादिक भी प्रध्वंस होकर फिर नहीं रहते लेकिन कुछ कारणोंसे लोग शंका कर सकते हैं कि शब्द मिट जानेपर भी रहा करते हैं। सो ऐसे सन्देह वाले उदाहरण से प्रध्वंसाभावके अपन्हवमें लग गए हैं। तो जो दार्शनिक नहीं मानते प्रागभाव प्रध्वंसाभावको उनके लिए दूषण दिखाते हुए आचार्य समन्तभद्रदेव इस कारिकाको कहते हैं।

कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निह्नवे।
प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रच्यवेऽनन्ततां व्रजेत् ॥१०॥

प्रागभावादिके निराकरणमें पदार्थोंके अनादि अनन्त होनेका दूषण— प्रागभावका निराकरण करनेपर तो कार्यद्रव्य अनादि हो जायेंगे और प्रध्वंसाभावका निराकरण करनेपर पदार्थ, कार्यद्रव्य अनन्त हो जायेंगे, यह दूषण आता है प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव न माननेपर। जैसे कि घटका प्रागभाव नहीं माना तो फिर घट अनादि हो जाना चाहिए। अनादिसे ही घटकार्य द्रव्य रहना चाहिए, पर ऐसा कहाँ है? और प्रध्वंसाभाव न माननेपर फिर तो घटादिक, शब्दादिक अनन्त हो जाना चाहिए। कभी भी इनका अभाव न होना चाहिए। लेकिन ये भी फिर कहाँ हैं? तो ये दो दूषण मुख्यतया प्रागभाव और प्रध्वंसाभावके न माननेपर आते हैं।

प्रागभावकी असिद्धि करनेके लिये चार्वाककी शंका— प्रागभावका अर्थ है कि कार्यकी उत्पत्तिसे पहिले, कार्यका आत्मलाभ होनेसे पहिले कार्यका न होना प्रागभाव है और वह माना गया है द्रव्यकार्यके पहिले अनन्तर रहने वाला सद्भावरूप पर्याय। ऐसा लक्षण बनाकर यहां चार्वाक शंका करते हैं कि देखिये! स्याद्वादी जनो जो लोग ऐसा कहते हैं कि कार्यके आत्मलाभसे पहिले कार्यके न होनेका नाम प्रागभाव है और वह उस कार्यसे निकट पहिले ही होने वाली परिणतिरूप है। ऐसा कहने वालेके यहाँ यह दोष आता है कि फिर तो उस पहिले पर्यायके पहिले कार्य अनादिकालसे बना रहना चाहिए। जैसे कि खपरियोंका प्रागभाव घट पर्याय है तो घट पर्याय है तो घट पर्याय होनेसे पहिले अनादिकालसे कितना समय गुजर गया तो इतने सारे समयमें फिर खपरियाँ रूप पर्यायें होते रहना चाहिए। क्योंकि अब प्रागभाव जो घट है वह तो नहीं है इससे पहिले, तो प्रागभाव यदि पहिली पर्यायक सद्भावरूप माना जाता है तो उस कार्यका सद्भाव उससे पहिले सदा ही समस्त पर्याय संततियोंमें पाया जाना चाहिए। यदि यह कहा जाय कि उन अनादि परिणामोंकी परम्परावोंमें इतरेतराभावरूप अभाव माना गया है इस कारणसे उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कपालरूप कार्यद्रव्यका उन सब अनादि पर्यायोंमें प्रसंग नहीं आता सो सुनो ! फिर तो उसके अनन्तरकी पर्यायोंमें भी इतरेतराभावसे ही कार्यका अभाव सिद्ध हो जायगा अर्थात् कपालसे पूर्ववर्ती घटरूप पर्यायमें भी इतरेतराभावसे कपालका अभाव बन जायगा। फिर प्रागभावकी कल्पना क्यों की जा रही है ? यदि कहा जाय कि जो कार्य है उसके प्रागभावके अभावका स्वभाव सिद्ध करनेके लिये प्रागभाव कहा जा रहा है। जैसे घटका प्रागभाव है मृत्पिण्ड, तो घटकार्यका यह स्वभाव बतानेके लिये कि प्रागभावका अभाव होना कार्यका स्वभाव है अर्थात् पूर्वपर्यायका अभाव न रहना यही कार्यका स्वभाव है, यह सिद्ध करनेके लिये प्रागभावकी कल्पना की जाती है। तो सुनो—चार्वाक कह रहे हैं कि कार्यसे पहिले पर्यायसे रहित जितनी पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती सारी पर्यायें हैं फिर तो उन पर्यायोंमें कार्यस्वभावपना क्यों नहीं आता, क्योंकि अविशेषता है याने यदि घटका, मृतपिण्डके अभावका स्वभाव मात्र प्रयोजन है तब तो देखिये कि पूर्ववर्ती जितनी पर्यायें हैं उनका भी तो अभाव है। फिर वे सब कार्य क्यों न कहलाने लगेंगे ? यदि स्याद्वादी यह उत्तर दें कि यद्यपि प्रागभावका अभाव सारी पर्यायोंमें है फिर भी कोई ही पर्याय कार्य मानी गई है, सारी पर्यायें कार्य नहीं मानी गई। जैसे घटकार्य एक घट हुआ। आकारको लिए हुए पदार्थ ही कहलायेगा, सत् न कहलायेगा। तो चार्वाक कहते हैं कि यह तो एक अभिप्राय बना लेना मात्र है। सोचनेसे जो जैसा चाहे सोच सकता है।

कार्यप्रागनन्तर पर्यायको द्रव्यमात्रको, पूर्वसकल पर्याय संततिको प्रागभाव माननेका चार्वाकों द्वारा विरोधन— अब यहाँ चार्वाक स्याद्वादियोंके प्रति कुछ आक्षेपके रूपमें कह रहे हैं कि यदि स्याद्वादी जन यह मानें कि कार्यसे ठीक पहिले अनन्तरकी पर्याय कार्यका प्रागभाव है और प्रागभावका ही प्रध्वंस होना सो घट आदिकरूप कार्य है। पर इतरेतराभाव कार्य नहीं है। और इसी कारण पूर्व और उत्तर समस्त पर्यायोंमें घट पर्याय बननेका प्रसंग नहीं आता, क्योंकि उन पूर्व और उत्तरकी समस्त पर्यायोंमें प्रागभावकी प्रध्वंसरूपता नहीं है, याने प्रागभाव बनकर फिर उनका अभाव बने तब तो कार्य कहलाये। किन्तु उन पूर्व उत्तरवर्ती सारी पर्यायोंके इतरेतराभाव माना है। यदि ऐसा अपना अभिप्राय बनाया तो यह तो क्षणिकवादियोंका मत बन जायगा स्याद्वादियोंके इस प्रसंगमें। याने पूर्व क्षणका विनाश ही उत्तर क्षणकी उत्पत्ति है. ऐसा जो क्षणिकवादियोंका सिद्धान्त है फिर वह आ जायगा। और, यों स्याद्वादमतका विरोध हो जायगा। और देखिये—प्रागभाव तो अनादि है, स्याद्वादियोंने माना है और प्रागभावका अनादिपनका यह स्वीकार करना अब इस सिद्धान्तके मान लेनेपर कि घटका प्रागभाव है पूर्व अनन्तवर्ती पर्याय मात्र ऐसा माननेपर फिर अनादिपनेका स्वीकार करना विरुद्ध हो जाता है। जब घटका प्रागभाव केवल घटसे पहिलेकी अवस्था मृत्पिण्डरूप ही मान ली गई तब प्रागभावकी अनादिता कहाँ ठहरी ? स्याद्वादीजन यदि कहें कि द्रव्यार्थिक दृष्टिसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनादि अनन्त है, प्रागभाव तब फिर बताओ चार्वाक पूछते हैं कि क्या मिट्टी आदिक द्रव्यका नाम प्रागभाव है ? यदि मिट्टी द्रव्यका ही नाम प्रागभाव है क्योंकि अनादि याने पहिले तो मिट्टी ही बनी रही। तो यों मिट्टीका ही नाम प्रागभाव मान लिया जाता है तब फिर प्रागभावका अभाव होना यह घटमें कैसे घटित होगा ? क्योंकि घड़ा भी बन गया तो आखिर मिट्टी तो है ही। मिट्टीको मान लिया अब प्रागभाव द्रव्यार्थिक दृष्टिसे तो मिट्टीका जब विनाश हो, अभाव हो तब ही तो घट बनेगा। लेकिन घटमें मिट्टीका अभाव देखा ही नहीं जाता। मिट्टी ही तो है। द्रव्यका अभाव असम्भव है। किन्तु जो द्रव्यको अनादि अनन्त माना गया है और जब प्रागभाव नित्य सिद्ध हो गया तब फिर घटकी उत्पत्ति कभी भी न हो सकेगी यों विचार करने पर प्रागभावकी सिद्धि नहीं बनती। यहाँ चार्वाक आदिक जैनादिकके प्रति कह रहे हैं कि यदि प्रागभावके सम्बन्धमें ऐसा कहें कि जितनी पूर्व पर्यायें हैं वे सभीकी सभी जो अनादि परम्परासे चली आयी हैं वे सब घटके प्रागभाव हैं। यों घटका प्रागभाव अनादि है अतएव पूर्व समयमें घटकी उत्पत्ति न होगी। तो इसपर चार्वाक कहते हैं कि तो भी पहिले अनन्तर पर्यायकी निवृत्ति होनेपर जैसे घटकी उत्पत्ति हो जाया करती है इस ही तरह उन समस्त पर्यायोंकी निवृत्ति होनेपर भी घटकी उत्पत्तिका प्रसंग आ जायगा। और, ऐसा होनेपर फिर घटमें अपेक्षापना हो जायगा। क्योंकि जितनी पर्यायें हैं जैसी उनकी निवृत्तिकी संतति अनादि है तो पूर्व पर्यायोंकी निवृत्ति का नाम है घट और पूर्व पर्यायें नष्ट हुई, यह संतति है अनादिकालसे तब तो घट भी अनादिकालसे हो जायगा।

द्रव्यपर्यायात्मक प्रागभाव माननेपर चार्वाकों द्वारा विरोध प्रदर्शन— यदि जैनादिक यह कहें कि पहिले अनन्तरकी जो पर्याय है वह घटका प्रागभाव नहीं और न मिट्टी आदिक द्रव्य मात्र घटका प्रागभाव है। और न घटसे पूर्व होने वाली सारी पर्यायोंकी संतति भी प्रागभाव है किन्तु क्या है प्रागभाव, द्रव्य पर्यायात्मक कुछ ही चीज प्रागभाव कहलाती है। और, वह कथंचित् अनादि है, अर्थात् द्रव्य दृष्टिसे अनादि है और पर्याय दृष्टिसे सादि है। इस प्रकार स्याद्वादियोंका सिद्धान्त निरंकुश ही है, उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं है। तो इसपर चार्वाक कहते हैं कि यों तो द्रव्य अपेक्षा अनादि है और पर्याय अपेक्षा सादि है इन दोनों पक्षोंमें जो दोष दिया गया है वह दोष यहाँ लागू होगा। क्या कि देखो ! द्रव्यरूपसे यदि अनादि मान लेते हैं प्रागभावको तब प्रागभाव विनाश रहित हो जायगा, और इस तरह फिर कभी भी कार्यकी उत्पत्ति न हो सकेगी, और पर्यायरूपसे यदि प्रागभावको सादि मानते हो तो प्रागभावसे पहिले भी घटकी उत्पत्ति हो जायगी, जैसे कि प्रागभावके पश्चात् घटकी उत्पत्ति बताते हैं, क्योंकि पर्यायरूपसे प्रागभाव मान लिया गया सादि याने प्रागभाव किसी समयसे हुआ तो जिस समयसे हुआ उससे पहिले तो प्रागभाव न था, तब वहाँ घटका हो जाना कैसे निवारण किया जा सकेगा ? कोई उपाय नहीं है कि प्रागभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की यह व्यवस्था बनायी जाय कि इस प्रागभावकी समाप्ति पर यह घट बनेगा। तब प्रागभावकी कोई व्यवस्था नहीं बनती। ऐसे चार्वाक प्रागभावका खण्डन कर रहे हैं।

चार्वाकोंके आक्षेपके समाधानमें नैयायिकोंका मन्तव्य— चार्वाककी उक्त बात सुनकर अब यहाँ नैयायिक बोलते हैं कि प्रागभाव भाव स्वभाव नहीं है याने किसीकी सत्ताका स्वभाव रखने वाला प्रागभाव नहीं होता क्योंकि प्रागभाव भावसे विलक्षण पदार्थ है, और इसका कारण यह है कि प्रागभाव पदार्थका विशेषण है। जैसे घटका प्रागभाव आदि किसी पदार्थका विशेषणरूपसे प्रागभावका प्रयोग किया जाता है इस कारणसे प्रागभाव भावसे विलक्षण है और जो चीज भावसे विलक्षण है वह भाव स्वभाव हो नहीं सकती, तो प्रागभावको जो भावस्वभाव मानें उनके यहाँ चार्वाक द्वारा कहे गये दूषण लगे, हमने तो प्रागभावको भाव स्वभाव माना ही नहीं तब तो यह दूषण नहीं आ सकता। उक्त नैयायिकको इस आशंकाका समाधान किया जाता है कि प्रागभावको भाव स्वभाव न मानकर एक तुच्छाभावरूप मानने वाला यौग भी समीचीन कहने वाले नहीं हैं, क्योंकि सर्व प्रकारसे भाव विलक्षण अभाव हो अर्थात् तुच्छ अभाव हो ऐसे अभावको ग्रहण करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। अब यहाँ नैयायिक भाव विलक्षण अर्थात् तुच्छ अभावको सिद्ध करने वाले प्रमाणको दिखाते हैं। कह रहे हैं नैयायिक कि देखिये अपनी उत्पत्तिसे पहिले घट न था ऐसा जो यह ज्ञान है वह तो असत्‌को विषय करने वाला है ना, वह ज्ञान असत्‌को विषय करता है इसका हेतु यह है कि घट नहीं है ऐसा जो प्रत्यय है वह सत् प्रत्ययसे भिन्न है। "नहीं है यह" यह ज्ञान "यह है" इस ज्ञानसे तो भिन्न है ना, अस्तित्त्वका ज्ञान और ढंगका है नास्तित्त्वका ज्ञान और ढंगका है। तो अपनी उत्पत्तिसे पहिले घड़ा न था ऐसा ज्ञान सत् प्रत्ययसे विलक्षण है, और जो सत्‌का विषय होता है, अर्थात् जो असत्‌का विषय नहीं है वह सत् प्रत्ययसे विलक्षण नहीं होता। याने जो ज्ञान अस्तित्त्वको विषय करता है वह ज्ञान अस्तित्त्वके ज्ञानसे विलक्षण नहीं होता। जैसे कि द्रव्य सत् है आदिक जो ज्ञान होते हैं वे ज्ञान सत्‌को विषय करने वाले हैं ना, तो वह अस्तित्त्वके ज्ञानसे विपरीत ज्ञान नहीं है किन्तु यह जो ज्ञान हो रहा है कि घट अपनी उत्पत्तिसे पहिले न था ऐसा जो नास्तित्वका ज्ञान हो रहा है वह सत् प्रत्ययसे विलक्षण है। और इस ही कारण यह असत्‌का विषय करने वाली है। यह अनुमान उस प्रागभावको सिद्ध करने वाला है, सो प्रागभाव भावस्वभाव नहीं है तुच्छाभावरूप है।

यौगोक्त आक्षेपसमाधानमें चार्वाकोंका कथन—उक्त यौगमन्तव्यके उत्तरमें चार्वाक यह कह रहे हैं कि भावविलक्षण अभावकी बात यों युक्तिसंगत नहीं है कि सत् प्रत्ययसे विलक्षण है, यह हेतु इस ज्ञानके साथ व्यभिचरित होता है याने जब यह कहा जाय कि प्रागभाव आदिका प्रध्वंसाभाव आदि नहीं है, तो यह भी एक ज्ञान है। तो इस ज्ञानमें सत् प्रत्यय विलक्षणता तो पाई गई याने अस्तित्वका बोध नहीं

Version 1

किया जा रहा है, जाना जा रहा है न की ही बात लेकिन यह असत्का विषय नहीं कर रहा। प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव नहीं है तो एक किसीमें अभाव नहीं है। इस कथन का अर्थ यही तो हुआ कि भाव है। सो देखो ! यह ज्ञान सत्को विषय कर बैठा। तो इस ज्ञानसे आपके हेतुका व्यभिचार होता है, अतएव नैयायिकोंके द्वारा कहा गया अनुमान सही नहीं है अब यहाँ नैयायिक यदि यह कहे कि यह ज्ञान भी असत्को विषय करने वाला है। प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव आदिक नहीं है ऐसा ज्ञान भी नास्तित्वका ही विषय करने वाला है, इस कारण हेतु व्यभिचरित न होगा। तो यह भी बात युक्तिसंगत नहीं बैठती, क्योंकि इसमें फिर अभावकी अनवस्था हो जायगी। याने अब तो यहाँ एक ५ वाँ अभाव बन गया। चार अभाव तो बताये ही थे - प्रागभाव प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव। लेकिन इन प्रागभाव आदिकमें प्रध्वंसाभाव आदिक नहीं है यह एक ५ वाँ अभाव बना दिया तो इस पाँचवें अभावका इन चारों अभावोंमें अभाव है कि नहीं वहाँपर भी एक नया अभाव मानना पड़ेगा। और, जब एक नया अभाव माना तो उस अभावमें भी ये सारे अभाव नहीं हैं इसके लिए फिर अन्य अभाव मानना होगा। तो यों अभावकी अनवस्था हो जायगी।

योगाभिमत मुख्य व उपचरित अभावका निराकरण—अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि देखिये ! जो भूतल है, जमीनका भाग है वह तो सद्भावरूप है ना, अब सद्भावरूप जमीनके भाग आदिकमें कुम्भादिक नहीं हैं, ऐसा जो ज्ञान हो रहा है यह तो है मुख्य अभावका ज्ञान और प्रागभाव आदिकमें प्रध्वंसाभाव आदिक नहीं हैं, इस प्रकारका जो ज्ञान हो रहा है वह है उपचरित अभावका ज्ञान। तो मुख्य अभावका ज्ञान और उपचरित अभावका ज्ञान कोई एक तुलनासे नहीं बन सकता इसलिए अभाव की अनवस्था न होगी। इसपर चार्वाक समाधान करते हैं कि यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि फिर तो परमार्थसे प्रागभाव आदिकमें संकरताका प्रसंग आ जायगा। जब प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव आदिकका अभाव उपचारसे है तो इसके मायने यह हुआ कि परमार्थसे प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव आदिकका अभाव नहीं है. याने प्रध्वंसाभाव प्रागभावमें बसे हुए हैं। तो यों प्रागभाव आदिकमें संकरता हो जायगी। उनका कोई नियत स्वरूप न रह सकेगा। क्योंकि उपचरित अभावमें परस्पर व्यतिरेक सिद्ध नहीं हो सकता। यदि उपचरित अभावसे अभावमें परस्पर व्यतिरेक बन बैठे तब तो घट आदिकमें अथवा अभावमें मुख्य अभावकी कल्पना करना व्यर्थ है। जैसे घट पट आदिक में इतरेतराभावकी कल्पना कर रहे घटमें पट नहीं, यह है इतरेतराभाव। तो पारमार्थिक इतरेतराभाव आदिककी कल्पना क्यों की जा रही है ? अब तो उपचरित अभावसे ही सारे अभावकी व्यवस्था बना ली गई है। तो यों उपचरित अभाव माननेपर परमार्थसे प्रागभाव आदिकमें संकरताका दोष आता है।

यौगप्रस्तुत प्रागभावतुच्छाभावसाधक भावविशेषणत्व हेतुकी असंग-

http://www.jainkosh.org

तताका प्रतिपादन और भी सुनो– नैयायिकोंने जो यह कहा है कि प्रागभाव आदिक भावस्वभाव नहीं है क्योंकि वे सदा भावके विशेषण रहते हैं। भावके विशेषणका अर्थ यह है कि जैसे घट तो है भावरूप और घटका नाम लेकर कहना कि यह घटका प्रागभाव है, यह घटका प्रध्वंसाभाव है, इस प्रकार घटमें अभावका विशेषणरूपसे बताना यह हो रहा है ना, इस ही कारण प्रागभाव आदिक भाव स्वभाव नहीं है ऐसा नैयायिकोंका कथन और अनुमान बनाना यह समीचिन नहीं है। क्योंकि इसमें जो हेतु दिया है भाव विशेषणपना वह पक्षमें अव्यापक है। वह किस तरह ? प्रागभाव प्रध्वंसादिकमें नहीं है आदिक जो अभावका विशेषण है तो अभावका विशेषण होकर भी अभाव प्रसिद्ध है याने यह कहना कि अभाव सदा भावका विशेषण होता है यह बात सही नहीं है। अभाव अभावका भी विशेषण बन जाता है और, फिर इस हेतुका गुण आदिकसे व्यभिचार आता है। यह कहना कि जो सर्वदा भावका विशेषण होता है वह भाव स्वभाव नहीं होता, अभावरूप होता, लेकिन देखो गुण भी पदार्थका विशेषण बनता है। जैसे कि कहा जाता घटका रूप, तो रूप तो गुण है और घट पदार्थ है तो यहाँ गुणको पदार्थका विशेषण बताया गया और नैयायिकोंके अनुमानके हिसाबसे जो भावका विशेषण होता है वह भावरूप नहीं होता, तुच्छाभावरूप होता है। तो यहाँ रूप घटका विशेषण बन गया, सो यहाँ भी अभाव बन जायगा। लेकिन इसे अभावरूप मानते नहीं। तो सर्वदा रूप भावका विशेषण है गुण भावके विशेषण हैं फिर भी गुण आदिक भाव स्वभावरूप है यदि यह कहो कि मैं सबको देखता हूं आदिक व्यवहाररूपसे स्वतंत्र भी तो गुण विदित होते हैं तब गुणोंमें सर्वदा भाव विशेषणताकी बात न रही। गुण कभी भावके विशेषणरूपसे भी प्रयुक्त होते हैं और कभी स्वतंत्र रूपसे भी प्रयुक्त होते हैं कभी कोई यों कह देता है कि मैं घटका रूप देखता हूँ तो इसमें रूप गुण घटका विशेषण बन गया और कभी कोई यों भी कहता है कि मैं रूपको देखता हूं तो यहाँ रूप किसीका विशेषण नहीं हुआ किन्तु एक स्वतंत्र ही रहा। तो मैं रूपको देखता हूँ आदिक व्यवहार होनेके कारण गुण स्वतंत्र भी प्रतीत होते हैं अतः गुणमें सर्वदा भाव विशेषणपना नहीं है। अतएव हेतु व्यभिचरित हुआ। तो नैयायिकके इस कथनपर चार्वाक कहते हैं—तब फिर अभाव तत्त्व है। इस ढंगसे अभावका भी स्वतंत्रपना विदित हो जाता है। कभी अभाव भावके विशेषण रूपसे भी कहा जाता है। जैसे घटका प्रागभाव आदिक। और, कभी अभावको स्वतंत्ररूपसे भी कहा जाता है, जैसे कि एक अभाव भी तत्त्व है। तो इस तरह अभावको स्वतंत्ररूपसे कहा जानेके कारण अभाव भी सदा भावका विशेषण सिद्ध न होगा।

सामर्थ्यसे अभावको भावविशेषणत्व कहकर भी आपत्तिसे छुटकारेका अभाव

—यहां नैयायिक अभावको भावविशेषण बताकर तुच्छाभावरूप अभाव सिद्ध कर रहे हैं। उसके उत्तरमें चार्वाक यह कहते हैं कि भावका विशेषण तो गुण भी है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तब गुण भी तुच्छ असत् हो जायगा। इसपर नैयायिकने कहा कि गुण तो सदा भावविशेषण नहीं बनता। कभी गुणका स्वतंत्र भी प्रयोग होता है। जैसे मैं रूप देखता हूँ, तो इसी प्रकार चार्वाकने कहा कि अभावका भी स्वतंत्र प्रयोग होता है। तो अभाव भी सदा भाव विशेषण न रहेगा। इस पर नैयायिक यह कहते हैं कि अभावत्व तो सामर्थ्यसे भावविशेषण बनेगा ही क्योंकि उस सम्बंधमें जब यह प्रश्न होता है कि किसका अभाव? तो अपने आप उसका उत्तर मिलता है कि द्रव्यका अभाव। तो अभावका स्वतंत्र विधिसे भी कोई प्रयुक्त करे तब भी सामर्थ्यसे वह भावविशेषण बनता है। अत्यन्ताभाव तो सदा ही भाव विशेषण है। इसपर चार्वाक कहते हैं कि इसतरह फिर गुणादिक भी सदा ही भाव विशेषण रहेंगे क्योंकि गुणादिक जो विशेष्य स्वतंत्र रूपसे प्रयुक्त किए गए हैं, जब उनके बारेमें भी प्रश्न होगा कि किसका रूप? तो वहाँ उत्तर आयगा कि द्रव्यका रूप। तो गुण रूपका स्वतंत्ररूपसे भी प्रयोग किया जाय फिर भी सामर्थ्यसे वह भावका विशेषण बनेगा ही। अतः यदि प्रागभावको भावस्वभाव नहीं मानते तो गुण भी भावस्वभाव न रहेगा। अब नैयायिक द्वारा अभिमत प्रागभावके सम्बंधमें मन्तव्यकी सिद्धि नहीं होती।

प्रागभावके कालके सम्बन्धमें चार विकल्प उठाकर चार्वाकों द्वारा प्रागभावकी असिद्धि बतानेका प्रसंग— अब और भी दूषण सुनो—चार्वाक पूछते हैं नैयायिकसे कि इस प्रागभावको सादि सान्त मानते हो या सादि अनन्त मानते हो या अनादि सान्त मानते हो? इन चार विकल्पोंमेंसे यदि प्रथम विकल्प लोगे कि प्रागभाव आदि सहित है और अन्त सहित है तो देखिये अब प्रागभावसे पहिले घट की उपलब्धि हो जानी चाहिए क्योंकि प्रागभावकी आदि मान ली गयी तो उस आदि समयसे पहिले प्रागभाव न था और प्रागभावके अभावको ही कार्य कहा जाता है। तो प्रकृतमें घटका उदाहरण चल रहा है। जब घटका प्रागभाव सादि हुआ तो उससे पहिले घटकी उपलब्धि हो जानी चाहिए। क्योंकि घटका विरोधी है प्रागभाव और प्रागभावको सादि मान लेनेमें उस कालसे पहिले है प्रागभावका अभाव तो घट विरोधी प्रागभावके अभावमें घटकी उपलब्धि हो ही जानी चाहिए, किन्तु ऐसा है कहाँ? यदि द्वितीय विकल्प लेते हो कि प्रागभाव सादि अनन्त है। प्रागभावका आदि तो है पर उसका अन्त नहीं है तो सुनो अब। प्रागभावको सादि अनन्त मानने पर प्रागभावके समयमें याने अनन्तकाल तक घटकी अनुपलब्धि हो जायगी। क्योंकि अब तो प्रागभावको अनन्त मान लिया याने उत्पत्तिके बाद प्रागभाव अब अविनाशी है तो फिर कभी प्रागभावके समयमें घट न उपलब्ध होना चाहिए। जब प्रागभावकी आदि थी प्रागभाव तो बन गया पर प्रागभाव जबसे हो तबसे भविष्यमें सदाकाल रहेगा तो फिर घटको उत्पन्न होनेका अवसर ही कहाँ रहा? यदि तृतीय पक्ष लोगे कि प्रागभाव अनादि अनन्त है तब तो घटकी सदा ही अनुपलब्धि रहेगी। क्योंकि प्रागभाव तो शाश्वत है, उसका कभी अभाव हो ही नहीं सकता। और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रागभावके अभावमें ही घट हो पाता था। तो अब घट कभी भी न बन सकेगा। यदि चतुर्थ विकल्प लेते हो कि प्रागभाव अनादि और सान्त है। प्रागभावकी आदि तो नहीं किन्तु उसका अन्त है तो इस विकल्प को सुनो तो अब प्रागभावका अभाव होनेपर जैसे घटकी उपलब्धि होती है उसी प्रकार समस्त कार्योंकी उपलब्धि हो जानी चाहिए। घट बननेके साथ ही सारे कार्य बन जाने चाहिएँ क्योंकि आगे उत्पन्न होनेवाले समस्त कार्योंका प्रागभाव एक है।

आक्षेपनिवारणार्थ यौगाभिमत अनन्त निरुपाख्य प्रागभावोंका चार्वाकों द्वारा विरोधन – अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि जितने भी कार्य होते हैं उतने ही उनके प्रागभाव हैं। तो उन अनन्त प्रागभावोंमेंसे जैसे एक कार्यके प्रागभावका नाश होगा तो उसके प्रागभावका नाश होनेपर भी शेष जो आगे उत्पन्न होने वाले हैं उन कार्योंके प्रागभावोंका विनाश नहीं होता है, इस कारण घटके उत्पन्न होनेपर समस्त कार्योंकी उत्पत्ति नहीं होती। इस शंकाके उत्तरमें चार्वाक कहते हैं कि तब यह बताओ कि वे समस्त अनन्त प्रागभाव क्या स्वतन्त्र हैं या भावतन्त्र हैं? याने प्रागभाव अनाश्रित है या किसी द्रव्यके विशेषण बन करके उस द्रव्यके आधीन हैं? यदि कहो कि वे अनन्त प्रागभाव स्वतन्त्र हैं तो जब वे प्रागभाव स्वतन्त्र मान लिए गए तो अब वह भाव स्वभाव क्यों न कहलायेगा? वह तो सद्रूप होजायगा। जो पदार्थ स्वतंत्र होते हैं वे तो सत् हुआ करते हैं। अब यहाँ उन अनन्त प्रागभावोंको मान लिया स्वतन्त्र तो वे सब सत् स्वरूप हो गए। जैसे कि काल आदिक पदार्थ स्वतन्त्र हैं तो यों प्रागभाव भावस्वरूप स्वतन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि कहो कि वे अनन्त प्रागभाव भावतन्त्र हैं क्योंकि सदा अभाव भावके ही विशेषण माने गए हैं। इस तरह यदि प्रागभावोंको किसी पदार्थके आधीन मानते हो तो यह बतलावो कि वह प्रागभाव क्या उत्पन्न होने वाले पदार्थोंके आधीन है? यदि कहा जाय कि वे अनन्त प्रागभाव उत्पन्न हो चुके पदार्थोंके आधीन हैं ?तो देखिये—जब पदार्थ उत्पन्न हुआ उस कालमें तो उसके प्रागभावका विनाश हो जायगा फिर आश्रयपनेकी क्या बात रही? उत्पन्न होना और प्रागभाव रहना इन दोनोंमें तो विरोध है। यदि कहो कि आगे उत्पन्न होने वाले पदार्थोंके आधीन हैं ये समस्त प्रागभाव, तो सुनो—यह दूसरा विकल्प भी ठीक नहीं बैठता, क्योंकि प्रागभावोंके सम्बन्धमें जो स्वयं हैं नहीं पदार्थ और आगे उत्पन्न होंगे ऐसे पदार्थोंके आधीन बता रहे हो प्रागभावको तो प्रागभावके समयमें पदार्थ है नहीं, ऐसे पदार्थोंके आधीन प्रागभावोंका होना कैसे कहा जा सकता है जो हैं ही नहीं उनके आश्रय कोई हो कैसे सकता है क्योंकि जो स्वयं अपने स्वरूप लाभको प्राप्त हुआ हो अर्थात् वर्तमान हो ऐसा ही पदार्थ किसीका आश्रयभूत बन सकता है। जैसे भींट हो तो उसपर चित्र बनाया जा सकता है ऐसे ही प्रागभावको अगर पदार्थोंके आधीन कह रहे हो तो पदार्थ हो कभी तो वह प्रागभाव आधीन रहेगा। यहाँ कह रहे हो प्राग-

Version 1

भावको उन पदार्थोंके आधीन जो भविष्यमें उत्पन्न होंगे। तो यों प्रागभाव भावतत्र नहीं रह सकता अन्यथा याने स्वयं असत् होकर भी उसके आश्रयमें कुछ रहा जाय तो प्रध्वंसाभाव भी नष्ट हुए पदार्थके आश्रय रहा करे यह आपत्ति आ जायगी। पर अनुत्पन्न अर्थात् जो उत्पन्न नहीं हुआ भविष्यमें उत्पन्न होगा अथवा प्रध्वस्त, जो नष्ट हो चुका ऐसा पदार्थ किसीका आश्रय नहीं बन सकता क्योंकि असत् किसीका आश्रय नहीं बन सकता, क्योंकि असत् किसीको आश्रय देने लगे तो इसमें बड़ी विडम्बना होगी। खर विषाण आदिक भी किसीके आश्रय बन जायें या प्रागभाव प्रध्वंसाभाव खरविषाणके आश्रयमें आ जाय। अतः उन प्रागभावोंको स्वतंत्र अथवा भावतत्र कह कर भी सिद्ध नहीं कर सकते।

विशेषणभेदसे ही प्रागभावकी विभिन्नताका प्रतिभास माननेपर सामान्य अभाव व सत्तामें भी उपचरितमात्र भेदके सिद्ध होनेकी आपत्ति— अब यहाँ नैयायिक कहते हैं कि देखिये एक ही प्रागभाव विशेषणभेदसे भिन्न भिन्न-रूपके उपचरित होता है। जैसे घटका प्रागभाव, पटका प्रागभाव यों अनन्त पदार्थोंके प्रागभाव कहे जाते हैं वे पदार्थ हैं अनन्त, अतएव उन विशेषणोंके भेदसे प्रागभाव भी भिन्न-भिन्नरूपसे उपचरित होते हैं। और ऐसा होनेपर प्रागभावका उत्पन्न पदार्थोंके विशेषण रूपसे विनाश हो गया। फिर भी जो आगे उत्पन्न होते हैं ऐसे पदार्थोंके विशेषण रूपसे अविनाशी अर्थात् जब प्रागभाव विशेषणके भेदसे भिन्न भिन्न हो जाता है तो उत्पन्न हुए पदार्थोंके प्रागभावका नाश हो गया तो हो जाय लेकिन जो आगे उत्पन्न होंगे—ऐसे पदार्थोंका विशेषणरूप प्रागभाव तो नष्ट नहीं हुआ इसलिए वह प्रागभाव नित्य रहा। इसपर चार्वाक कहते हैं कि फिर तो प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव ऐसे चार प्रकारके अभावोंकी कल्पना भी न रहेगी। यह कहा जा सकेगा सब जगह कि एक ही अभाव है किन्तु विशेषणके भेदसे प्रागभाव आदिकरूपसे उनका भेदव्यवहार बनता है जैसे कि अभी यह कहा गया था कि प्रागभाव एक है, पर उत्पन्न और अनुत्पन्न पदार्थोंके विशेषरूपसे प्रागभाव नष्ट भी हो, न भी हो नष्ट। प्रागभाव एक ही है। तो यों ही अभाव एक ही है। उस अभावमें विशेषणोंके भेद लगते हैं जिससे उसके प्रकार चार हो जाते हैं। वे इस प्रकार हैं कि पूर्वकालसे विशिष्ट पदार्थ ही कार्यका प्रागभाव है। जैसे घटकार्य बनता है तो घटका प्रागभाव क्या है? घट होनेसे पूर्वकालसे विशिष्ट जो अर्थ है वही प्रागभाव है और प्रध्वंसाभाव क्या बनेगा कि कार्यके उत्तरकालसे विशिष्ट जो अर्थ है वह प्रध्वंसाभाव है। और, इतरेतराभाव क्या बनेगा कि नाना पदार्थोंके विशेषणसे युक्त जो अभाव है वही इतरेतराभाव है। और अत्यन्ताभाव क्या बनेगा कि तीनों कालमें अत्यन्त नानास्वभावरूप भावोंका विशेषणरूप अत्यन्त अभाव। याने अभाव रहेगा एक पर उस अभावमें पूर्वकाल, उत्तरकाल नाना अर्थ, नाना स्वभाव ऐसे विशेषणोंमें लगायेंगे, तो अभाव चार प्रकारसे विदित होगा प्रत्यय भेदसे। सो जैसे कहा घट पहिले न था अथवा घट ध्वस्त

http://www.jainkosh.org

हो गया तो यहाँ ये ज्ञान भेद भी तो विशेषणके भेदरूपसे बताये जा रहे हैं। और, जैसे सत्ताको एक माना है और द्रव्यादिक विशेषणोंके भेदसे उसका भेदव्यवहार किया है ऐसे ही अभाव एक ही रह जायगा और काल पदार्थ स्वभाव आदिकके भेदसे अभाव के चार भेद बन जायेंगे। देखो ना, जिस प्रकार सत्ताको माना है एक और उसमें हेतु दिया जाता है कि चूंकि सत् प्रत्ययकी अविशेषता है हर जगह सत्में अस्तित्व ये विदित होते हैं तो विशेष लिग न रहनेसे सत्ताको एक माना है सत्ताद्वैतवादियोंने, उस ही प्रकार अभावके संबंधमें भी कहा जायगा कि समस्त अभावोंमें असत् प्रत्ययकी अविशेषता है। तो सब अभाव ही अभाव कहलावेगा चाहे प्रागभाव हों चाहे प्रध्वंसाभाव हों सभी अभावोंमें अभावोंका बोल तो समान ही हो रहा है। तो असत् प्रत्यय की अविशेषता होनेसे और द्रव्यलिंगका अभाव होनेसे फिर तो असत्ता भी एक ही बन जायगा। अब अभाव चार न ठहर सकेंगे, यह सब एक ही अभाव होगा। यदि यों कहोगे कि पहिले न था, आगे न होगा आदिक प्रत्ययोंकी अविशेषतासे ऐसे कल्पना भावोंके कारण चार प्रकारका माना जायगा अभाव। तो सुनो! भावके सम्बन्धमें भी ऐसा विकल्प होता है कि यह पहिले था, यह पीछे होगा, यह वर्तमानमें है। तो देखो, यहाँ कालभेदसे भावभेद बन गया ना! और यों भी कहते हैं कि यह कलकत्तामें है यह बम्बईमें है, तो यों देशका विशेषण लगाकर भी देशभावसे सत्ताका भेद जाना जा रहा है। घट है, पट है, इस प्रकार द्रव्यके भेदसे भी भावमें भेद समझा जा रहा है। रूप है, रस है, यों गुणके भेदसे भी भावमें भेद हो रहा है। यह गमन है, यह प्रसार है, यों क्रियाके भेदसे भी ज्ञान विशेष हो रहा है। तब प्राकसत्ता आदिक सत्ताभेद क्यों न मान लिए जायेंगे?

प्रागभावकी मान्यता व अमान्यतामें प्रसंगसम्बन्धित यौग व चार्वाकों का विवाद—यहाँ नैयायिक कहते हैं कि सत्ताके सम्बन्धमें जो नाना प्रकारके ज्ञान-विशेष होते हैं, जैसे पहिले था पीछे होगा। अमुक नगरमें है, अमुक पदार्थ है। रूप है, गमन है यों द्रव्य गुण क्रिया, देश कालके भेदसे जो कुछ ज्ञान विशेष हो रहे हैं उन ज्ञान विशेषोंसे सत्ताके विशेषण ही भेदको प्राप्त होते हैं क्योंकि ज्ञान विशेष विशेषणनिमित्तक है। विशेषणोंका निमित्त पाकर ही सत्ताके भिन्न-भिन्न प्रकारसे ज्ञान हुए हैं। तो यों उन भेदोंसे विशेषण ही भेदे जाते हैं किन्तु सत्ताका भेद नहीं होता और इस ही कारण सत्ता तो एक ही मानी गई है। इसपर चार्वाक कहते हैं कि फिर तो अभावमें जो प्रत्यय विशेष हो रहे हैं, घटका घटमें अभाव ये सब प्रत्यय विशेष भी विशेषणभेद हेतुक हो जायेंगे। विशेषणोंके भेदसे अभावोंमें प्रत्ययका भेद बनाते हैं तो यों अभावके विशेषण ही भेदे जायेंगे। तब भावका भी भेद मत रहो, क्योंकि सत्ताका भेद न करनेमें जो युक्तियाँ दोगे वे युक्तियाँ अभावका भेद न हो इस कथनमें भी घटित होती हैं। कोई पृथ्वी आदिककी पर्याय रूप घट शब्दादिकसे अलग कुछ एक अभाव प्रत्यक्षसे प्रतिभासित नहीं होता। अर्थात् वह एक ही अभाव इन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

घट आदिक पर्यायोंके रूपसे प्रतिभासम न होता है। तब अभावोंमें जो भेद कर दिया गया वह भेद एक लोकव्यवहारसे कर दिया गया है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारों भूत पदार्थोंका विषय करता हुआ ही तो यह लोक अभाव आदिक विकल्पोंके वशसे प्रागभ व आदिक व्यवहारोंको यह लोक कर रहा है वस्तुतः अभावमें भेद नहीं। वे सब भेद केवल विकल्पके आधार पर बन रहे हैं। जैसे कि वैशेषिक सिद्धान्तमें द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव ऐसे विकल्प करके उन विकल्प मात्रसे द्रव्यादिक ६–७ पदार्थोंका व्यवहार बनाया जा रहा है। अथवा वैशेषिक सिद्धान्तमें प्रमाण प्रमेय आदिक १६ पदार्थोंका विकल्प करके उन विकल्पमात्रसे प्रमाण प्रमेय तत्त्वादिकका व्यवहार बनाया जा रहा है। अथवा सांख्य सिद्धान्तमें प्रकृति पुरुष महान अहंकार आदिक विकल्पोंको करके पुरुष व्यक्त अव्यक्त आदिकका व्यवहार बनाया जा रहा है। अथवा क्षणिकवाद सिद्धान्तकी अपेक्षा रूप विज्ञान स्कंध आदिक विकल्पोंको करके उन विकल्पोंमात्रसे रूप, स्कंध आदिक व्यवहार बनाया जा रहा है। इस ही प्रकार केवल एक रूढ़िसे लानेके व्यवहारकी परम्परासे पृथ्वी आदिक भूत चतुष्टयक सम्बन्धमें प्रागभाव आदिक अभावोंका व्यवहार बताया जा रहा है। वस्तुतः प्रागभाव कुछ भी चीज प्रतीत नहीं होती, प्रध्वंसाभाव आदिक की तरह। जैसे प्रध्वंसाभाव आदिक अभाव कुछ चीज नहीं उस ही प्रकार प्रागभाव भी कोई पदार्थ नहीं है।

कार्यद्रव्य माननेवाले चार्वाकोंके प्रति प्रागभावके अपन्हवके निराकरणका कथन—चार्वाक सिद्धान्तके अनुयायी उक्त कथनमें प्रागभावका अपन्हव कर रहे हैं। अब इस समस्त उक्त कथनपर स्याद्वादी जन कह रहे हैं कि यहाँ इस कारिकाके द्वारा प्रागभाव आदिकका लोप करके पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्योंको माननेवाले चार्वाकोंको मुख्यतासे दूषित किया जा रहा है। किन्तु अभी सांख्य या सत्ताद्वैतवादियोंका उपालम्भ नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि सांख्य और सत्ताद्वैतवादी दार्शनिक कार्यद्रव्यको नहीं मान रहे और ये चार्वाक पृथ्वी आदिक कार्य द्रव्यको स्पष्ट मान रहे हैं। सो देखो! कार्य द्रव्यको तो यहाँ मान रहे हैं और प्रागभाव आदिकका ये लोप कर रहे हैं तभी तो चार्वाक मंतव्यमें यह प्रश्न आसानीसे उठता है कि यदि प्रागभाव नहीं है तो यह कार्य द्रव्य अनादि बन जायगा। तो कार्यद्रव्यके अनादिपनेकी आपत्ति चार्वाकोंके यहाँ बताई जा रही है। और, चार्वाकोंके द्वारा बताये गये समस्त दूषणोंका परिहार करते हुए यह सिद्ध किया जायगा कि प्रागभावके न माननेपर कार्य द्रव्यका अनादिसे होते रहनेका प्रसंग आयगा। सांख्य अथवा सत्ताद्वैतवादी दार्शनिकोंने तो कार्य द्रव्य माना नहीं, लेकिन तिरोभाव और आविर्भाव वाला परिणाम तो मानते हैं तो वे किसी प्रकारसे भी तिरोभाव आविर्भावके परिणामके रूपसे भी भावस्वभाव प्रागभाव आदिक मानते ही हैं। तब इस समय सांख्य अथवा सत्ताद्वैतवादियोंके प्रति न कहकर चार्वाकोंसे कह रहे हैं कि चार्वाक जन जो प्रागभावका लोप कर रहे हैं, जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

कि प्रसिद्ध है, प्रागभाव प्रमाणसे सिद्ध है उसका भी जब ये लोप कर रहे हैं तो प्रागभावका निन्हव किया जानेपर पृथ्वी आदिक जो कार्यद्रव्य हैं वे अनादि हो जायेंगे और इस ही प्रकार चार्वाकोंके यहां चूंकि प्रध्वंसका अपलाप किया है तो प्रध्वंसाभाव प्रध्वंस होकर चीज नहीं रहती इस स्वभावका अपलाप किया जानेपर पृथ्वी आदिक कार्यद्रव्य अनन्त बन जायेंगे। अब उन कार्यद्रव्योंका गुण भी विनाश न होगा। तो कोई यहां शंका करे कि फिर तो प्रागभाव आदिकका लोप करने वाले चार्वाक ऐसा ही मान लें तब क्या हर्ज है कि पृथ्वी आदिक काय द्रव्य अनादि भी है और अनन्त भी हैं। सो कहते हैं कि प्रागभाव आदिकका अपन्हव करने वाले चार्वाक मान नहीं सकते यह कि कार्य द्रव्य अनादि है और अनन्त है। यह तो उनको आपत्ति बताई गई है। क्यों नहीं मान सकते कार्यद्रव्यको अनादिअनन्त कि यों मान लेनेपर उन चार्वाकोंके मनमें स्वयं विरोध आयगा और फिर वे लौकायतिक न रहेंगे। क्योंकि लौकायतिक कहते हैं लोकव्यवहारको मानने वाले। चार्वाक लौकायतिक भी रहते हैं क्योंकि यहां केवल जो इंद्रियसे जाना जाता है कि उस ही को सत्य मानते हैं अन्य परोक्ष आदिक किसी पदार्थको सत्य नहीं मानते। अब मान बैठें ये पृथ्वी आदिक पदार्थोंको अनादि अनन्त तब परोक्षभूत बात और यों परलोकादिककी सिद्धि हो पड़ेगी, जो कि चार्वाकोंको अनिष्ट और अमान्य है।

स्याद्वादाभिमत प्रागभावमें चार्वाकप्रस्तुत दूषणोंका अभाव— अब यहाँ चार्वाक शंका करते हैं कि यह जो कहा गया कि प्रागभाव प्रमाणसे सिद्ध है सो कैसे प्रागभाव प्रमाणसे प्रसिद्ध है? प्रागभावके सम्बन्धमें तो कितने ही अभी दूषण हमने दिए हैं। उन दूषणोंसे दूषित होनेके कारण प्रागभावकी व्यवस्था नहीं बनती। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह शका करना युक्तिपूर्ण नहीं है स्याद्वादीजन जो प्रागभाव मानते है। प्रागभावका जो यथार्थ स्वरूप है उस स्वरूपमें चार्वाकके द्वारा कहे गये उन दूषणोंका अवकाश नहीं है और नैयायिक आदिकके द्वारा माने गए अभावमें तो जो दूषण दिया है उन दूषणोंके सम्बन्धमें तो हम कुछ कहना यों नहीं चाहते कि नैयायिक आदिकके द्वारा माना जो प्रागभाव है उसका तो स्याद्वादीजन भी निराकरण करते हैं। उन्होंने माना है यह कि अभाव भावरूप नहीं है क्योंकि अभाव भावका विशेषण है। यों भाव अर्थात् पदार्थके विशेषणरूपसे स्वीकार किया गया प्रागभाव स्याद्वादियोंने नहीं माना। सो यह दूषण उनमें लगो तो लगे, पर स्याद्वादियों द्वारा माने गए प्रागभावमें उन दूषणोंका अवकाश नहीं है।

प्रागभावमें चार्वाकोक्त दूषण न आनेका विवरण—देखो—चार्वाकोंने जो दूषण दिया है कि प्राग अनन्तर परिणामका नाम प्रागभाव है। अथवा वह अनन्तर परिणामका नाम प्रागभाव है। अथवा वह अनन्त है आदिकरूपसे जो चार तरहके विकल्प उठाकर दूषण दिया है उन सब विकल्पोंसे यहां दूषण नहीं आता, क्योंकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखिये ऋजुसूत्रनयकी विवक्षासे प्रागभाव कार्यके उपादान परिणाम रूप ही पहिले अनन्तरका रहने वाला स्वरूप है। जैसे कि घटका प्रागभाव घटके ही एकदम निकट पहिले होने वाला मृत्पिण्डरूप कार्यक्षण है। उस मृत्पिण्डरूप पूर्व भावक्षणको प्रागभाव रूप माननेपर यह दोष नहीं आ सकता कि फिर तो पूर्व अनादि पर्यायकी संततियोंमें कार्यका सद्भाव हो जाना चाहिए। जब कि प्रागभाव केवल कार्यके पहिले समयका परिणाम ही है। घटका मृत्पिण्ड ही प्रागभाव है। तो मृत्पिण्डसे पहिले अनादिकालसे चूँकि मृत्पिण्ड न था तो घटका प्रागभाव न रहने से घट उत्पन्न हो जाय और घट अनादि बन जाय यह दोष नहीं आता। इसका कारण यह है कि प्रागभाव के विनाशको कार्यरूपसे माना है। प्रागभावके अभावमात्रको कार्य नहीं माना, किन्तु प्रागभावका विनाश हो तो घटमें पहिले रहने वाला मृत्पिण्ड घटका प्रागभाव है तो प्रागभाव हो उसका फिर विनाश हो तब घटकी उत्पत्ति होगी। मृत्पिण्डसे पहिले प्रागभाव नहीं है यह बात तो कुछ मानी जा सकती है, लेकिन प्रागभावका विनाश नहीं है। अतएव मृत्पिण्डसे पहिले घटकी उत्पत्ति नहीं बन सकती। सो आगे की कारिकामें कहेंगे यह बात कि हेतुके क्षयका नाम कार्यका उत्पाद है, अर्थात् किसी भी कार्यके समुचित उपादानरूप परिणामका विनाश होना ही कार्यके होनेका कारण है। ओघ उपादान और समुचित उपादानमें ओघ उपादान तो शाश्वत है जो पर्याय जिस द्रव्यमें सम्भव हो सकती है उस पर्यायको उस द्रव्यमें बताना यह कहलाता है ओघ उपादान और जो पर्याय जिस पर्यायके प्रध्वंसमें बनती है वह समुचित उपादान कहलाता है। जो समुचित उपादान रूप प्रागभाव होता है और उस परिणामका हेतुका क्षय होनेका नाम है कार्यका उत्पाद। प्रागभाव और उसके प्रागभाव आदि जो पूर्व पूर्व परिणाम हैं, उनकी संततिसे जो कि अनादि हैं उनको विवक्षित कार्य पता नहीं बतायी गई है। इस कारण प्रागभाव जैसा कि स्याद्वादियोंने माना है उस सिद्धान्तमें कार्य अनादिसे हो जाय, प्रागभावके अभावमें यह दोष नहीं आता। क्योंकि प्रागभावके विनाशको ही कार्य माना गया है।

प्रागभावोंमें इतरेतराभावके आधारपर चार्वाकों द्वारा कहे गये दूषणों का अप्रवेश—चार्वाकोंने एक इस दूषणकी भी कल्पनाकी थी कि प्रागभाव और उसका भी प्रागभाव यों अनन्त प्रागभावोंमें विवक्षित कार्यका इतरेतराभाव होना चाहिए और यों इतरेतराभावके होनेकी बात कहकर उस पक्षमें दूषण दिया था सो स्याद्वादीजन प्रागभाव और उसके भी प्रागभावमें इतरेतराभावकी कल्पना नहीं करते हैं। इतरेतराभावके द्वारा विवक्षित कार्यका अभाव नहीं ढूँढते जिस कारणसे कि इस पक्षमें दिए गए दूषणका अवगाह हो सके क्योंकि प्रागभावकी विनाशरूपता ही समस्त प्रागभावों और घटोंसे व्यावृत्ति करता है याने प्रागभावकी विनाशरूपता ही इतरेतरा-भावको हटा देती है, और इस तरह कार्यके पूर्व अनन्तर ही जो परिणमन है उसे प्रागभाव माना गया है और उसका प्रागभाव माननेपर प्रागभावके अनादिपनेका विरोध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी नहीं आता याने एक कार्यका उससे अनन्तर पूर्व समयमें रहने वाला जो पर्याय है उसको प्रागभाव माना है सो उस अनन्तर परिणामको प्रागभाव माननेपर भी पूर्ववर्ती अनन्त जो समय आ गए हैं उनमें भी वह प्रागभाव अनादि है अर्थात् कार्य इस विवक्षित समयमें ही हुआ है इससे पहिले अनादिकालमें कभी नहीं हुआ। इस तरहके अनादिपनेका विरोध नहीं आता, क्योंकि प्रागभाव और उसका भी प्रागभाव यों प्रागभावकी संतान तो अनादिरूपसे मानी ही गई है, क्योंकि द्रव्य तो अनादिसे है और विवक्षित कार्यका प्रागभाव और उसका भी प्रागभाव ये सब अनादि संतति से चली आ रहे हैं ऐसा होनेपर यह भी दूषण देना योग्य नहीं है कि फिर पर्यायोंसे तत्त्व, कार्य अभेदरूपसे है अथवा भेदरूपसे है याने पर्यायोंसे द्रव्य भिन्न है अथवा अभिन्न है ऐसा पक्ष उठाकर जो एक द्रव्यमें दूषण दिया गया था वह दूषण नहीं बन सकता, क्योंकि पर्यायोंका द्रव्यसे कथंचित् अभेद है और कथंचित् भेद है। पूर्व–पूर्व प्रागभाव स्वरूप अभाव क्षणोंसे ही जिसका कि भेद विवक्षित वही है, एक मात्र प्रागभाव है, विवक्षित कार्यसे पहिले विवक्षित कार्यका अभाव है ऐसी विवक्षामें पूर्वकी पर्यायमें कोई भेद नही डाला, ऐसे उन पूर्व–पूर्व प्रागभाव स्वरूप अभाव क्षणोंको ही संतानपना माना है, किन्तु संतानीके क्षणकी अपेक्षासे याने पर्यायोंकी अपेक्षासे तो आदिपना ही है, उसमें अनादित्वका अभाव ही माना गया है। सो पर्याय अपेक्षासे प्रागभावमें अनादिपना नहीं है इतनेपर भी उसमें दोष नहीं आता। उस प्रकार ऋजुसूत्रनयके अभिप्रायमें मंतव्य बनता ही है क्योंकि ऋजुसूत्रनय क्षण विध्वंसी पर्यायरूप अर्थका ही ग्रहण करने वाला है, सो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमें प्रागभाव अनादि न हो तब भी कोई दोष नहीं है क्योंकि वस्तु केवल पर्यायमात्र नहीं है, वह द्रव्य पर्यायात्मक है।

प्रागभावका अपन्हव करनेके लिये उठाये गये द्वितीय विकल्पमें भी चार्वाकके मन्तव्यकी सिद्धिकी असंभवता––यहाँ चार्वाकोंने प्रागभावका खण्डन करनेके लिए चार विकल्प उठाये थे क्या घटका प्रागभाव पूर्व अनन्तर पर्यायरूप है ? क्या घटका प्रागभाव मिट्टी आदिक द्रव्य मात्र है ? क्या घटका प्रागभाव घटसे पूर्व रहने वाली समस्त पर्यायोंकी संतति ही है ? अथवा क्या प्रागभाव द्रव्यपर्यायात्मक है ? इन चार विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पका तो निराकरण किया अर्थात् घटका प्रागभावसे पहिले अनन्तर पर्यायरूप है तिसपर भी प्रागभावको असिद्ध करनेके लिए जो दूषण दिये गये थे वे दूषण कोई भी घटित नहीं होते। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो चार्वाकका प्रश्न था, कि घटका प्रागभाव क्या मिट्टी द्रव्यमात्र है ? तो देखिये ! व्यवहारनय नामक द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे मिट्टी आदिक द्रव्य घटादिकका प्रागभाव है ऐसा कहनेपर भी घटमें प्रागभावकी अभाव स्वभावता नष्ट नहीं होती। अर्थात् कार्य प्रागभावके अभावरूप ही होता है इसमें कोई बाधा नहीं आती। और, इसी कारण जो यह शंकाकारने कहा था कि फिर तो द्रव्यके अभावकी ही असंभवता है, जब द्रव्य मात्र प्रागभाव है तो उसका तो कभी अभाव होता ही नहीं। तो प्रागभावका जब

Version 1

कभी अभाव नहीं होता तो घट आदिक कार्यकी उत्पत्ति कभी भी न होगी। ऐसा दूषण भी घटित नहीं होता क्योंकि कार्य रहित पूर्वकालके विशिष्ट मिट्टी आदिक द्रव्य ही घट आदिकका प्रागभाव है इस तरह माना गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे घटका प्रागभाव समझना है तो घटसे पूर्वकालमें जिस प्रकारका भी मिट्टी द्रव्य है। जो कि कार्यरहित है। घट पर्यायसे शून्य है। ऐसा मिट्टी द्रव्य घटका प्रागभाव है और पूर्वकाल विशिष्ट कार्यरहित मिट्टी द्रव्यका विनाश सिद्ध है। सो जब कार्यकी उत्पत्ति हुई है, जब घड़ा बन गया जब घड़ेसे पूर्व समयमें जो कुछ भी विशिष्ट पर्याय थी, घट कार्यसे रहित थी उसका विनाश हो गया, तब हुआ क्या कि कार्य रहितपनेके विनाशके कारण कार्य सहितपनेरूपसे द्रव्यका उत्पाद हो गया। अवस्थाका विनाश हुए बिना कार्यसहितरूपसे उत्पत्ति बन नहीं सकती याने मिट्टी तो वही है। अब जिस समय घट पर्याय रहित मिट्टी है जिसके बाद ही घट पर्याय होती है तो घट पर्याय जब होती है तब हुआ क्या ? घटकार्य सहितरूपसे मिट्टी हुई और पहिली पर्यायका हुआ क्या ? कार्यरहित जो दशा थी उस कार्यरहित जो दशा थी उस कार्यरहित दशाका विनाश हो गया तो यों कार्यरहितपनेका विनाश ही कार्य सहित रूपसे उत्पत्ति बनती है। याने उपादान स्वरूप प्रागभावका क्षय हो तो उससे कार्यकी उत्पत्ति होती है। घटके बाद खपरियाँ बनेंगी। तो जब तक घट है तब तक खपरियाँ रहित ही तो स्थिति है और जब खपरियाँ बनती हैं घटमें ठोकर देनेसे जो घटका प्रध्वंस होता है और खपरियोंका उत्पाद होता है तो ऐसी खपरियोंका उत्पन्न होना कैसे हुआ कि उपादानात्मक प्रागभाव है, घट पर्याय है उसका क्षय हुआ, वही हुआ खपरियोंका उत्पाद। तो जो दूसरा विकल्प किया गया था कि मिट्टी आदिक द्रव्यमात्र क्या घट आदिकका प्रागभाव है तो विवक्षावृत्ति यह भी सिद्ध होता है।

प्रागभावस्वरूपमें उठाये गये तीसरे विकल्पमें भी चार्वाकोंके स्वार्थ सिद्धिकी असम्भवता— अब शंकाकारने जो तीसरा विकल्प उठाकर प्रागभावका निराकरण करना चाहा था वह विकल्प क्या था कि क्या घटका प्रागभाव घटसे पहिले होने वाली सारी पर्यायोंकी संतति है ? तो यह विकल्प भी प्रागभावका निराकरण करनेमें समर्थ नहीं है। इस पक्षसे पूर्वपर्यायें सारी हैं जो अनादि संततिसे चली आयी हैं वे पक्षके प्रागभाव हैं। ऐसा कहनेपर भी चार्वाक द्वारा बताये गये दूषणका प्रसंग नहीं आता. जैसे कि चार्वाकने कहा था कि घटका प्रागभाव यदि पहिली सब पर्यायें हैं तो जैसे घटसे पहिले होने वाली पर्यायकी निवृत्ति होनेपर घटका उत्पाद माना गया है उसी प्रकार उससे पहिले भी अनेक पर्यायें निवृत्त होती रहती हैं। तब उन समयोंमें भी उन पूर्वपर्यायोंकी निवृत्ति होनेपर घट उत्पन्न हो जाय यह दूषण नहीं आता कि पूर्वपर्यायोंकी निवृत्तिकी तरह उससे पूर्व पर्यायकी निवृत्ति होनेपर घटकी उत्पत्ति हो जाय सो नहीं, और इस दूषणके साथ जो यह भी दूषण लगाया था कि फिर तो पूर्वपर्यायकी निवृत्ति होते रहना जैसे अनादि है उस ही तरह घट भी अनादि बन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बैठेगा। ये सब दोष नहीं लगते क्योंकि स्थूल रूपसे यहाँ यह समझ लीजिए कि घट से पूर्व जितने भी क्षण हैं जितनी भी परिणतियाँ हैं उन समस्त प्रागभावों रूपका अभाव होनेपर ही घटकी उत्पत्ति मानी है। सो जैसे पूर्व अनन्तर क्षणकी निवृत्ति न होनेकी तरह समस्त प्रागभावोंकी निवृत्ति असिद्ध है और फिर घटकार्यसे पहिले अनादिमें किसी भी समय घटकी उत्पत्तिका दूषण नहीं दिया जा सकता। तब चार्वाक ने यह तीसरा विकल्प उठा कर कि क्या घटका प्रागभाव घटसे पहिले होने वाली समस्त पर्यायोंकी संतति है, दूषण देना चाहा था वह दूषण नहीं दिया जा सकता।

प्रागभावस्वरूपमें चार्वाकोक्त चतुर्थ विकल्प से भी चार्वाक मतव्यकी सिद्धिकी असंभवता—अब चतुर्थ विकल्पके सम्बन्धमें सुनो चतुर्थ विकल्प चार्वाकने यह उठाया था कि क्या घटका प्रागभाव द्रव्यपर्यायात्मक है और इस विकल्पको उठा कर फिर क्या वह अनादि है, सादि है। दोनों पक्षोंमें दोष बताया था किन्तु यह दोष कथन घटित नहीं होता। प्रमाणकी विवक्षासे द्रव्य पर्यायात्मक प्रागभाव है ऐसा कहनेपर भी दोनों पक्षोंमें दिया गया दोष नहीं आता क्योंकि प्रागभाव द्रव्यरूपतासे जैसे अनादि बताया है इसी प्रकार पर्यायदृष्टिसे भी पर्यायोंकी संततिकी अपेक्षासे प्रागभावको अनादि कहा गया है। यहाँ चार्वाक यदि यह दूषण देना चाहते कि प्रागभाव को अनादि मान लेनेपर फिर तो प्रागभाव अनन्त हो जायगा आकाशकी तरह। जैसे आकाश अनादि है तो वह अनन्त है। और जब प्रागभाव अनादि अनन्त हो गया तो कभी कार्यकी उत्पत्ति हो ही न सकेगी। यह दूषण एक द्वेषभावसे देना मात्र है। क्योंकि जो वस्तु अनादि हो वह अनन्त ही हो ऐसा एकान्त नहीं है। वस्तु अनादि हो और अनन्त न हो, जैसे भव्य जीवका संसार अनादि है, कबसे ये भव्य जीव जन्म मरण करते आ रहे हैं ऐसा कोई सम्बन्ध बुद्धिमें आ ही नहीं सकता, क्योंकि बुद्धिमें यदि यह कल्पना लगायें कि भव्य जीवका संसार इस समयसे है तो उससे पहिले निःसंसार था वह और निःसंसार शुद्ध निरुपाधि जीवका कारण न होने से फिर जन्म मरण हो नहीं सकता। तो भव्य जीवके संसारका अनादि तो कहना होगा पर वह अनन्त नहीं है। सान्त है। संसार उसका दूर होता है, मुक्ति प्राप्त होती है। यदि भव्य जीवके संसारको अनादि होनेके कारण सान्त न माना जाय, अनन्त कह दिया जाय तब तो किसी भी पुरुषको मुक्ति नहीं हो सकती। तो यह कहना युक्त नहीं है कि प्रागभाव अनादि है तो उसे अनन्त होना पड़ेगा। और साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि जो बात सान्त हो उसे सादि होना ही पड़ेगा। देखो — किसी जीवका संसार सान्त है। जैसे निकट भव्य जीवका संसार अन्तसहित है तो भी अनादिसे प्रसिद्ध है। तो जिस कारणसे प्रागभावमें अनादिपना भी है और अन्तसहितपना भी है इससे सदा ही कार्यकी अनुत्पत्ति हो अथवा पहिले उत्पत्ति हो जाय यह बात दूषणमें नहीं आ सकती। इससे मानना चाहिए कि प्रागभाव भावस्वभाव ही है। नय और प्रमाणकी विवक्षासे उपादानका निर्णय करके यह बात समझ लेनी

होगी कि प्रागभाव भावस्वभाव ही है और वह है एकानेकस्वभाव भाववान, इस कारण वह एक है अथवा अनेक है। ऐसा एकान्त पक्षमें दिया गया दोष यहाँ नहीं लगता। स्यात् प्रागभाव एक है, स्यात् प्रागभाव अनेकस्वभाव है।

प्रागभावको भावस्वरूप माननेमें चार्वाकोंकी शल्यका निराकरण— यहाँ चार्वाक कहते हैं कि प्रागभावको यदि भावस्वभाव मान लिया जाता है तब यह कार्य पहिले न था इस प्रकारके नास्तित्व ज्ञानका विरोध होता है अर्थात् जब प्रागभाव सद्भावरूप हो गया तब वहाँ किसी सम्बन्धमें नास्तित्वका ज्ञान कैसे बन सकता है? वह तो है भावस्वभाव, तब मृत्पिण्डरूप प्रागभावमें यह घट घटसे पहिले न था इस प्रकारका नास्तित्व प्रत्यय न बनेगा। समाधानमें कहते हैं कि प्रागभावसे भावस्वभाव माननेपर भी कार्य पहिले न था यह नास्तित्वका ज्ञान बन जाता है। क्योंकि कार्यका अभावाभावान्तररूप होता है और कार्यका भावान्तररूप जो कार्यसे अनन्तर पूर्व रहने वाली पर्याय है उसके नास्तित्व वह ज्ञानका कोई विरोध नहीं है। जैसे कि घटरहित पृथ्वीके आधार घट नहीं है इस प्रकारका ज्ञान होता है तो घटका नास्तित्व यहाँ घटरहित भूतल है। तो जैसे घटरहित भूतलमें घटके नास्तित्वका प्रत्यय बन जाता है, इसी प्रकार भावस्वभाव प्रागभावमें कार्य पहिले न था इस प्रकारका नास्तित्वका प्रत्यय बन जाता है। यों नय और प्रमाणकी विवक्षासे द्रव्यरूप, पर्यायरूप द्रव्यात्मक प्रागभाव सिद्ध होता है और यों प्रमाण प्रसिद्ध प्रागभावका चार्वाक सिद्धान्तमें लोप किया है। तो प्रागभावका निन्हव करने पर कार्य अनादि बन बैठेगा, इस प्रकारका दूषण आता है। अतः प्रागभावका लोप न करना चाहिए याने भावैकान्तका मतव्य न बनाना चाहिए।

प्रध्वंसाभावकी प्रमाणप्रसिद्धिके वर्णनमें ऋजुसूत्रनयकी विवक्षासे उपादेयक्षणकी उपादानप्रध्वंसरूपता— अब यहाँ चार्वाक पूछता है कि हम चार्वाकोंके यहाँ प्रध्वंसाभाव कैसे प्रसिद्ध होगा? प्रध्वंसाभाव प्रमाणसे सिद्ध नहीं है तो इसके समाधानमें कहते हैं कि नय और प्रमाणकी विवक्षासे प्रध्वंसाभाव भी सिद्ध होता है। कैसे सिद्ध होता है सो सुनो! ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे तो उपादेय क्षण ही उपादानका प्रध्वंस कहलाता है। उपादेयका अर्थ है कार्य, जो उपादानसे प्रकट हुआ है उसे उपादेय कहते हैं। और उपादानका अर्थ है कारण। तो प्रागभावका प्रध्वंस होना सो ही कार्यकी उत्पत्ति है। तो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे कार्यरूप जैसे कपाल माला है, खपरियोंका पुञ्ज है वह ही घटका प्रध्वंस कहलाया। कपालोंका प्रागभाव घट है सो ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे तो वह उपादेय ही उपादानका प्रध्वंस है। यों उपादेय क्षणका ही उपादेयका प्रध्वंस रूपपना बन जानेपर यह शंका नहीं कर सकते कि फिर तो उस उपादेय क्षणके बादमें अर्थात् घट फूटकर खपरियाँ बन गई। अब खपरियाँ बननेके बादके समयमें चूंकि अब प्रध्वंसका अभाव है। प्रध्वंस तो उस एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समयमें हुआ था जब कि घड़ा फोड़ा गया था। अब खपरियाँ बननेके बाद घड़ा तो नहीं फूट रहा, तो प्रध्वंसका अभाव होनेसे फिर घड़ेका पुनर्जीवन हो जाय अर्थात् घड़ा फिर बन जाय यह दोष न आयगा। क्योंकि कारण कार्यका उपमर्दनात्मक नहीं होता। याने कार्यका उपमर्दन करके, बिगाड़ करके, प्रध्वंस करके कारण नहीं बनता किन्तु उपादानका उपमर्दन ही कार्यकी उत्पत्तिस्वरूप है याने समुचित उपादान कारण का प्रध्वंस होना, उपमर्दन होना ही कार्यकी उत्पत्तिरूप है। प्रागभाव और प्रध्वंस, ये उपादान उपादेयरूप माने गए हैं। प्रागभाव तो है उपादान कारण और प्रध्वंस है उपादेयरूप, कार्यरूप। तो यों प्रागभावके उपमर्दनसे ही प्रध्वंसका आत्मलाभ होता है अर्थात् प्रागभावके क्षयसे ही प्रध्वंसाभाव बनता है। अब यहाँ चार्वाक शंका करते हैं कि इन दोनों अभावोंमें उपादान उपादेय भाव कह सकते हैं क्योंकि यह तो अभाव-रूप है, असत् है। जो असत् है उसमें कोई उपादान कहलाये और कुछ उपादेय कहलाये यह बात कैसे सम्भव है? तो समाधानमें पूछते हैं कि भावोंमें उपादान कैसे सम्भव है? उत्तर दिया जाता है याने चार्वाक यहां कहते हैं कि भावोंमें, सद्भावरूप पदार्थों में तो उपादान उपादेय यों बन जाता है कि जिसके होनेपर जिसका आत्मस्वरूप बने वह तो है उपादान और जो कार्य बना वह है उपादेय। तो उत्तरमें कहते हैं कि यही बात अभावमें लगा लीजिये—कारणात्मक पूर्वक्षणवर्ती प्रागभावके होनेपर प्रध्वंसका स्वरूपलाभ होता है अर्थात् कार्यस्वरूप जो उत्तरपर्याय है उसका स्वरूपलाभ होता है, तो यों प्रागभाव उपादान बन गया और प्रध्वंस उपादेय बन गया क्योंकि जिसके होने पर जिसका आत्मलाभ हो वहां उपादान उपादेय व्यवस्था है ऐसा माना गया है। तो प्रागभावके होनेपर प्रध्वंसका आत्मलाभ होता है अतएव प्रागभाव उपादान है और प्रध्वंस उपादेय है हाँ, यदि तुच्छ अभाव हो, जो लोग स्वभावरहित अभाव मानते हैं जैसे नैयायिकोंने माना है कि अभाव भावस्वभावी नहीं है किन्तु तुच्छ अभाव रूप है तो ऐसे तुच्छ अभावमें तो उपादान उपादेयका विरोध आयगा और भावस्वरूप अभावके माननेमें उपादान उपादेय अभावका विरोध नहीं होता। यह तो हुआ एक ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिसे अनन्तर पर्यायरूप प्रध्वंसकी सिद्धि।

व्यवहारनय नामक द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें मृदादिद्रव्यमात्रकी प्रध्वंसाभावस्वरूपता—अब मृतकादि द्रव्यमात्र प्रध्वंस होता है इसके सम्बन्धमें सुनो कि व्यवहारनय नामक द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे घटके उत्तरकालमें रहने वाले घटके आकारसे रहित मिट्टी आदिक द्रव्य ही घटका प्रध्वंस है और वह प्रध्वंस अनन्त बनता है। उस प्रध्वंसकी आदि तो हुई पर अन्त न रहेगा। प्रध्वंस हुआ है तो प्रध्वंस ही रहेगा। तो यों घटाकार रहित घटके उत्तरकालमें अनन्त घट प्रध्वंस होता है अर्थात् अविनाशी प्रध्वंस होता है, ऐसा माननेपर यह सिद्ध हुआ कि घटमें पूर्वकाल-वर्ती जो मिट्टी द्रव्य है वह घटका प्रागभाव ही है, वह प्रध्वंस नहीं है। घटके अभाव का नाम प्रध्वंस नहीं, किन्तु घटाकार होकर फिर घटाकारसे रहित होनेका नाम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रध्वंस है और घट होनेसे पहिले सभी पर्यायोंमें घटका अभाव है, वह प्रागभाव कहलाता है। तथा घटाकार भी घटका प्रध्वंस नहीं कहलाता। जैसे घड़ा उत्पन्न होनेसे पहिले कि घड़ेमें घड़ेका प्रध्वंस नहीं है इसी प्रकार घटाकारकी वर्तमान पर्याय मे भी घटका प्रध्वंस नहीं रहता क्योंकि यह कहा गया कि घटाकारसे रहित मिट्टी द्रव्य प्रध्वंस है। इसमें घटाकार विकल इस प्रकारका विशेषण दिया है। अब यहाँ चार्वाक शंका करते हैं कि यदि घटाकार विकल मिट्टीका नाम घटका प्रध्वंस है तो घटके उत्तरकालमें जो घटाकार विकल अन्य संतान है, अन्य मिट्टी है वह भी घटका प्रध्वंस बन जाय। याने जो घट फूटा है उस घटाकार विकलको घटका प्रध्वंस माना सो तो ठीक, लेकिन घटाकार विकल मिट्टी द्रव्यको प्रध्वंस माननेपर जो दुनियाभरमें अन्य घटाकार विकल मिट्टी पड़ी है अन्य जगहकी जो खपरियाँ आदिक हैं वे भी इस घटकी प्रध्वंस बन जाये। उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ द्रव्यका ग्रहण किया। जिस मिट्टीमें घटाकार हुआ था उस हीमें जब घटाकार का विनाश हो जाय तो वह घटका प्रध्वंस है। वर्तमान पर्यायके आश्रय एकरूप ही मिट्टी आदिक इसके द्रव्य कहे जाते हैं। याने जो पर्याय जिसमें बर्त रही है वही द्रव्य कहा जायगा अन्य सन्तान नहीं, अन्य पदार्थ नहीं। भले ही उस जातिके अन्य पदार्थ नहीं। भले ही उस जातिके अन्य पदार्थ हैं, पर जिसमें जो पर्याय बर्त रही है वह ही उसका द्रव्य कहला सकेगा, क्योंकि अन्य जो पर्यायें हैं, संतानान्तर जो हैं व अपनी इस प्रकार अतीत अथवा अनागत पर्यायके प्रति अन्वयी नहीं हैं वे तो स्वयंके हो अतीत अनागत पर्यायोंमें रहने वाले हैं। जैसे एक ग्राममें घड़ा फूटा तो उस ही ग्रामके उस ही घट पर्यायमें अन्वयी रूपसे रहने वाली मिट्टी उसका द्रव्य है। यों दूसरे गांवमें भी फूटा रहता है। दूसरे गांवकी जो घटादिक पर्यायें हैं उनका अन्वय उन ही गाओंकी उन मृतादिकोंमें है। किसी विवक्षित कार्यका द्रव्य अन्य न कहलायेगा। और, यों प्रमाणसे प्रसिद्ध होता है कि प्रध्वंस भी वस्तुका धर्म है और वह प्रध्वंस भावस्वरूप है। उस प्रध्वंसका जो अपन्हव करना है सो उस अपन्हवके करने पर अर्थात् प्रध्वंस भावके न माननेपर जितने भी कार्य द्रव्य हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये समस्त कार्य द्रव्य अनन्त बन जायेंगे। जब प्रध्वंस नहीं मानते तो कार्यका फिर कभी विनाश ही न होगा। यों प्रागभाव और प्रध्वंसाभावका लोप करने वाले चार्वाकोंके यहाँ कार्यद्रव्य अनादि और अनन्त हो जानेका प्रसंग आता है। सांख्य सिद्धान्तमें भी प्रागभाव न माननेपर घट आदिक पदार्थोंकी अनादि होनेका प्रसंग आता है। और जब घटपट आदिक पदार्थ, अनादि बन बैठते हैं तब पुरुषका व्यापार करना अनर्थक हो जाता है। कुम्हार क्यों घड़ा बनानेका प्रयत्न करता है? घड़ा तो अनादि है। सांख्य सिद्धान्तको सत्कार्यवाद भी कहते हैं। सत्कार्यवादका अर्थ है कि प्रत्येक कार्यकारणमें पहिलेसे ही मौजूद है। केवल उसकी अभिव्यक्ति करनी होती है जैसे बड़का जो एक छोटा दाना है उसमें अनगिनते पेड़ और अनगिनते फल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मौजूद हैं। केवल उसको बोकर, वृक्ष उगाकर अभिव्यक्ति की जाती है। तो इस तरह जो समस्त कार्योंका अनादि मान रहे हैं, प्रागभाव नहीं मानते याने जैसे घटके एक बीजमें भविष्यमें होने वाले वृक्षोंका अभाव नहीं मानते तो उनके सिद्धान्तमें कार्य अनादि बन बैठेगा और तब पुरुषके व्यापारकी अनर्थकता बन जायगी। फिर किस-लिए पुरुषका व्यापार होगा? पुरुषके व्यापारके बिना घट आदिक पदार्थ होते हुए कहीं भी तो नहीं दिखते। इस कारण उन्हें टाला नहीं जा सकता। जब कि पुरुषके व्यापारके बिना घटपट आदिक पदार्थ उपलब्ध ही नहीं होते तब उनको कार्य द्रव्य मानना ही पड़ेगा। चाहे उसे समर्थनरूपसे कार्य द्रव्य कहें और चाहे सीधा ही कार्य-द्रव्य कहें वह कार्यद्रव्य कहलायेगा और जब कार्यद्रव्यका लोप किया है सांख्य सिद्धान्तानुयायियोंने तब घट आदिकसे पहिले भाव तो था नहीं। प्रागभावके लोपका अर्थ ही यह है तब वह कार्यद्रव्य अनादि हो जाता है। यह दूषण भली प्रकारसे अभिव्यक्तवादमें भी आता है। समर्थन रूपसे जिनके सिद्धान्तमें कार्य द्रव्यको मानना पड़ा उनको ऐसा ही दूषण आयगा जैसा कि चार्वाक उद्भावरूपसे कार्यद्रव्य मानते हैं और उनका दूषण आता है। जो पदार्थ नहीं है जब तक तब तक उसका प्रागभाव मानना ही होगा, अन्यथा कार्यद्रव्यकी निष्पत्तिका प्रसंग आता है। अतः किसी भी प्रकार प्रागभावका लोप करनेपर व्यवस्था नहीं बनती।

सांख्यसिद्धान्ताभिमत अभिव्यतिरेक मन्तव्यमें प्राप्त दूषणकी तरह मीमांसकाभिमत अभिव्यक्तिके मन्तव्यमें भी प्रागभाव न माननेपर विडम्बना जिस तरह सांख्य सिद्धान्तके अभिव्यक्तिके मंतव्यमें यह दूषण आता है उस ही प्रकार मीमांसकोंके यहां भी शब्दका प्रागभाव न माननेपर अनादिपना आ जाता है। सांख्य सिद्धान्त भी अभिव्यक्ति मानते हैं और मीमांसक भी अभिव्यक्ति मानते हैं। अन्तर इतना है कि मीमांसक तो आकाश नामक द्रव्यका गुण मानते हैं शब्दको और सांख्य प्रकृतिका विकार मानते हैं शब्दको, किन्तु अभिव्यक्तिके सम्बन्धमें तो दोनोंकी स्थिति समान है। जैसे घट आदिकके विषयमें कहा था कि प्रागभाव नहीं मानते तो वह अनादि हो जायगा और फिर घट आदिकको निकट लानेके लिए प्रकट करनेके लिए पुरुषका व्यापार अनर्थक हो जायगा। यों ही यदि प्रागभाव नहीं मानते हैं मीमांसक जन तो उसके यहां भी शब्दको प्रकट करनेके लिए पुरुषका व्यापार अनर्थक होजायगा।

पुरुषके व्यापारको शब्दाभिव्यक्तिमें उपयोगी बतानेका मीमांसकका विफल प्रयास—अब यहां मीमांसक कहते हैं कि शब्दके प्रकट करनेमें पुरुषका व्यापार उपकारी है अतः पुरुषका व्यापार अनर्थक नहीं होता। पुरुषके व्यापारमें शब्दको उत्पन्न नहीं किया, किन्तु शब्दको प्रकट किया है अतएव पुरुषका व्यापार निरुपयोगी न रहा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन युक्तिसंगत नहीं है है, क्योंकि पुरुषके व्यापारसे पहिले शब्द है, इ को सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं। शब्द है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और उनके पुरुष व्यापारसे अभिव्यक्ति होती है, यह कल्पना नहीं बन सकती। केवल एक मान्यताकी हठमें कोई कल्पना करले, तो भले ही करले, किन्तु उनका हृदय भी मंजूर न करेगा। देखो ! अभिव्यक्तिकी कल्पना किस तरह होती है ? अंधकारमें कोई कलश आदिक रखे हैं, तो कलश आदिक वर्तमान हैं उनके कार्यका आवरण पड़ा हुआ है। तो जो कलश अंधकारसे ढके हुए हैं वे कलश दीपक व्यापारसे पहिले भी उनके सद्भावको सिद्ध करने वाला प्रमाण है, जैसे अंधेरेमें ही बैठा हुआ पुरुष हाथसे टटोलकर स्पर्श जान जाता है कि यह घड़ा है तो स्पर्शन प्रत्यक्ष आदिक भी उन घड़ा आदिकके सद्भावको सिद्ध करने वाला प्रमाण है, अतएव जो पहिलेसे सत् है घट पट आदिक और अंधकारसे ढके हुए हैं तो वहां दीपक जलाया जाय, दीप प्रकाश किया जाय तो अभिव्यक्ति हो जाती है। वे घट पट आदिक पदार्थ प्रकट दिखने लगते हैं। तो ऐसी स्थितिमें तो अभिव्यक्तिकी कल्पना युक्त है और शब्दकी अभिव्यक्ति कल्पना करना युक्त नहीं है क्योंकि शब्दके सद्भावको सिद्ध करने वाला दर्शन प्रत्यक्षादिक कोई प्रमाण नहीं है।

शब्दकी शाश्वतता की प्रत्यभिज्ञानसे भी सिद्धिकी असंभवता – यहाँ मीमांसक कहते हैं कि शब्दके सद्भावको सिद्ध करने वाले प्रत्यभिज्ञान आदिक प्रमाण तो हैं, उन प्रत्यभिज्ञानादिकसे शब्दकी सत्ता सिद्ध हो जाती है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञानादिक प्रमाण तो शब्द सत्त्व साध्यसे विरुद्ध बातको सिद्ध करते हैं। देखो ! शब्द है प्रत्यभिज्ञान प्रमाणसे जाना जाता है, यह अनुमान बना रहे हैं शङ्काकार तो इस अनुमानमें साध्यकी तो है सर्वथा सत्त्व याने शब्द अनादि कालसे सर्वप्रकारसे है तो शब्दकी अभिव्यक्तिसे पहिले सर्वथा सत्त्व नामक साध्य कहीं है बल्कि उससे विपरीत कथंचित् सत्त्वके साथ प्रत्यभिज्ञानकी व्याप्ति लगती है शब्द पुद्गल द्रव्यकी अपेक्षासे तो उसमें सत्त्व है किन्तु पर्यायकी अपेक्षासे शब्दमें असत्त्व है। तो शब्दकी अभिव्यक्तिसे पहिले शब्दमें कथंचित् सत्त्व है, सर्वथा सत्त्व नहीं है अतः प्रत्यभिज्ञान आदिक प्रमाणोंसे शब्दका सत्त्व सिद्ध नहीं होता। अभिव्यक्तिसे पहिले यदि शब्दमें सर्वथा सत्त्व माना जाय तो वहां प्रत्यभिज्ञानकी गति न हो सकेगी, क्योंकि प्रत्यभिज्ञानका लक्षण कहा गया है यह कि दर्शन और स्मरण है कारण जिसमें, ऐसा जो संकलनात्मक ज्ञान है वह प्रत्यभिज्ञान है, जैसे कि यह वही है, यह जो ज्ञान किया है वह तो हुआ वर्तमान और वही है इन शब्दोंमें जो ज्ञान बना है वह है स्मरणका विषय। तो यों प्रत्यक्ष और स्मरणके कारणसे जो संकलनात्मक ज्ञान होता है वह प्रत्यभिज्ञान है। सो यहाँ प्रत्यभिज्ञान मानना बन नहीं सकता, क्योंकि अभिव्यक्ति करने वाले पदार्थोंके व्यापारसे पहिले शब्दके सद्भावको सिद्ध करने वाला प्रमाण नहीं है। जहां भी एकत्व प्रत्यभिज्ञान बनाया जाता है वहां वर्तमानसे पहिले किसी पदार्थके सद्भावकी सिद्धि बनी हुई है। जैसे कि कहा कि यह वही देवदत्त है जिसे गतवर्ष कलकत्तामें देखा था। तो यहाँ इस समय देवदत्त दृष्टिमें आ रहा है यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो है प्रत्यक्ष यों शब्द भी ज्ञानमें आता है लेकिन स्मरण जो बन रहा है एक वर्ष पहिलेका उस स्मरण नामक प्रमाणसे देवदत्तकी सत्ता पहिले सिद्ध है तब प्रत्यभिज्ञान बनता है लेकिन शब्दकी अभिव्यक्तिसे पहिले शब्दको प्रकट करने वाले पदार्थोंके व्यापारसे पहिले शब्दका सद्भाव सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है।

मीमांसकाभिमत सर्वथा विद्यमान शब्दमें प्रमाण ग्राह्यत्वकी असंभवता—एक बात और भी है। जो पदार्थ सर्वथा विद्यमान है, सर्वथा विद्यमान पदार्थ प्रमाणसे ग्राह्य होता ही नहीं है। आखिर इतना तो मानना ही पड़ेगा कि यह पदार्थ अभी अप्रमाण ग्राह्य था याने प्रमाण द्वारा अग्राह्य था। अब यहाँ पदार्थ प्रमाण ग्राह्य बना तो अब देखिये कि वह पदार्थ पहिले प्रमाण द्वारा अग्राह्यत्व धर्मसे युक्त था और प्रमाण द्वारा ग्राह्यत्व धर्मसे युक्त बन गया। तो जैसा इस समय बना हुआ है उस प्रकारसे सर्वथा सत्त्व तः पहिले न था। तो जो सर्वथा ही विद्यमान हो वह प्रमाण ग्राह्य नहीं बनता। उसमें भी धर्म विशिष्टताकी अपेक्षासे कथंचित सत्त्व और कथंचित असत्त्व मानना होगा तो यों यह शब्द अभिव्यंगसे विलक्षण है, अर्थात् जो जो पदार्थ प्रकट होनेमें आते हैं ऐसे उन घट पट आदिक पदार्थोंसे बिल्कुल विलक्षण हैं। ये घट पट आदिक तो अंधकारसे कपड़ेसे ढके हुए उनका अन्त: सद्भाव है तब वहाँ दीप आदिकसे या आवरणके हटानेसे अभिव्यक्ति होती है। लेकिन इस तरहसे अभिव्यक्ति की पद्धति वाला शब्द नहीं है, अत: शब्दकी अभिव्यक्ति होती है, ऐसी कल्पना करना युक्त नहीं है, किन्तु द्रव्यभूत पदार्थ अनादिसे ही सत् है उसे तो मानो। शब्द है पुद्गल द्रव्यका परिणमन। तो पुद्गल द्रव्य तो शाश्वत है, किन्तु शब्दरूप परिणमन शाश्वत नहीं है तो शब्द जब पहिले न था और पुरुष व्यापारसे उसका प्रकटीकरण हुआ तो मानना होगा कि शब्दकी उत्पत्ति हुई और इसी तरह जो सत्कार्यवादी यह कहते हैं कि घट भी बनता नहीं है, किन्तु कुम्हार आदिकके व्यापारसे घट आदिककी अभिव्यक्ति होती है, यह कल्पना भी निराकृत हो जाती है।

अभिव्यक्तिवादमें भी प्रागभाव न माननेपर कार्यकी अभिव्यक्तिकी अनादिताका प्रसंग—यहाँ यह प्रसंग चल रहा है कि प्रागभाव न माननेपर यह सब कार्यद्रव्य अनादि हो जायगा। यद्यपि वे सतकार्यवाद—सिद्धान्तानुयायी कार्यद्रव्य नहीं मानते, अभिव्यक्ति मानते हैं तो भले ही अपने मनको समझानेके लिए अभिव्यक्ति ही मान लें किन्तु अभिव्यक्तिकी कल्पना करके भी अभिव्यक्तिका लोप प्रागभाव तो मानना ही होगा। शब्द अब प्रकट हुआ है यह तो कहना पड़ेगा कि इससे पहिले शब्द प्रकटपनेका अभाव था। तो लो प्रागभाव तो आ ही गया। यदि अभिव्यक्तिवादमें प्रागभाव न माना जाय तो फिर हमेशा शब्दोंके सुननेका प्रसंग आयगा। हमेशा शब्द सुनाई दे जाना चाहिए, क्योंकि मीमांसकसिद्धान्तमें धर्म और धर्मीमें अभेद माना गया है तो शब्दकी अभिव्यक्ति तो ये दो पदार्थ थोड़े ही हुए कि कोई कहे कि शब्द

Version 1

की अभिव्यक्ति प्रकट की है शब्द और अभिव्यक्ति दोनों अभिन्न हैं अतएव उनको मानना होगा कि अभिव्यक्तवादमें भी प्रागभाव व्यवस्था बनानेमें समर्थ होगा। देखिये शब्दको सम्बन्धमें मानते हैं ये मीमांसक सत्कार्यवादी कि मत् तो सद्भूत शब्द के तालु आदिकके द्वारा जो अभिव्यक्ति हुई है, तालू, कंठ, दंत, मूर्द्धा आदिक व्यापारों के द्वारा जो शब्दकी अभिव्यक्ति हुई है वह अभिव्यक्ति पहिले न थी सो की गई है। लो यों कहकर भी अभिव्यक्तिका प्रागभाव मान लिया है। और अब आगे देखिये कि शब्द और शब्दकी अभिव्यक्ति ये दोनों कुछ अलग बात नहीं हैं। तब फिर यों कहना कि तालू आदिकके द्वारा शब्दकी अभिव्यक्ति जो पहिले न थी, प्रकट की गई है, और शब्द प्रकट नहीं किया गया। यह तो केवल अपनी रुचिसे बनाये हुए शब्द को दिखाना मात्र है। क्योंकि मीमांसक सिद्धान्तमें शब्द अभिव्यक्त स्वरूप है। क्योंकि धर्म और धर्मीमें अभेदका एकान्त किया है।

शब्दाभिव्यक्तिको पौरुषेयी कहकर प्रागभावके अपह्नवका मीमांसकों का निष्फल प्रयास— अब यहाँ मीमांसक कहते हैं कि हम लोगोंके द्वारा पहिले असद्भूत शब्द नहीं किया जाता, क्योंकि शब्द तो अपौरुषेय बताया है। वह किसी भी पुरुषके द्वारा नहीं किया जाता। परन्तु शब्दकी अभिव्यक्तिको पौरुषेयी कहा है, अर्थात् अभिव्यक्ति पुरुषके द्वारा प्रकट की जा सकती है, सो वह अभिव्यक्ति पहिले न थी, ऐसी असत् अभिव्यक्तिको पुरुष व्यापारके द्वारा किया जा रहा है, ऐसा माननेमें यह दर्शन तो याने अभिव्यक्ति पहिले न थी तो असती अभिव्यक्ति अब प्रकट की गई है, पर शब्द प्रकट नहीं किया गया। शब्द तो था ही पहिले उसमें पुरुषका व्यापार नहीं हुआ। पुरुष व्यापारसे तो शब्दकी अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकारका सिद्धान्त प्रमाण शक्तिसे रचा गया है। उसमें दूषण नहीं दिया जा सकता। इसके समाधानमें कहते हैं कि देखिते—शब्दकी अभिव्यक्ति शब्दसे अभिन्न है, ऐसा स्वयं मीमांसक सिद्धान्तमें माना गया है। तो जैसे शब्द अपौरुषेय है उसी प्रकार शब्दकी अभिव्यक्ति भी अपौरुषेय होगी। उस अभिव्यक्तिका पौरुषेयपना होनेस पहिले असत्त्व माननेपर फिर तो उस अभिव्यक्तिसे अभिन्न शब्दसे भी पौरुषेयपना होनेके कारण पहिले असत्व मान लीजिए। जब धर्म और धर्मीमें अभेद है तो शब्द है धर्मी अभिव्यक्ति है धर्म। तो जो स्वरूप अभिव्यक्तिमें है वही स्वरूप शब्दमें है। जो स्वरूप शब्दमें है वही स्वभाव अभिव्यक्तिमें है तो शब्दकी तरह अभिव्यक्ति अपौरुषेय बन गया तो भी अभिव्यक्ति न बनेगी। और जैसे कि अभिव्यक्तिसे पुरुष व्यापारसे पहिले पौरुषेय होनेके कारण अभिव्यक्ति से पहिले असत् रहेगा। इन दोनोंमें किसी भी प्रकारकी अविशेषता नहीं है। क्योंकि शब्द और अभिव्यक्ति ये दोनों जुदे-जुदे पदार्थ नहीं हैं।

शब्दाभिव्यक्तिको शब्दसे भिन्न मानकर कार्यत्वनिषेधका विफल प्रयास यदि नैयायिक यह कहें कि शब्दकी अभिव्यक्ति शब्दसे भिन्न ही है तो उत्तरमें पूछते हैं

http://www.jainkosh.org

कि उस अभिव्यक्तिका अर्थ क्या है ? यदि शब्दकी अभिव्यक्तिका अर्थ श्रवणज्ञानकी उत्पत्ति होना कहते हो अर्थात् कर्णइन्द्रिय द्वारा ज्ञानमें आ जाना इसका नाम शब्दकी अभिव्यक्ति कहते हो तो यहाँ बताओ कि श्रवण ज्ञानकी उत्पत्ति शब्दमें पहिले थी अथवा न थी ? यदि कहो कि पहिले थी, तो जो बात पहिले थी उसके फिर यत्नसे करनेकी बात ही क्या रहती है। और, कहो कि वह शब्दकी अभिव्यक्ति अर्थात् श्रवण ज्ञानोत्पत्ति पहिले न थी तो अब शब्दमें नित्यताका विरोध हो गया, क्योंकि देखो ! श्रवणज्ञानोत्पत्ति शब्दमें पहिले न थी। तो जब न थी तब वह शब्द अश्रावण हो गया, कर्णेन्द्रिय द्वारा सुननेमें न आये ऐसा हो गया। और फिर देखो पहिले शब्द अश्रावण था पश्चात् उस अश्रावण स्वभावका त्याग करके यह शब्द श्रवण स्वभावमें आया याने सुननेमें आये, ऐसा स्वभाव उत्पन्न हुआ तो यह बात कथंचित् अनित्य माने बिना हो सकती है क्या . तो शब्दमें अगर श्रवणज्ञानोत्पत्ति पहिले न थी तो शब्द नित्य न रह सका। यों शब्दकी अभिव्यक्तिको शब्दसे भिन्न मानकर भी बात नहीं बनती। अब यहां मीमांसक कहते हैं कि श्रवणज्ञानोत्पत्तिके अभावमें भी पहिले शब्दमें श्रावणत्व माना ही है। याने यद्यपि श्रवणज्ञानोत्पत्ति अब हुई इससे पहिले न थी, तो भी अर्थात् श्रवणज्ञानोत्पत्ति न थी तब भी शब्दमें श्रवणपना तो था ही। तो उत्तरमें कहते हैं कि जब पहिले शब्दमें श्रवणपना माना ही है तो अब श्रवणज्ञानोत्पत्तिरूप अभिव्यक्तिसे मतलब क्या रहा ? पहिले भी शब्द श्रवण था, श्रोत्रइन्द्रिय द्वारा ज्ञानमें आता था। और अब आ गया तो श्रवणज्ञानोत्पत्तिरूप अभिव्यक्ति मानने का प्रयोजन ही क्या रहा ?

श्रवणज्ञानोत्पत्तिमें पुरुषस्वभावकी असिद्धि — यहाँ मीमांसक कहते हैं कि देखिये ! श्रवणज्ञानोत्पत्ति शब्दका धर्म नहीं है, क्योंकि श्रवणज्ञानोत्पत्ति कोई कर्ममें रहनेवाली क्रिया नहीं। कर्मके मायने यह कि जैसे कोई कहता है कि मैं शब्दको सुनता हूँ तो इस क्रियामें, इस अभिप्रायमें, वाक्यमें शब्द कर्म रहा ना ? शब्दको सुनता हूँ, तो वह शक्तिरूप जो क्रिया है वह कर्ममें नहीं है सुनने वाला शब्द नहीं होता है। यह क्रिया तो किसी कर्तामें ही सम्भव होती है। तो बात क्या रही कि श्रवणज्ञानोत्पत्ति पुरुषका स्वभाव है, क्योंकि श्रवणज्ञान बननेमें ज्ञानकी उत्पत्ति होना यह कर्ताके द्वारा की जाने वाली क्रिया है, इसका करने वाला पुरुष है। पुरुषमें ही उस ज्ञानका समझका व्यापार हो रहा है याने सुननेका काम श्रोताओंके आश्रित है शब्दके आश्रित नहीं है। अतः श्रवणज्ञानोत्पत्ति व अभिव्यक्तिसे प्रयोजन है। उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि कर्ताकी तरह कर्तामें रहने वाली क्रियाको भी पहिले सत्व मानना पड़ेगा, क्योंकि कर्ता है नित्य और कर्ताकी क्रिया, कर्ताका धर्म है। मीमांसक सिद्धान्तमें धर्म धर्मीका अभेद स्वीकार किया गया है। तो कर्ता आत्माकी तरह कर्तामें रहने वाली क्रिया भी सत् हुई। और जब कर्तृस्थ क्रिया पहिलेसे है तब उस व्यापारकी अनर्थकता है। याने जब पहिले ही श्रवणज्ञानोत्पत्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, तब यत्न करनेका क्या प्रयोजन रहा ? इस कारण श्रवणज्ञानोत्पत्तिमें पुरुषस्वभाव मानकर फिर अभिव्यक्तिका प्रयोजन बताना युक्ति सगत न रहा।

श्रवणज्ञानोत्पत्ति योग्यतारूप शब्दाभिव्यक्तिके मन्तव्यकी मीमांसा — मीमांसक कहते हैं कि श्रवणज्ञानोत्पत्तिकी योग्यताका नाम है शब्दकी अभिव्यक्ति। केवल श्रवणज्ञानोत्पत्तिका नाम अभिव्यक्ति नहीं तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो योग्यताके सम्बन्धमें भी वैसी ही चर्चा अब खड़ी होगी। बताओ कि श्रवण ज्ञानोत्पत्ति योग्यता भी शब्दका तो धर्म है ही तब यह योग्यता रूप शब्द धर्म क्या शब्दसे अभिन्न है या भिन्न है ? शब्दमें श्रवणज्ञानकी उत्पत्ति हो जाय ऐसी योग्यता शब्दसे यदि अभिन्न है तो जैसे पहिलेसे सत् है ऐसे ही यह योग्यता भी पहिलेसे सत् है। फिर पुरुषके प्रयत्नके द्वारा कैसे की जावे ? जो पहिलेसे सत् है वह सत् है। उसके जानेसे क्या मतलब ? उसमें यत्न व्यापारका कुछ प्रयोजन नहीं। यदि कहो कि वह सत् है, उसके किये जानेसे क्या मतलब ? उसमें यत्न व्यापारका कुछ प्रयोजन नहीं। यदि कहो कि वह श्रवण ज्ञानोत्पत्तिकी योग्यता शब्दसे भिन्न है। क्योंकि वह योग्यता स्रोत्रका स्वभाव है। शब्द है, आकाशका गुण और शब्द स्रोत्रका स्वभाव अतः यह योग्यता शब्दसे भिन्न है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा विकल्प करनेपर भी वह योग्यता पहिले असत् नहीं कही जा सकती, क्योंकि यहां अब मान लिया गया स्रोत्र शब्दाभिव्यक्तिको स्रोत्रका स्वभाव और स्रोत्रके मायने क्या है ? जैसे कर्णेन्द्रिय दिखती है, उसमें आकाशके प्रदेश हैं वे ही तो स्रोत्र हैं। तो आकाशके प्रदेशरूप स्रोत्र तो सदा ही सत् है और स्रोत्रका स्वभाव बताया है श्रवणज्ञानोत्पत्तिकी योग्यताको। तो वह योग्यता भी सदा सत् है। तब उस योग्यताकी अभिव्यक्ति करनेका प्रयोजन क्या ?

श्रवणज्ञानोत्पत्तियोग्यताको आत्मधर्मरूप माननेके मन्तव्यकी मीमांसा — अब मीमांसक कहते हैं कि वह योग्यता आत्माका धर्म है। न शब्दका धर्म है, न स्रोत्रका धर्म है, किन्तु आत्माका धर्म है। तो पूछता है शंकाकारसे कि यदि अभिव्यक्तिको आत्माका धर्म मानते हो उस श्रवणज्ञानोत्पत्ति योग्यताको पुरुषका धर्म स्वीकार करनेपर यह बताओ कि वह योग्यता भी शब्दसे भिन्न है अथवा अभिन्न ? शब्दसे भिन्न है तो इसका निराकरण पहिले ही किया गया है, और, मीमांसक सिद्धांत में धर्मको धर्मीसे अभिन्न माना गया है। और, यदि कहा जाय कि वह शब्दसे अभिन्न है और है ही ऐसा सिद्धान्त कि मीमांसकोंने कहा है तो आत्मा नित्य है तो आत्माका धर्म भी नित्य है। यहां माना है श्रवणज्ञानोत्पत्तिकी योग्यताको आत्माका धर्म। तो वह योग्यता असत् नहीं रह सकती। और जब सत् है तब उसके यत्नसे प्रयोजन क्या, शब्द भी सत् है अनादिसे और शब्दका धर्म जितना कुछ कहा वह भी सत् है, आत्मा भी सत् है, स्रोत्र भी सत् है। तब फिर शब्द पहिले सुननेमें नहीं आता और अब आता, यह व्यवस्था बन ही नहीं सकती। अब शंकाकार कहता है कि देखिये ! अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभिव्यक्तिके हम दो स्वरूप मान लेते हैं एक तो श्रवण ज्ञानोत्पत्ति और दूसरा श्रवणज्ञानोत्पत्तिकी योग्यता। और ये दोनों प्रकारकी अभिव्यक्तियां शब्दसे भिन्न हैं और अभिन्न हैं। तब तो कोई दोष न दिया जा सकेगा। समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी असत्य है, क्योंकि ऐसे दो विकल्प माननेपर दोनों ही पक्षोंमें याने श्रवण ज्ञानोत्पत्तिके पक्षमें और श्रवण ज्ञानोत्पत्तिकी योग्यताके पक्षमें जो दोष दिया था वह दोष बराबर आ रहा है क्योंकि सर्वथा दोनों प्रकारकी अभिव्यक्तिमें प्रागभाव नहीं बनेगा। क्योंकि उनका यदि प्रागभाव मान लेते हो तब तो तुम्हारे मूल मंतव्यका घात हो गया। प्रागभावका सिद्धि के लिए ही तो यह प्रसंग चल रहा है, सो प्रागभाव तो आप मानते ही नहीं, और यदि प्रागभावका योग स्वीकार करते हो तब तो सुनिये कि शब्दकी ही तरह श्रोता और प्रमाता भी पहिले असत् हो गए तब इसके भी प्रयत्नसे करनेका प्रसंग आ जायगा। जैसे अभिव्यक्तिका प्रागभाव मान लिया तो शब्दका श्रोता का, प्रमाताका भी पहिले अभाव मान लेना होगा और फिर अभिव्यक्तिकी तरह पहिले असद्भूत इन तीनोंका भी प्रयत्नको करनेका प्रसंग आता है, क्योंकि शब्द श्रोता और स्रोत्र ये नित्य है और इनका धर्म है अभिव्यक्ति। तो अभिव्यक्ति भी नित्य हुई। तब अभिव्यक्तिका प्रागभाव नहीं बनता और यदि अभिव्यक्तिको प्रागभाव मान लेते हो तो कर्ता कर्म करण भी पहिले असत् हो गए तो उनको भी करना पड़ेगा। ऐसा कहना कि शब्द, श्रोता और स्रोत्र ये पहिले न होनेपर भी इनकी तो अभिव्यक्ति ही यत्नसे की जाती है, किन्तु इन तीनोंका किया नहीं जाता। तो यह तो अपनी रुचिसे बना लिया एक सिद्धान्त बन गया, यह कोई युक्तिसंगत बात नहीं ठहरती। तो शब्द अनादिसे है और उसको किया नहीं जाता, किन्तु प्रकट किया जाता, ऐसा मानकर प्रागभाव का अपन्हव कर देनेकी आपत्ति आती है। और, अभिव्यक्ति मानकर भी प्रागभावका लोप नहीं किया जा सकता। और अब तो अभिव्यक्ति भी सिद्ध नहीं होती।

आवरणविगमनामक अभिव्यक्तिके मन्तव्यकी मीमांसा – मीमांसक कहते हैं कि आवरणके दूर होनेका नाम अभिव्यक्ति है। उसमें क्या दोष आयगा? तो इसके समाधानमें पूछते हैं कि वह आवरणके दूर होने रूप अभिव्यक्ति क्या पहिले थी? याने शब्दके आवरणका दूर होना इसे मानते हो अभिव्यक्ति तो ये आवरण विगम तालू आदिक साधनके व्यापारसे पहिले थे कि नहीं? न थे यह तो यों न कह सकोगे कि प्रागभाव सिद्ध हो जाता है कि लोकमें साधनके व्यापारसे पहिले आवरण विगम न था, सो तो कह नहीं सकते। प्रागभाव सिद्ध होनेके डरसे, और मंतव्य भी खण्डित हो जाता है। कहोगे यह कि आवरण विगम पहिले था तो जब पहिले आवरण विगम था तो जैसे कर्म कारण और कर्ता शब्द स्रोत्र और पुरुष इनका प्रागभाव न होनेसे इनकी भी पहिलेसे सत्ता है और आवरण विगमकी पहिलेसे सत्ता है तब शब्द सुननेके लिए कुछ व्यापार करनेसे क्या प्रयोजन रहा? यदि कहो कि शब्दमें विशेषता आ जानेका नाम अभिव्यक्ति है। याने शब्द अब श्रूयमाण हो गए तो शब्दमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

श्रूयमाणपना आ जानेका नाम अभिव्यक्ति है तो इस सम्बन्धमें भी वही समाधान है कि शब्दोंमें इस विशेषताका आ जाना क्या पहिले था या नहीं ? न था यह तो प्रागभाव मान लेना पड़ेगा इस डरसे कहेंगे नहीं। कहोगे कि इस विशेषताका आधान भी पहिले था तो सुनो अब कर्म कर्ता कारणका तो प्रागभाव है नहीं, याने यह अनादिसे पहिलेसे ही है शब्द स्रोत्र और पुरुष जैसा यह अदादिसे है और अब शब्द में श्रूयमाणपनेरूप धर्मका आधान भी पहिलेसे है तब प्रयत्न करनेसे फायदा क्या ? तो आवरणके विगम होनेका नाम अभिव्यक्ति है, यह विकल्प भी युक्तसंगत न बन सकेगा।

आवरणविगम व विशेषाधानसे अभिव्यक्ति माननेकी असंगतता—मीमांसकोंने शब्दाभिव्यक्तिको यहाँ दो रूपोंके उपस्थित किया है। एक तो आवरण विगम अर्थात् शब्दपर जो आवरण है उसको दूर किया जाना और दूसरा रूप माना है विशेषका आधान अर्थात् शब्दमें श्रूयमाणपनेका आधान हो जाना रूपक आ जाना सो है विशेष आधान। सो देखिये आवरण विगम और विशेषाधान जब शब्द, पुरुष और स्रोत्रको मान लिया जाता है तब इन यज्ञिकोंने तो शब्द पुरुष, स्रोत्रको नित्य माना है। जब ये नित्य हैं तो इसका प्रागभाव कैसे सम्भव हो सकता है ? नित्य पदार्थके स्वरूप भी नित्य ही तो होंगे। उनका प्रागभाव न बनेगा। और, कदाचित आवरण विगम और विशेषाधानका प्रागभाव मान लिया जाता है तब वह प्रयत्नका कार्य बन जायगा ? शब्द भी प्रयत्नका कार्य बन जायगा और शब्द ही क्या, शब्द पुरुष स्रोत्र सभी कार्य बन बैठेंगे। यदि यह कहा जाय कि पुरुषके प्रयत्न द्वारा जो अभिव्यक्ति की जाती है वह पहिले असत् है पहिले असत् रहने वाली अभिव्यक्ति ही पुरुषके प्रयत्नके द्वारा किया जाता है किन्तु उसका स्वरूप शब्द पुरुष स्रोत्र ये नहीं किए जाते तो यह कहना केवल अपनी रुचिके अनुसार, सिद्धान्त गढ़ देना मात्र है। तो शब्दाभिव्यक्ति सिद्ध नहीं होती, किन्तु तालू आदिक कारणोंके व्यापारोंसे शब्द के लिये जानेकी सिद्धि होती है। और, जैसे शब्दकी अभिव्यक्तिके सम्बन्धमें कथन किया गया है उस प्रकारसे सांख्य सिद्धान्तके अनुयायियोंके यहां घट पट आदिककी अभिव्यक्ति पहिले असत् हुई अभिव्यक्ति चक्र दंड आदिकके द्वारा की जाती है किन्तु घट आदिक नहीं किए जाते हैं यह भी तो बताया जा सकता है। जैसे मीमांसक सिद्धान्तानुयायी यह कहते हैं कि शब्द नहीं किया जाता है पुरुषके व्यापार द्वारा, किन्तु शब्दकी अभिव्यक्ति जो कि पहिले न थी वह की जाती है। तो वां सत्कार्यवादी सांख्य भी यह कह सकते हैं कि दंड चक्रादिक कारणोंके द्वारा घटादिक नहीं किए जाते। किन्तु घटादिकका अभिव्यक्ति जो कि पहिले न थी वह की जाती है। क्योंकि इन दोनों मंतव्योंमें कोई अन्तर डालने वाला कारण विशेष नहीं है कि ताल आदिक तो शब्दके व्यञ्जक बन जायें और चक्रादिक घटके व्यञ्जक न बनें ऐसी कोई व्यवस्था कर सकने वाला हेतु नहीं है। अथवा चक्रादिक तो घटादिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

के करने वाले हुए और तालू आदिक शब्दके करने वाले नहीं हुए ऐसा विशेष अन्तर देने वाला कोई हेतु नहीं है। तो शब्दकी अभिव्यक्तिकी तरह यह भी मान लेना होगा कि घट पट आदिक भी शब्दकी तरह पहिलेसे सत् हैं, दण्ड चक्रादिकके द्वारा घटादिककी अभिव्यक्ति ही की जाती है। यों मीमांसकोंको कर्मादिक पदार्थोंकी व्यवस्था तोड़ करके यहाँ भी सत्कार्यवाद मानना होगा किन्तु वास्तविक बात यह है कि जैसे घटपट आदिक पदार्थ कारणोंके व्यापार द्वारा किए जाते हैं उसी प्रकार तालू आदिकके व्यापार द्वारा शब्द भी किए जाते हैं। और, जब ये शब्द किए जाते हैं तो कार्यद्रव्य बन गए। और जब कार्य द्रव्य बनते हैं तो वहाँ प्रागभाव मानना ही होगा। प्रागभाव माने बिना कार्यद्रव्य अनादि बन जायगा और उसकी व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती।

घटादिक व शब्दादिक पदार्थोंको कार्य द्रव्य न माननेपर विडम्बना— कार्यद्रव्य न माननेपर तो युक्ति और नीतिमें भी विरुद्ध बात जचती है। देखिये ! व्यञ्जकोंका व्यापार नियमसे व्यंग पदार्थोंको ला दे, प्रकट करदे यह सम्भव नहीं है। व्यञ्जक कहते हैं उस पदार्थको कि जिसके कारण ढकी हुई चीज प्रकट हो जाती है। जैसे घड़े पर पर्दा पड़ा है तो पर्देके हटाने वाले आवरण विगम होना यह व्यञ्जक हो गया। उसने घटको दिखा दिया तो व्यञ्जक पदार्थका जो व्यापार होता है वह नियम से व्यंगसे जो कि प्रकट किए जाने योग्य है उसको प्रकाशित ही करदे यह नियम नहीं है। कपड़ेको हटा लेना घट पट आदिकको प्रकट कर देना है तो सभी जगह कपड़े कपड़े हैं। उन कपड़ोंको हटा देना तो घट पट आदिकको प्रकट नहीं करता तो व्यञ्जकका व्यापार व्यंगको नियमसे प्रकट करदे यह नियम नहीं है। लेकिन यहाँ देखिये ! तालू आदिकका व्यापार नियमसे शब्दको व्यक्त करता है तो नियमसे व्यक्त करनेका कार्य द्रव्यके करणमें होता है, व्यंगके प्रकरणमें नहीं होता। इससे सिद्ध है कि शब्द तालू आदिकका व्यंग नहीं है तो जीभ तालू, ओंठ आदिकके व्यापार द्वारा शब्द प्रकट नहीं किया जाता, किन्तु शब्द किया जाता किन्तु शब्द किया जाता है। शब्द परिणति बना करती है जैसे चक्रादिकका व्यंग घटादिक नहीं है कि चक्र चलाया जाय, घुमाया तो वहाँ घड़ा बन ही जाय यों तो नहीं है। तो जैसे चक्रादिकका घटादिक व्यंग नहीं है, किन्तु सब कारण कलाप मिलें तो घट कार्यकी उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार तालू आदिक भी व्यंग नहीं है किन्तु यथोचित तालू आदिकका संयोग वियोगरूप साधन बने तो शब्दकार्यकी उत्पत्ति होती है। तो यहाँ मीमांसक कहते हैं कि शब्दके व्यंगपनेका अभाव वाला दोष यह घटित नहीं होता। क्योंकि समस्त वर्ण सर्वगत हैं जो यह दृष्टान्त दिया कि आवरण विगमसे व्यञ्जक पदार्थोंके सद्भावको व्यंग कार्य हो ही हो, यह बात नियमित नहीं है। सो यह दोष नहीं दे सकते। क्योंकि वर्ण तो है सर्वगत उदाहरणमें जो घटपट आदिककी बात कही वह वहां सर्वगत है ? तो वर्णोंके सर्वव्यापी होनेके कारण यहां यह दोष नहीं आता। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी केवल

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात कह देना मात्र है, क्योंकि वर्णोंमें सर्वगतपना है, यह प्रमाणबलसे सिद्ध नहीं होता, क्योंकि प्रमाणबलसे प्रत्यक्षादिकसे विवक्षित न होनेपर भी वर्णोको सर्वगत मान लिया जाय तो कोई यह भी कह सकेगा कि घटपट आदिक भी सर्वव्यापक हैं और जब कुम्हार दंड चक्र चलाता है तो वहां घट प्रकट हो जाता है ऐसा भी कहा जा सकता कि घट पट आदिक चूंकि सर्वगत है अतः चक्रादिकका व्यापार करनेसे नियम से घटादिककी उपलब्धि हो जाती है। शब्दकी तरह फिर घट पट आदिक सर्व पदार्थोंकी अभिव्यक्ति माननी होगी। और यों माननेपर फिर गुण कर्मादिक पदार्थों का लोप हो जायगा।

सत्कार्यवादकी मीमांसा—उक्त वार्ता सुनकर सांख्य सिद्धान्तानुयायी कहते हैं कि यह बात बहुत भली कही। यह तो इष्ट ही है कि घट पट आदिक कार्य पहिलेसे ही हैं, पदार्थमें मौजूद ही रहते हैं, केवल उनकी अभिव्यक्ति ही की जाती है। तब इसके समाधानमें कहते है कि यह कथन युक्तिसंगत नहीं है कि दंड चक्रादिक कारणों का व्यापार होनेपर घट पट आदिककी अभिव्यक्ति होती है। हम कारणोंके व्यापारमें भी प्रश्न रह सकेंगे, केवल कारणके कार्यमें ही प्रश्न नहीं है, यह कारण कर्ममें भी प्रश्न होता है कि चक्रादिक भी कारण अपने व्यापारोंके नियमसे अभिव्यञ्जक बनें। जहां जहां चक्रादिक हैं सो वे अपने व्यापारके भी प्रकट करने वाले बनें। वहां भी ये स्थितियां न रहना चाहिए कि कभी चक्र अपने व्यापार रहित है और कभी चक्र अपने व्यापारसे सहित है। जैसे घट पट आदिक पदार्थोंके सम्बन्धमें मानते हैं सत्कार्यवादी कि घट आदिक सदा हैं किन्तु कारणके द्वारा घटादिककी अभिव्यक्ति की जाती है। तो उन कारणोंके सम्बन्धमें भी प्रश्न है कि कारणोंका व्यापार भी सदा प्रकट रहे। व्यापारोंको भी हम सर्वगत मान लें, क्योंकि अब तो केवल कह देने मात्रसे सिद्धान्त बना लिया जा रहा है। और, इस तरह चक्रादिकके व्यापारोंकी अभिव्यक्ति जब सर्वगत है तब सारा घट रहना चाहिए सो अनिष्ट आपत्ति आती है, जब कारणके व्यापार को किया जानेका निराकरण किया गया तो इसमें फिर अनवस्था नहीं ठहरती, अनवस्था नहीं ठहरती, अनवस्था हो जायगी। देखिये ! चक्रादिकका व्यापार है घूमना तो अपने व्यापारको उत्पन्न करनेमें कारणोंका व्यापारान्तर कल्पित किया जाना चाहिए, क्योंकि अगर अन्य कारण अन्य व्यापार व्यापारोंको उत्पत्तिके कारण नहीं हैं तो व्यापार सदा रहना चाहिए। तो सदैव कारण रहे, सदैव कारणका व्यापार रहे तब सदैव कार्य भी रहना चाहिए। सो तब यह मानना होगा कि अपने व्यापारको उत्पत्ति करनेमें कारणका व्यापारान्तर होता है तो उस अन्य व्यापारके उपादानमें अन्य व्यापारान्तर होगा। इस तरह अनवस्था दोष आ जायगा। किन्तु, अपने व्यापारकी स्वयं ही अभिव्यक्ति मान ली जाय तो अनवस्था नहीं होती। फिर तो कारक पदार्थकी सन्निधि आदिक मात्रसे ही व्यापारकी अभिव्यक्ति सिद्ध हो जायगी। अन्यथा व्यञ्जक पदार्थ और कारक पदार्थमें कोई भेद न रह सकेगा। तो यों शब्दोंकी अभिव्यक्तिकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तरह और शब्दोंको सर्वगत् माननेकी तरह घट पट आदिकको भी सर्वगत् मानकर फिर चक्रादिकके व्यापार द्वारा उसकी उपलब्धि बना दी जायगी। तब मीमांसकोंके यहाँ जो गुण और कर्म पदार्थकी व्यवस्था माना है वह खण्डित हो जायगी। फिर और भी सुनो कि कारणके व्यापारोंका कारणसे सर्वथा भेद है अथवा अभेद है जो अभिव्यक्ति के करने वाले कारण हैं उनका व्यापार हुआ और वह व्यापार उन कारणसे भिन्न रहे या अभिन्न? यदि कहो कि भिन्न है व्यापार जुदी चीज है और कारण जुदी चीज है तब व्यापारवानका उपयोग कुछ न रहा। फिर कारण व्यञ्जक कारक ये सब अनुपयोगी हो जायेंगे, क्योंकि अभिव्यक्ति आदिक काम बन जाना तो व्यापार मात्रसे ही सम्भव हो गया। कारणोंका इष्ट कार्य सम्पादन कर देना ही तो कर्तव्य माना गया है और उसका साधन ले लिया इन व्यापारोंका जिन्हें कि पदार्थसे कारणसे सर्वथा भिन्न कहा गया है। तो जब व्यापार मात्रसे काम बन गया तब व्यापारवानसे याने उन कारक कारणभूत पदार्थोंसे अब क्या सिद्ध किया जाता है? जिससे कि उन व्यापारवान कारणोंका, व्यञ्जकोंका, पदार्थोंका उपयोग किसी तरहसे मान लिया जाय तो यों कारणका व्यापार कारणोंसे भिन्न है यह नहीं बनता, और वह व्यापार कारणोंसे अभिन्न है यह भी संगत नहीं बैठता, क्योंकि फिर तो अभिव्यक्त हो जाय यह प्रसंग आता है, याने जैसे कारण सदा है तो कारणोंसे अभिन्न हुए व्यापार भी सदा है। फिर तो सदा कार्य होते रहना चाहिये।

अभिव्यक्तिवाद व सत्कार्यवादमें भी वस्तुव्यवस्था बनाते हुएमें प्रागभावकी मान्यताकी अनिवार्यता— व्यापारवान कारणोंसे व्यापारको अभिन्न मानते हुए यदि व्यापारोंका प्रागभाव न ना जाय तो इस प्रसंगमें यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि उन कारणोंसे अभिन्न व्यापार तो पहिले है नहीं। और उसे किया जाता है। और फिर व्यापारसे अभिन्न कारण नहीं किया जाता है वह तो अपनी रुचिसे बनाया गया सिद्धान्त है। कारणका व्यापार जब कारणसे अभिन्न मान लोगे तो व्यापारका प्रागभाव है तो कारणोंका भी प्रागभाव है। और, इस तरह जो सर्वथा दोषकी बात कही गई थी वह यथार्थ सत्सर्वथा दोषकी बात कही गई थी वह यथार्थ सत्य है। अब दूसरे पक्षके सम्बन्धमें और भी निरखिये कि यदि कारणोंके व्यापारोंका कारणोंसे एकान्ततः भेद माना जाय तो व्यापारवानका अनुपयोग रह गया। क्योंकि व्यापारमात्र से ही कार्य सम्पादक की कर्तव्यता ठीक बैठ जाती है। और यदि कारणसे व्यापार का अभेद मान लिया जोय तो इस अभेद एकान्तमें अभिव्यक्ति वाला प्रसंग आ जायगा कि चूंकि कारण भी पहिले है और कारणोंका व्यापार कारणोंसे अभिन्न माना है तो इसमें जैसे कारण पहिलेसे सत है उसी प्रकार अभेद भी पहिलेसे ही सत् रह गया। तब कारणोंसे व्यापारोंकी अभिव्यक्ति अनादिसे ही मान ली जायगी। इस कारण अभिव्यक्तिवादमें आविर्भाव तिरोभावकी व्यवस्था नहीं बनती।

प्रकृतिपरिणामवादकी असंगतता—जिस प्रकार शब्दको अभिव्यक्तिके

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रकरणमें शब्दकी व्यवस्था बनाना अशक्य है इसी प्रकार प्रकृतिका परिणमन शब्द घट पट आदिकको मान जाय तो वहाँ भी ये सारे ही प्रश्न उपस्थित होते हैं। वे प्रकृतवादी बतलायें कि परिणामी प्रधानके ये जो परिणाम हैं घट पट आदिक सो उस प्रधानमें अभिन्न हैं या भिन्न हैं ? यदि कथंचित भिन्न अभिन्नकी बात कहोगे तो यह तो स्याद्वादका अनुसरण है. अपने एकान्तके हठकी ओरसे कहा कि घट पट आदिक प्रधानके जो परिणाम हैं, विकार हैं वे प्रधानसे भिन्न हैं अथवा अभिन्न ? यदि कहो कि प्रधानके परिणाम प्रधानसे अभिन्न हैं तो फिर परिणाम बन ही नहीं सकता. क्यों कि उस प्रधानमें और परिणामको अभिन्न माना तो उन परिणामोंके क्रमसे वृत्ति हो नहीं सकती। वे शब्द घट पट आदिक क्रमसे बनें, पहिले मृतपिण्ड हो, फिर घट बने, फिर खपरियाँ बनें इस प्रकारके क्रम वाली वृत्ति प्रधानकी विवक्षामें नहीं बनती, क्यों कि वह परिणामी अर्थात् प्रधान तो अक्रम है याने सदा रहता है, और जब शाश्वत है तो प्रधानसे अभिन्न जो परिणमन हैं वे भी शाश्वत होंगे। अब उनमें क्रम कैसे बन सकता है ? यदि कहो कि प्रधानके परिणाम प्रधानसे भिन्न हैं तो घट पट आदिक प्रकृतिसे भिन्न हो गए तो ये घट पट आदिक प्रकृतिके परिणाम हैं यह नाम नहीं बन सकता। क्योंकि जब प्रधान निराला है और घट पट आदिक परिणाम न्यारे हैं तो सम्बन्ध नहीं सिद्ध हो सकता। जो अत्यन्त भिन्न पदार्थ हैं उनमें यह नहीं कहा जा सकता कि विन्ध्याचलका हिमालय है अथवा हिमालयका विन्ध्याचल है। क्योंकि उनका उपकार ही नहीं है, परस्परमें। नित्य प्रधान परिणामका उपकारक नहीं बन सकता, क्योंकि नित्य पदार्थमें क्रमसे अथवा युगपत् उपकारकपना सिद्ध नहीं होता। जो पदार्थ शाश्वत है वह तो सदा है। वह क्रमसे उपकारक न बनेगा और एक साथ सारे परिणामोंका उपकार करे तो इसमें जगत शून्य हो जायगा। तो नित्य प्रधान परिणामोंका उपकारक नहीं बन सकता और यह भी नहीं कह सकते कि परिणामोंसे प्रधान उपकार बन जायगा, क्योंकि यदि प्रधान परिणाम का करने वाला बन गया तो प्रधान अनित्य हो जायगा और साथ ही यह बात भी है कि परिणामोंके द्वारा यदि प्रधानका उपकार माना जाय अथवा कार्यमें सहायक माना जाय तो वही सब प्रश्न और दोष यहाँ बराबर आते हैं और इसमें अनवस्था दोष आता है क्योंकि अब जितने परिणाम हैं उतने ही उसके उपकार हो गए। जो कि प्रधानके द्वारा किए गए अब वे सारे उपकार यदि प्रधानसे भिन्न हैं तब तो यह उपकार यह परिणाम प्रधानमें है यह व्यपदेश ही नहीं हो सकता क्योंकि अत्यन्त भिन्न पदार्थोंमें सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। क्योंकि भिन्न पदार्थ अनुपकारक होते हैं और उपकारवान प्रधानका उन परिणामोंके द्वारा अथवा परिणामकृत उपकारके द्वारा परस्पर उपकार माना जाय, अन्य उपकार किए गए ऐसा माना जाय तो उन उपकारोंके सम्बन्धमें भी यही प्रश्न होगा कि वह उपकारान्तर इस उपकारसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? तो यों अनवस्था दोष आयगा, तब वह परिणाम यदि प्रधानसे अभिन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है तब जितने परिणाम हैं उतने ही प्रकारका प्रधान बन जायगा । क्योंकि प्रधानसे उन परिणामोंकी उपकारको भिन्न मान लिया और वे परिणाम हैं अनेक तो प्रधान भी अनेक बन जायेंगे अथवा प्रधान और प्रधानके विकार जब अभिन्न मान लिए गए तो वे सब उपकार भी प्रधान जैसे एक रूप ही हो जायेंगे । फिर ये घट पट आदिक अनेक तरहके पदार्थ जो दृष्टिगोचर होते हैं ये न होंगे । इस प्रकार प्रधानके उपकारकी स्थिति नहीं बनती, अतएव अनवस्था दोष आता है और अनवस्था होनेसे भोग्य प्रकृतिका अभाव हो जानेपर पुरुषमें भोक्तृत्वका अभाव होनेसे पुरुषका भी अभाव हो जायगा । याने जब प्रकृति और वे घट पट आदिक पदार्थ ये योग्य नहीं बन सकते तो भोक्ता कौन रहा ? तो पुरुष भी न रहा क्योंकि सांख्य सिद्धान्तमें पुरुषका लक्षण ही भोक्तृत्व कहा है । प्रधान तो करने वाला है और पुरुष भोगने वाला है । इस कारणसे प्रकृति तत्त्व और पुरुष तत्त्वमें अवस्थिति न बनानेसे अनवस्था दोष आता है।

पुरुषको भोक्ता व प्रकृतिको कर्ता माननेका आधार—इस प्रकरणमें थोड़ा इस ओर भी दृष्टिपात करिये कि सांख्य सिद्धान्तमेंनुयायियोंने पुरुषको भोक्ता माना है और प्रधानको कर्ता माना है । तो ऐसा माननेमें उनके किस विचारको समर्थन किया ? प्राय: यह तो देखा ही जा रहा है कि जन्म मरण सुख दुःख आदिक अनेक प्रकारके जो कुछ भी परिणमन किए जाते हैं वे सब कर्मोदयसे होते हैं । और कर्मोंका ही नाम प्रकृति भी है । यद्यपि सांख्य सिद्धान्तानुयायियोंने प्रकृतिका कोई अव्यक्त स्वरूप माना है लेकिन वह प्रकृति कर्म है और ज्ञानियोंको इसका अनुमान आगममें बोध होता है और विशिष्ट अवधिज्ञानियोंको इन कर्मोंका साक्षात् ज्ञान भी होता है, लेकिन वे कर्म सूक्ष्म हैं अतएव अव्यक्त भी कह दिए जायें तो कुछ अयुक्ति नहीं । तो प्रकृति कई कर्मने प्रकृतिके उदयसे सुख दुःख रागद्वेषादिक होते हैं अतएव इन सब परिणामोंका कर्ता निमित्त दृष्टिसे प्रकृतिको कहा जाता है, लेकिन प्रकृतिके निमित्तसे उत्पन्न हुए रागद्वेष सुख दुःखादिक भावोंको भोगने वाले पुरुष ही हैं, क्योंकि जो चेतन होगा सो ही भोगने वाला है अचेतन भोगने वाला नहीं बनता, ऐसी कुछ सदृशता देख करके एकान्तत: यह कह दिया गया कि पुरुष तो कर्ता होता ही नहीं वह तो मात्र भोक्ता होता है और प्रकृति भोक्ता होती ही नहीं, वह केवल कर्ता होती है यद्यपि यह बात एक मोटे रूपमें कुछ ठीक विदित होती है साधारण जनोंको किन्तु वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे निरखनेपर यह विदित होगा कि प्रत्येक पदार्थ अपने परिणामका कर्ता है जिसमें कि परिणमन होती है उस पर्यायका वह कर्ता है और परिणमन होना है वही उसका अनुभवन है । तो प्रत्येक पदार्थ अपनी पर्यायका कर्ता है और अपनी पर्यायका भोक्ता है । यह बात अचेतन पदार्थोंमें कुछ कठिनतासे समझमें आयगी किन्तु चेतन पदार्थमें विशेष स्पष्टतया समझमें आती है । जैसे भले ही प्रकृतिके निमित्तसे राग हुए सुख दुःख होते हैं लेकिन उस रूप परिणमने वाला कौन है ? पुरुष चेतन आत्मा

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो उपादान दृष्टिमे इन रागद्वेष सुखदुःखादिक भावोंका करने वाला प्रधान ही है और उनको भोगने वाला तो चेतन है ही। यह तो वादी प्रतिवादी दोनोंको सम्मत है। तो यों सोच करके पुरुषको भोक्ता और प्रकृतिको कर्ता सांख्यसिद्धान्तानुयायियोंने माना है।

प्रागभावके माने बिना अभिव्यक्तिवाद व सत्कार्यवादमें भी वस्तु व्यवस्थाकी अशक्यता—यहां प्रकरण यह चल रहा है कि घट पट आदिकको पहिलेसे ही सत् माना जाय और उसकी अभिव्यक्ति होती है और वे प्रधानके परिणाम हैं यह सब मानना युक्तिसंगत नहीं हो सका है और इस तरह सांख्य सिद्धान्तके अनुसरणके द्वारा भी प्रधानात्मक समस्त घट पट आदिक पदार्थोंका अभिव्यंगपना मानना युक्त नहीं है। जैसे कि मीमांसक सिद्धान्तमें शब्दको आकाशका गुण मानकर उसे सुननेसे योग्य बनानेके लिए अभिव्यक्तिवादकी कल्पना की है और वह कल्पना संगत न बन सकी। इस प्रकार केवल एक प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्त्वोंका ही सत्त्व मानकर जो प्रकृतिके विकार महान होकर शब्द रूपादिक मानते हैं और उस को आविर्भाव तिरोभाव रूपसे मानते हैं, तो शब्दकी तरह उसकी भी अभिव्यक्ति प्रमाणसिद्ध नहीं होती है। क्योंकि सर्वदा जब प्रागभावका लोप कर दिया तो कार्यकी अभिव्यक्ति भी अनादि बन बैठेगी। जैसे कि चार्वाक लोग पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुको कार्यद्रव्य मानते हैं और प्रागभाव नहीं मानते तो जैसे उनके सिद्धान्तमें यह दूषण आता है कि फिर तो ये पृथ्वी आदिक समस्त कार्यद्रव्य अनादि हो जायेंगे। इस प्रकार सांख्य और मीमांसक जो कि अभिव्यक्तवाद मानते हैं कि चीज सब पहिले से ही है। कारणोंके द्वारा केवल उसकी अभिव्यक्ति की जाती है। तो उनकी यह अभिव्यक्ति भी प्रागभावके न माननेपर अनादि बन बैठेगी। अतः कार्यद्रव्यवादी हो अथवा अभिव्यक्तिवादी जो प्रागभावको न मानेगे उनके यहाँ परिणामोंकी व्यवस्था नहीं बन सकती।

घटपटादिके कार्यद्रव्यत्वकी सिद्धि—इस प्रसंगमें सांख्य कहते हैं कि कार्य द्रव्य तो असिद्ध ही है। कार्य द्रव्य प्रमाणसे सिद्ध नहीं तब ग्रन्थकार उस परिणामको अनादि जबरदस्ती कैसे समर्थन करता है। जब कार्यद्रव्य है ही नहीं तब हमारे प्रधानके उपकार कैसे अनादि बन सकेंगे? जो कार्यद्रव्य मानें उनके यहाँ ही यह दूषण दिया जा सकता है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि प्रमाणके बलसे जब द्रव्यमें कार्यपना समर्थित कर दिया गया, तब उन्हें कार्यद्रव्य मानकर या कार्यद्रव्यकी तरह तरह उन्हें समझकर यह दूषण देनेमें कोई बाधा नहीं है। तब सांख्य पूछते हैं कि इन द्रव्योंमें कार्यपना कैसे लादा गया है? जो प्रागभाव नहीं मानते ऐसे सांख्यसिद्धान्तानुयायियोंके प्रति पृथ्वी आदिकमें कार्यपना नहीं लादा जा सकेगा। तो उत्तरमें कहते हैं कि सुनो! घट पट आदिक कार्य हैं इसकी अनुमानसे भी सिद्धि होती है। उसका प्रयोग इस प्रकार है कि घटपट आदिक कार्य हैं क्योंकि ये अपेक्षितपर व्यापार हैं याने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

घट पट आदिक अपने स्वरूप लाभ करनेके लिए पर पदार्थके व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं। जैसे कि कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिकके व्यापार न हों तो घटका आत्मलाभ नहीं होता। जुलाहा, तंतु, वेमी आदिकका व्यापार न हो तो पटकी निष्पत्ति नहीं होती। जो कार्य नहीं होता वह अपेक्षितपर व्यापार नहीं बनता जैसे कि आकाश! आकाश कार्य नहीं है तो आकाशमें किसी भी परकी जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन कार्य तो अपेक्षितपर व्यापार है घट पट आदिककी निष्पत्तिमें कुम्हार आदिकके व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं, यह कथन असिद्ध नहीं है क्योंकि वे कभी होते कभी नहीं होते। इससे यह सिद्ध है कि ये दूसरेके व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं, इस कारण ये सब पदार्थ कार्य हैं और प्रागभाव न माननेपर ये सब कार्य अनादि बन जायेंगे, यह दोष बराबर व्यवस्थित है।

पटादिकोंके कार्यत्व साध्यमें प्रयुक्त अपेक्षित परव्यापारत्व हेतुकी निर्दोषताका कथन—घटादिक पदार्थ व्यंग्य नहीं हैं किन्तु कार्य हैं यह बात इस अनुमानसे सिद्ध की जा रही है। अनुमान बनाया गया है कि घट आदिक कार्य हैं क्योंकि ये परके व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं तो इस अनुमानमें जो साधन दिया है कि घट आदिक पदार्थ परपदार्थके व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं यह साधन असिद्ध नहीं है क्योंकि घट आदिक पर व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं यह बात कादाचित्क होनेसे सिद्ध होती है। यदि घट आदिक पदार्थ परके व्यापारकी अपेक्षा न रखते होते तो कादाचित्क न होते। आकाशकी तरह ध्रुव शाश्वत सर्वदा पाये जाने वाले होते। चूँकि घट आदिक कादाचित्क हैं अतः सिद्ध है कि ये परके व्यापारकी अपेक्षा रखते हैं इससे सिद्ध है कि घटादिक पदार्थ कार्य है। यहां शंकाकार कहता है कि घटादिक तो परके व्यापारकी अपेक्षा नहीं रखते, किन्तु घटादिकका आविर्भाव परके व्यापार की अपेक्षा रखते हैं। और आविर्भाव ही कादाचित्क है याने घटादिक पदार्थोंका प्रकट हो जाना यह आविर्भाव कादाचित्क है और परके व्यापारकी अपेक्षा रखता है, पर घटादिक पदार्थ परके व्यापारकी अपेक्षा नहीं रखते और न कादाचित्क है। शंका समाधानमें यह पूछा जा रहा है कि इस आविर्भावका अर्थ क्या है? जो आविर्भाव परके व्यापारकी अपेक्षा रखता है और जिसके आविर्भाव किए गए हैं वह पदार्थ परके व्यापारकी अपेक्षा नहीं रखता किन्तु अनादि अनन्त सत् है। तो ऐसे आविर्भावका अर्थ क्या है? क्या यह अर्थ है कि पहिले न पाये जाने वाले पदार्थोंका व्यञ्जकोंके व्यापारसे उपलब्धि हो जाना जैसे कि घड़ा पहिले न था, किन्तु चक्र दंडादिकके व्यापारसे घड़ेकी उपलब्धि हो गयी। यों क्या यह अर्थ है कि पहिले न पाये जाने वालेका व्यञ्जकोंके व्यापारसे उपलम्भ हो जाना यदि यह अर्थ है तो इस प्रसंगमें यह कितने आश्चर्यकी बात है कि आविर्भावको तो पहिले असत् मान लिया और व्यञ्जक कारणोंके द्वारा किया गया यह मान लिया। पर घटादिक पहिले असत् हैं और कारणोंके द्वारा किए जाते हैं यह नहीं माना जा रहा, सो यह कुछ

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथन अपनी रुचिसे कर देना मात्र है। यदि उस आविर्भावका भी यही ढंग मान लेते हो कि वे सब पहिले तिरोहित थे थे व भी आविर्भाव, पर उस आविर्भावका ही कारणोंके द्वारा अन्य आविर्भाव किए जाते हैं तब तो जो दूसरा आविर्भाव मानते हैं वे भी पहिले तिरोहित थे और उसको भी अन्य कारणोंके द्वारा आविर्भूत करना चाहिए फिर उस तृतीय आविर्भूतको आविर्भूत चौथा मानना होगा, यों अनवस्था हो जानेसे फिर घटादिकका आविर्भाव कभी भी न हो सकेगा। और पहिले तो घटादिकके आविर्भावकी परम्परा ही तो सिद्ध हो ले।

कारणसे आविर्भावको आत्म लाभ माननेका समाधान—यहाँ शंकाकार कहते हैं कि आविर्भावका अर्थ है उपलम्भ होना, प्राप्त हो जाना, सन्निधिमें आ जाना ऐसे उपलम्भभूत आविर्भावका उपलम्भरूप अन्य आविर्भावकी अपेक्षा नहीं होती। तब अनवस्था दोष आनेका अवसर न रहेगा। तो समाधानमें कहते हैं कि फिर तो आविर्भावका कारणसे आत्मलाभ मान लेना चाहिए। इतनी बात तो माननी ही पड़ेगी कि देखो—आविर्भाव पहिले न था और वह आविर्भाव स्वयं अन्य आविर्भावकी अपेक्षा करके हो गया। चलो यों ही हो गया सही। लेकिन यह तो निर्णय हो गया कि कारणसे आविर्भावका आत्मलाभ हुआ है और वह आविर्भाव पहिले न था तब इन शब्दोंसे यही सिद्ध हुआ कि आविर्भाव कार्य है व्यंग्य नहीं है और इसी तरह घट पट आदिक पदार्थ भी कार्य ही हैं व्यंग्य नहीं है क्योंकि आत्मलाभके सम्बन्धमें पर व्यापारकी अपेक्षा रखनेकी अविशेषता दोनों जगह है। जैसे कि आविर्भाव परव्यापारकी अपेक्षा रखकर ही हुआ, कारणसे हुआ, ऐसे ही घट पट आदिक पदार्थ भी परव्यापारकी अपेक्षा रखकर अपना आत्मलाभ पा सकें। तो यों परव्यापारकी अपेक्षा आविर्भावमें भी है, घट पट आदिक पदार्थोंमें है इसलिए ये सब कार्य कहियेगा, ऐसा नहीं है कि घट पट आदिक पदार्थोंका आत्मलाभ ही नहीं होता। जिनका आत्मलाभ नहीं होता उनकी उपलब्धि कभी भी की नहीं जा सकती। बिना स्वतत्र बने, बिना स्वरूपकी प्राप्ति हुए उपलब्ध कैसे कुछ हो जायगा? यदि बिना आत्मलाभ हुए ही उपलब्ध होने लगे कुछ, तो खरविषाण उपलब्ध होने लग जायें। उनके आत्मलाभकी तो अब आवश्यकता बता नहीं रहे तो इस प्रकार घट पट आदिक पदार्थोंको सांख्य सिद्धान्तमें प्रधानका परिणामरूप भी माने तो भी कार्यद्रव्य समर्थित ही होगा। प्रधानका परिणाम यह बात अलग विचारणीय है। इस समय तो यह कहा जा रहा कि प्रधानके परिणामरूपसे भी माने गए घटादिक पदार्थ कार्यद्रव्य ही सिद्ध होते हैं और उन घटादिक कार्योंका प्रागभाव न माननेपर घटादिक पदार्थ अनादि हो बैठेंगे और जब सभी पदार्थ अनादि सिद्ध हो गए तो कारणोंके व्यापारका अब कुछ प्रयोजन न रहा। लेकिन ऐसा है कहाँ दुनियामें व्यवस्था कारणोंके व्यापारके माध्यमसे की जा रही है अतएव यह दूषण बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रागभावके न माननेपर कार्य, अनादि हो जायगा आविर्भाव माने तब, प्रधानका परिणाम माने तब कार्यद्रव्यको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

श्रेणीसे बाहर नहीं होते ये सब।

अभिव्यक्तिवादमें तिरोभाव नामान्तर देकर प्रागभावका ही समर्थन जो लोग कार्यद्रव्य शब्द रख करके नहीं कहना चाहते, तिरोभाव शब्द ही जिनको इष्ट है अथवा तिरोभाव मानते हैं तो भले ही वे तिरोभाव शब्दको मानें, लेकिन तिरोभावका भी तो वही अर्थ हुआ जो प्रागभावका अर्थ है। पहिले वस्तुका तिरोभाव था अर्थात् वस्तुका अभाव था तो प्रागभाव तो सिद्ध होता ही है। प्रागभावका ही तिरोभाव ऐसा एक नया नाम रख लेनेपर हम कोई दोष नहीं देते। रख लो नाम। नामका कुछ प्रयोजन नहीं, किन्तु भाव यथार्थ आना चाहिए। याने जो अवस्था है, व्यक्तरूप है, परिणमन है, जो आविर्भाव हुआ है वह पहिले न था, यही प्रागभावका मतलब है तो तिरोभावका प्रागभाव नामान्तर बन गया। घटका तिरोभाव है याने घटका प्रागभाव है। जैसे कि उत्पादका दूसरा नाम आविर्भाव रख लिया अब घटका आविर्भाव हो गया याने उत्पाद ही हो गया तो जैसे उत्पादका नामान्तर आविर्भाव ? इस प्रकार तिरोभावको नामान्तर प्रागभाव है। तो नाम रख लेने मात्रसे आपत्ति नहीं है। प्रागभाव सबका मानना ही पड़ेगा। जो जो पदार्थ व्यक्त होते हैं, प्रकट होते हैं, निष्पन्न होते हैं उनका उस रूपमें पहिले अभाव था, इसमें कोई बाधा नहीं हो सकती। और, यदि कोई बाधा देता है, प्रागभाव नहीं मानता है तो उसके सिद्धान्त में कार्यद्रव्य अनादि बन बैठेगा। तो इस तरह मीमांसकोंके यहां और सांख्य सिद्धान्त में भी ये दोनों दूषण आते हैं। जैसे मीमांसकोंने शब्दको शाश्वत माना है और तालू आदिकके व्यापारसे शब्दका आविर्भाव कहा है लेकिन यह तो मानना ही पड़ा कि वह शब्द सुननेमें आया ? इसके रूपसे पहिले था नहीं। तो शब्दका प्रागभाव न मानने पर वह अनादि बन बैठेगा। यों ही घट, पट, रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द इन सब पदार्थोंका प्रागभाव न माननेपर ये भी अनादि बन बैठेंगे। और जब यह प्रसंग आ गया कि सब कुछ अनादि सिद्ध है ऐसा जगतमें कुछ नहीं है जो पहिले न था अब हुआ है सर्वथा सर्व कुछ अनादि सिद्ध है तब फिर पुरुषोंको उसके उत्पन्न करनेके लिए व्यापार करना अनर्थक हो जायगा। कुम्हार मिट्टी लाये और दड चक्र चलाये, इतना परिश्रम करे, इतना जो कुछ कारणोंका योग किया जाता है, इस व्यापारकी अपेक्षा रखी जाती है वह यह सिद्ध करता है कि घट आदिक कार्य हैं, अन्यथा समस्त व्यापार अनर्थक हो जायेंगे।

प्रागभाव न माननेपर तात्वादिव्यापारसे पहिले शब्दके अश्रवणत्व की असंभवता—अब और भी सुनो—यदि प्रागभाव नहीं मानते हैं अर्थात् पदार्थकी वर्तमान दशासे पहिले उसका अभाव नहीं मानते हैं, तो जब विनाश नहीं माना तो यह बतलावो कि शब्दमें ही अश्रवण किसके द्वारा किया गया ? याने शब्द तो सुनाई नहीं दे रहे हैं, कोई बोले—तालू आदिकका व्यापार करे तब ना वचन सुनाईमें देते

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं तो उससे पहिले ये शब्द जो सुनाई नहीं दे रहे, उनका जो अश्रवण बन रहा सो यह अश्रवण किसने किया ? यदि कहो कि अपने आवरणने किया याने शब्दका जो आवरण है उस आवरण स्वरूपने शब्दको अश्रुत बना दिया तो उत्तरमें कहते कि यह बात सारहीन है। क्योंकि आवरण स्वरूपने यदि शब्दको अश्रवण बना दिया तो यह बतलावो कि शब्द स्वरूपका कुछ खण्डन करके बनाया है या शब्दका बिना कुछ खण्डन किए उसमें कुछ हेर फेर किए बिना ही उसका अश्रवण बनाया है ? यदि कहो कि शब्द स्वरूपका खण्डन किए बिना ही अश्रवण बनाया है तो यह बात कौन मान सकेगा कि उसका किसी भी रूपमें खण्डन निराकरण न हो और उसका आवरण कहलाये, यह हो नहीं सकता। तो तब दूसरा बात माननी होगी कि उसका आवरण करने वाली जो वायु विशेष है वह आवरण है और शब्दस्वरूपको खण्डित करता हुआ है। तो यों आवरण माननेपर शब्दमें स्वभावका भेद पड़ जायगा। याने शब्द पहिले अश्रवण स्वरूपसे थे अब श्रवण स्वरूपसे हुए तो शब्द दो प्रकारके हैं, अश्रवणत्व विशिष्ट और श्रवण धर्मविशिष्ट। और, वहाँ दो स्वभाव ये आ गए आवृत्त स्वभाव और अनावृत्त स्वभाव। सो आवृत स्वभाव और अनावृत स्वभाव इन दोनों का लक्षण बिल्कुल भिन्न भिन्न है। इसमें अभेद नहीं बन सकता कि ये दोनोंके दोनों धर्मी स्वभाव एक वस्तुमें, शब्दमें आ जायें। और, कभी यह कह बैठें कि शब्दमें दो स्वभाव तो हैं—आवृत भी हैं, अनावृत भी हैं लेकिन उन दोनोंका अभेद है तो उन दोनों विलक्षण स्वभावोंका अभेद मान लेनेपर शब्दकी या तो श्रुति ही रहे या अश्रुति ही रहे याने शब्द सुननेमें आते हैं यह मानते हो तो यही यही मानियेगा और शब्द सुननेमें नहीं आते ऐसा मानते हो तब भी यही यही मानियेगा क्योंकि शब्दके दो विलक्षण स्वभावोंमें अभेद स्वीकार किया जा रहा है तो जब आवृत स्वभाव और अनावृत स्वभावमें भेद न रहा तब पुरुष व्यापारसे पहिले शब्दकी अश्रुति है याने शब्द सुननेमें नहीं आता है और पुरुष व्यापारके अनन्तर श्रुति हो जाता है यह विभाग अब नहीं बन सकता। जब शब्दमें विलक्षण स्वभावोंका अभेद मान लिया, एकात्मकपना मान लिया तो यह विभाग नहीं बन सकता।

दृश्य स्वभावके खण्डन बिना आवृतताकी असिद्धि — अब यहाँ कहते हैं शकाकार कि देखिये ! जैसे अधकार घटादिक पदार्थोंका आवरण करता है लेकिन घटादिकके स्वरूपका खण्डन न करता हुआ अन्धकार घटादि पदार्थोंका आवरण करता है उसी प्रकार शब्दका भी आवरण होता है और शब्दको खण्डित न करते हुए हो जाता है। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना मिथ्या है, जैसे वायुके द्वारा शब्द का खण्डन हो जाता है इसी प्रकार कारणोंके द्वारा घटादिक पदार्थोंके स्वभावका भी खण्डन हो जाता है। जरा दृष्टिको सम्हाल कर देखो ! सर्वथा कुछ बात नहीं कही जा रही। देखो ! अधकारमें वे घटादिक पदार्थ अब दृश्य तो नहीं हो रहे। तो घटादिक पदार्थोंमें पहिले जो दृश्यस्वभाव पड़ा हुआ था उस दृश्य स्वभावका खण्डन हो गया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तब ना अंधकारका आवरण माना गया है। सभी पदार्थ परिणामी हुआ करते हैं। तो यद्यपि घट पूराका पूरा रखा हुआ है और अंधकार आ जानेसे घट अदृश्य हो गया है तो अब कथंचित् घटके स्वभावका खण्डन हो गया। तो घट जिस दृश्य स्वभावको लिए हुए था उस दृश्य स्वभावका निराकरण हो गया। अगर दृश्य स्वभावका निराकरण न हो तब घट दिख जाना चाहिए पर दिखता नहीं है। तो इससे सिद्ध है कि अंधकारके विस्तारोंमें घटादिक पदार्थोंके दृश्य स्वभावका खण्डन हुआ है और तब ही अंधकार आवरण कहलाता है। सभी पदार्थ अनेक रूपोंसे परिणामी हुआ ही करते हैं तो घट अनेक प्रकारोंसे परिणत हुआ करते हैं। सो यहाँ यह सिद्ध हुआ कि आवरण होनेपर मानना ही होगा कि आवृत पदार्थके किसी रूपका खण्डन हो गया है। देखिये! उस ही पदार्थमें आवरणपना माना जाता है जो दृश्य स्वभावका खण्डन कर देता है। अंधकारमें जो घटादिक पदार्थ नहीं दिख रहे तो वहाँ अन्धकारके द्वारा भी घट पट आदिक पदार्थोंके किसी स्वभावका खण्डन हुआ है। यदि यह मानोगे कि अंधकारके द्वारा भी घटादिक पदार्थोंका खण्डन नहीं होता उसके दृश्य स्वभावका निराकरण नहीं होता तब फिर अंधकारसे पहिले जिस तरह घटादिककी उपलब्धि होती थी उस प्रकार अब उपलब्धि क्यों नहीं होती? क्योंकि अब तो यह मान लिया कि अंधकारके द्वारा घट आदिक पदार्थोंके उपलब्धपनेका खण्डन नहीं होता। इससे सिद्ध है कि चूँकि घट आदिक पदार्थ अंधकारमें उपलब्ध नहीं होते सो अन्धकारके द्वारा घटादिक पदार्थोंका दृश्य स्वभावरूपसे खण्डन हुआ है।

कार्यकारणभाव न माननेपर शब्दमें श्रुतपनेकी असिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहते हैं कि शब्दके सम्बन्धमें बात यह है कि पुरुषके व्यापारसे पहिले और पुरुषके व्यापारके पश्चात् यद्यपि शब्द अखण्ड स्वभाव रूप ही है। लेकिन उसकी जो श्रुति नहीं होती अर्थात् सुननेमें शब्द जो नहीं आता उसका कारण यह है कि शब्द सुननेमें आयें इसके लिए सहकारी कारणकी अपेक्षा रहती है। सहकारी कारण है तालु आदिक। उनका व्यापार बने तब सुननेमें आये। शब्द तो अखण्डित स्वभाव ही है। अर्थात् उसमें आवरणस्वभाव पड़ा है और वह बराबर शाश्वत है। जब सहकारी कारणकी विकलता होती है, तालु आदिकके व्यापार नहीं हो रहे हैं उस समय शब्द अपने ज्ञानको उत्पन्न करनेमें नहीं आ रहा अर्थात् शब्दकी श्रुति नहीं बन रही है, इस शंकापर समाधानमें पूछते हैं तो यह बतलावो कि यह शब्द अपने विषयका ज्ञान करनेमें समर्थ या असमर्थ है। याने शब्द स्वविषयक ज्ञान करनेमें समर्थ है या असमर्थ? यदि कहो कि स्वविषयक ज्ञान करनेमें समर्थ है शब्द तो जो समर्थ है स्वविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति करनेमें फिर तालु आदिक अन्य कारणोंकी अपेक्षा न होगी। यदि कहो कि शब्द अपने विषयक ज्ञान करनेमें असमर्थ है तो यह बतलावो कि उस समय सहकारी इन्द्रिय और मन जो कि व्यापार कर रहे हैं तो वे सहकारी इन्द्रिय और मन क्या इस शब्दकी असमर्थताका खण्डन करते हैं या नहीं करते हैं? यदि कहो कि तालु आदिक अथवा

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रिय मन आदिक ये स्व विषयक ज्ञान करनेमें असमर्थ शब्दके असामर्थ्यका खण्डन करते हैं तब तो शब्दके स्वभावकी हानि हो गई क्योंकि असामर्थ्य और शब्द ये चूंकि धर्म धर्मी हैं अत: असामर्थ्यका खण्डन हुआ तो शब्दका ही खण्डन समझिये । और, यदि कहो कि वह सहकारी कारण ही वह क्या रहा जो अकिञ्चित्कर है ? जो दोषका, असामर्थ्यका निराकरण नहीं करता वह सहकारी कारण ही क्या रहा ? यदि शब्दके असामर्थ्यका याने स्वविषयक सम्वेदन करानेमें जो असमर्थ है उसका यदि खण्डन नहीं होता तो सहकारी कारण ही क्या रहा ? और खण्डित होता है तो स्वभाव हानि होती है । क्योंकि स्वभाव और स्वभाववानमें अभेद है । यदि कहोगे कि स्वभाव और स्वभाववानमें भेद है तब फिर यह असामर्थ्य शब्दकी है यह व्यपदेश ही नहीं बन सकता, क्योंकि बताओ कि शब्द और असामर्थ्यमें परस्परमें उपकारभाव है या नहीं । यदि कहो कि शब्द और असामर्थ्यमें उपकारभाव नहीं है, परस्पर अनुपकारक है तो जब अनुपकारक रहे तब फिर किसका कौन ? सम्बन्ध ही न बन सकेगा । यदि कहो कि स्वविषयक ज्ञानकी असामर्थ्यने शब्दका उपकार किया तो वह उपकार शब्दसे अभिन्न है या भिन्न ? यदि कहो कि अभिन्न है तो उपकार क्या किया ? शब्द ही किया । तब शब्द नित्य न रहा यदि कहो शब्दसे उपकार भिन्न है तो फिर उसका सम्बन्ध नहीं बन सकता, क्योंकि उपकार ही न रहा । यदि कहो कि अन्य उपकार मान लिया जायगा तो वही प्रश्न फिर आता । यों अनवस्था दोष होता है । जिस तरह कि शब्दको प्रधानका परिणमन माननेपर जो जो दोष आते थे वे दोष सब यहाँ भी हैं ।

शब्दको नित्य और व्यापी माननेपर उसके श्रवण किये जानेकी अशक्यता —और, भी सुनो यह बताओ कि वे समस्त वर्ण नित्य सर्वगत हैं या उससे विपरीत हैं ? इन दो पक्षोंमें यह दूसरा पक्ष तो आपने स्वयं माना ही नहीं है । अब रहा नित्य व्यापी । तो वर्ण जब व्यापी हैं और नित्य है तब फिर उनका क्रमसे सुनना नहीं बन सकता, क्योंकि जो नित्य है और व्यापी है उसमें देश और कालका क्रम नहीं बन सकता । जब व्यापी है वर्ण इस लोकमें सब जगह पहिलेसे ही भरा हुआ है तो भरे हुएमें अब देशका क्रम क्या ? यहाँ शब्द न था, यहाँ आ गया, यह क्रम कैसे हो सकता ? यदि नित्य मानता है तो शाश्वत् ही है शब्द । अब इस समयमें न था और इस समय हो गया यह क्रम कैसे बन सकता है ? शंकाकार कहते हैं कि शब्दकी अभिव्यक्तिके प्रतिनियमसे उनका क्रमसे सुनना बन जायगा । जैसे गौ बोला तो पहिले गकार कहा, फिर उसके बाद औकार कहा, तो यह नियम अभिव्यक्तिका पड़ा हुआ है, इसमें क्रमसे सुनना बन जायगा । तो उत्तरमें कहते हैं कि इस पक्षमें भी अव्यवस्था है । देखिये ! जिसका समान समय है अर्थात् जितने भी वर्ण हैं वे सब स्रोत्र इन्द्रिय द्वारा सुननेमें आते हैं । तो सारे ही वर्णोंका करण तो समान ही रहा । ऐसे उन नित्य सर्वगत वर्णोंकी, अभिव्यक्तिका भी नियम नहीं बन सकता, क्योंकि जब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्य और व्यापी वर्ण है तब तो सब जगह सब समय शब्दोंका एक साथ सुनना बनेगा। तब वह संकीर्ण हो जायगा। कुछ भी एक बात न रहेगी। देखिये! वर्णों का सुननेमें जो कारण है, साधन है वह समान है। वह है श्रोत्र। जैसे कि नील पीतादिक रूप, विशेषोंका कारण है समान! उनके देखनेमें कारण पड़ता है चक्षु। ऐसे ही समस्त वर्णोंका सुननेमें कारण है श्रोत्र। तब उन वर्णोंका यदि एक भी वर्ण की अभिव्यक्ति किसी तालु आदिकका व्यापार हुआ तब उस समय समान देश और समान कालमें रहने वालेकी अभिव्यक्तिका ही नियम कैसे रहेगा? नीलादिक पदार्थोंकी तरह। जैसे कि चित्र विचित्र नाना रूपोंके ग्रहण करनेके समय मनुष्य नाना वर्णोंको एक साथ ग्रहण कर लेते हैं उस ही प्रकार इन शब्दोंका भी एक साथ ग्रहण हो बैठेगा। किसी भी समय एक जगह किसी भी अवसरमें समस्त वर्णोंकी अभिव्यक्ति हो जायगी, क्योंकि वे सब स्वरूपसे तो व्यक्त मान ही लिए गए। कैसे? शब्दका स्वरूप है व्यापी और नित्य। नित्य और व्यापी शब्दोंमें किसी भी शब्दका अगर प्रकटीकरण होता है तो उस ही समय सर्व देश सर्व कालके वर्णोंका प्रकटीकरण हो जायगा। यदि कहो कि उन वर्णोंकी अभिव्यक्ति खण्डशः होती है, भागोंमें होती है। वर्णका कोई भाग व्यक्त हो गया और कोई भाग व्यक्त न हुआ तो इसमें एक साथ सुननेमें आनेका दोष न आयगा। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो वर्णोंमें व्यक्त और अव्यक्तका भेद हो गया। अब शब्द एक स्वरूप न रहे और यों प्रत्येक वर्णमें भी अनेकपनेकी आपत्ति आयगी। वर्णस्वरूपमें वह एकस्वरूप है लेकिन व्यक्त और अव्यक्तके रूपसे वह अनेक बन गया तब स्वभाव एक न रहा। यदि कहो कि सर्वात्मक रूपसे ही शब्दकी अभिव्यक्ति होती है याने वर्णोंकी खण्ड-खण्डरूपमें अभिव्यक्ति नहीं है, किन्तु सर्वरूपसे है तब तो समस्त देश, समस्त कालमें रहने वाले प्राणियोंके प्रति वे सब वर्ण अभिव्यक्त हो गए फिर सब ही जगह सब समय सब जीवोंको संकीर्ण श्रुति क्यों न हो जायगी? याने एक कल-कल मात्र ही रह जायगा, कोई बात सुननेमें न आ सकेगी।

उत्पत्तिवादमें शब्दके श्राव्य होनेके अभावका अप्रसग – यहां शंकाकार कहता है कि एक साथ सुननेमें आ जाय, क्रमसे सुनना न बने यह दोष तो उत्पत्तिपक्ष में भी दिया जा सकता है। वहां भी यह कहा जा सकेगा कि जिसका समान उपादान कारण है और देश काल समान है और सहकारी कारण भी समान है तो उन वर्णों की उत्पत्ति माननेपर उस देश कालमें रहने वाले समस्त पुरुषोंको जिनको कि सहकारी कारण भी सब मिले हुए हैं क्यों न संकुल श्रुति बन जायें? याने कल कलमात्र ही सुनते रहें, क्या बोले गए अलग-अलग वचन ये कुछ भी सुननेमें न आयें यह बात उत्पत्तिपक्षमें भी क्यों न बनेगी? अथवा क्रमसे सुननेका विरोध क्यों न आयगा? इस शंकापर समाधानमें कहते हैं कि उत्पत्तिके प्रसंगमें पद्धति यह है कि वक्ता, श्रोता का जो विज्ञान है, जो कि शब्दके कारण और कार्य हैं उनके क्रमवृत्तिकी अपेक्षा रख-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कर शब्दरूप परिणमने वाले पुद्गलकी क्रमसे उत्पत्ति और जानकारीमें कुछ भी विरोध नहीं आता है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि शब्दोंको रचने वाले पुद्गल समान हैं। और, देश कालमें रहने वाला उपादान तथा सहकारी इन्द्रिय और बहिरंग तालु आदिक करण साधन ये सब होनेपर भी वक्ताका ज्ञान वर्णोंकी उत्पत्तिमें अतरंग सहकारी कारण है और उस विज्ञा में है क्रम तो उस अन्तरङ्ग सहकारी कारण के क्रमकी अपेक्षा करके क्रमसे उत्पत्ति होनेमें उन परिणमनशील भाषावर्गणाके पुद्गलोमे क्रम बननेका कोई विरोध नहीं है, क्योंकि सभी जगह कार्योंका जो क्रम बनता है वह कारणोंके क्रमके अनुसार होता है। तब परिणमनशील भाषावर्गणाके पुद्गलों में क्रमवृत्ति होनेमें विरोध नहीं किन्तु जहांपर शाश्वत अपरिणामी ही माने गए हैं शब्द वहां ही क्रमोत्पत्तिका विरोध हो सकता है। और, इस ही प्रकार चूँकि श्रोताका विज्ञान शब्दका कार्य है तो उसके क्रमकी अपेक्षा रखकर वर्णोंके क्रमकी जानकारी बननेमें भी किसी भी प्रकारका दोष नही आता। फलभूत जितनी भी जानकारी है उनका क्रम प्रमाणक्रमके अनुसार होता है, किन्तु सतत ही अपरिणामी पदार्थके और आत्माके ज्ञानका क्रम बननेमें विरोध होता है इसलिए स्याद्वादियोंके यहाँ शब्दोंका बनना एक साथ बने यह दोष नहीं आता। शब्द पर्यायकी उत्पत्ति मानने वाले स्याद्वादियोंके यहां समस्त शब्दोंकी श्रुति संकुल अर्थात् कल–कल मात्र हो जानेका प्रसंग नही आता. क्योंकि उत्पत्तिके सिद्धान्तमें उसके कारणोंमें क्रम होनेके कारण क्रम सिद्ध हो जाता है किन्तु जो लोग शब्दको नित्य सर्वव्यापी मानते हैं उनके यहां यह क्रम मानना घटित नहीं होता। न तो वर्णोंकी उत्पत्तिका ही क्रम बन सकता है और न वर्णोंके ज्ञानके ही क्रम बन सकता है इस कारण क्रमसे उत्पत्ति और प्रतिपत्ति होनेसे सिद्ध होता है कि वर्ण सर्व सर्वव्यापी नहीं हैं और नित्य भी नहीं हैं।

प्रत्यभिज्ञान हेतुसे शब्दके नित्यत्वकी सिद्धिका अभाव— शंकाकार कहते हैं कि वर्ण तो नित्य ही है प्रत्यभिज्ञान होनेसे आत्मा आदिककी तरह। जैसे वर्णोंके सम्बन्धमें यह ज्ञान होता है कि यह वही वर्ण है जिसे कल सुना था। सो एकत्व नहीं होता वर्णोंमें तो प्रत्यभिज्ञान कैसे बने ? जैसे कि आत्माके सम्बन्धमें प्रत्यभिज्ञान बनता है कि यह वही आत्मा है जिसे कल देखा था. अन्यत्र देखा था। तो आत्माके सम्बन्धमें प्रत्यभिज्ञान तब ही तो बना जब कि वह नित्य है। तो वर्णोंमें भी प्रत्यभिज्ञान बनता है। इससे सिद्ध है कि वर्ण नित्य है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रत्यभिज्ञान हेतु देकर वर्णोंमे जो नित्यत्व साध्य बनाया है इस अनुमानमें प्रत्यभिज्ञान नामका हेतु विरुद्ध है क्योंकि ऐसी भी घटनायें हैं कि जहाँ प्रत्यभिज्ञान तो होता है, पर नित्यता नहीं है। जैसे कि क्षणिक कोई दृश्य है। जैसे नृत्यकालमें रोज उस ही तरहका नृत्य कार्य करता आया है. उस ही तरह पैरका फेंकना, मुहं गर्दनका चलाना, हाथकी कला दिखाना आदि, वही बात रोज करता है तो प्रत्यभिज्ञान होता है देखो — यह वही नाच है जो कल हुआ था। तो प्रत्यभिज्ञान होनेपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी उस अङ्गविक्षेपमें नित्यता तो नहीं है। तो क्षणिक भी हैं अङ्गविक्षेप आदिक तो भी उनमें प्रत्यभिज्ञान हो रहा है। अतः प्रत्यभिज्ञान नामक हेतु विरुद्ध हो गया तब इस ही पद्धतिसे बुद्धियोंके साथ भी यह हेतु व्यभिचारी है यदि कि इस प्रत्यभिज्ञान नामक हेतुका बुद्धि और क्रियामें व्यभिचार होता है। जैसे कि क्रियामें प्रत्यभिज्ञान लगता है लेकिन नित्यत्व नहीं है इसी प्रकार इन बुद्धियोंमें भी प्रत्यभिज्ञान हेतु घटित होता है लेकिन नित्यत्व नहीं है। अतः प्रत्यभिज्ञान नामक हेतु बताकर वर्णोंको नित्य सिद्ध करना युक्तिसंगत नहीं है।

वर्णोंमें स्वतः ही नानात्व— अब शंकाकार कहते हैं कि बुद्धि और कर्मको भी नित्य मान लिया जाय तब यह दोष न रहेगा। बुद्धि और कर्म भी नित्य है ऐसा हमारे सिद्धान्तमें कहा भी है। बुद्धि और कर्मको नित्य मान लेनेमें कोई विरोध भी नहीं आता है। तो बुद्धि और कर्म जब नित्य हो गए और प्रत्यभिज्ञान न रहा अब विरुद्ध नामका हेत्वाभास तो न रहा और फिर वर्ण नित्य सिद्ध हो ही जायेंगे। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह वही क्रिया है ऐसा उस क्रियाका जो एकत्व है, नित्यपना है उसमें फिर अब अनेक या अनित्यपना कैसे हो जायगा ? तो उसी प्रकार बुद्धिमें एकत्व होनेपर भी फिर कुछ भी अनेक न रहेगा। सब वर्णोंमें एकत्व हो जायगा। वहां यह कह सकते हैं कि देखो अभिव्यञ्जकके भेदसे उन वर्णोंमें नानापन है। वस्तुतः नहीं है। जैसे जलचन्द्र। आंगनमें १०, २० बर्तन जलके भरे एं रखे हैं, अब उन सभी बर्तनोंमें जलका प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब क्या, लोकोक्तियोंमें वह चंद्र ही है। कोई यह नहीं कह पाता कि यह चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब है, किन्तु यह कह ही देते हैं कि यह चन्द्र है। तो जैसे जलमें जो चन्द्र है सो चन्द्र अनेक नहीं हैं। पर जलपात्रके भेदसे वे चन्द्र नाना रूप हो गया। इसी तरह वर्णोंके सम्बन्धमें भी कह दिया जायगा कि सारे वर्ण एक ही हैं। उनमें अलग–अलग उच्चारण आदिक ये कुछ अवस्थायें नहीं है। यदि कहो कि शब्दोंके एकत्वमें तो प्रत्यक्षसे विरोध है तो यही बात क्रियाके एकत्वमें भी मानो। कर्मके एकत्वमें फिर अविरोध कैसे हो जायगा ? यहाँ एक बात यह समझ लेनेकी है कि याज्ञिक जन जो भावना अर्थ मानते हैं वाक्यांका उनके सिद्धान्तमें वे सब क्रियायें एक हैं। किन्तु पुरुष भावना ही उन सब क्रियावोंका अर्थ है। तो यों याज्ञिकजन यह मानते हैं कि क्रियाका तो एकत्व है और वर्णोंमें एकत्व नहीं याने वर्णोंका एकत्व कथन करनेका प्रत्यक्ष विरुद्ध कहते हैं। और क्रिया आदिकके एकत्वके कहनेमें प्रत्यक्ष विरोध नहीं कहें ऐसा याज्ञिक जनोंमें यह विभाग कैसे बन सकेगा ? तो प्रत्यक्ष विरोध होनेसे जो वर्णैकत्व नहीं मानते हैं उनको अब अंगहार आदिक क्रियावोंका भी एकत्व न कहना चाहिए, जिससे कि शब्दके नित्यत्वके सिद्ध करनेमें क्यों प्रत्यभिज्ञान विरुद्ध नहीं हो। उक्त कथनमें यह बात सिद्ध होती है कि यह प्रत्यभिज्ञानरूप हेतु जब कि व्यभिचारी है तो ये अकारात्मक वर्ण तालु आदिकके व्यापारसे उत्पन्न हुए श्रावण स्वभावको छोड़कर विपरीत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वभावको ग्रहण करता हुआ भी यदि नित्य ही माना जाय तब फिर जगतमें कुछ अनित्य कहलायेगा ही नहीं। तो ये सब शब्द तालू, ओठ, कंठ, दंत आदिक साधनोंके व्यापारोंसे उत्पन्न होते हैं इनकी ध्वनि बनती है। इतनेपर भी यह कहा जाय कि वह नित्य है। जब प्रत्य में यह भान हो रहा है कि देखो ! वर्णोंके बोलनेसे पहिले वर्ण अश्रवण स्वभावमें थे अब श्रावण स्वभावमें आ गए, और अब श्रावणस्वभावका छोड़कर बोलनेके बाद अब अश्रवण स्वभावमें आ गए तो सुननेमें न आये, यह तो हुआ शब्दोंसे विपरीत स्वभाव शंकाकारके सिद्धान्तके अनुसार और सुननेमें आया यह हुआ शब्दका अनुकूल स्वभाव। जो बात शब्दमें मानी गई है वही बात प्रकट भी हो गयी तो यह कहलाया ठीक स्वभाव। उस स्वभावको छोड़कर अश्रावण स्वभावको शब्दने ग्रहण कर लिया और फिर भी कहा जाय कि शब्द नित्य है तब फिर जगतमें अनित्य रहा क्या ? जिसको वे अनित्य कहेंगे वहां यह आपत्ति अपनाई जायगी। तो यों शब्दों में नित्यपना नहीं है।

भिन्न देश स्वभावरूपसे उपलब्ध होनेसे वर्णोंमें नानात्वकी प्रसिद्धि— शब्द नित्यत्वनिराकरणके कथनसे इसका भी निराकरण हो जाता है जैसा कि कहा है कि तीनों लोकमें अकार आदिक वर्ण एक ही हैं। अकार आदिक वर्णोंके एकत्वका निराकरण इस कारण हो जाता है कि बिल्कुल प्रत्यक्ष विदित होता है कि एक साथ भिन्न–भिन्न देशोंमें और भिन्न–भिन्न स्वभावको लिए हुए शब्द उपलब्ध होते हैं। कोई शब्द ऊँचे स्वरसे बोला हुआ है, कोई शब्द नीचे स्वरसे बोला हुआ है, आदिक रूपसे उनमें जब यह स्वभावभेद स्वरूपसे, देश भेदरूपसे उपलब्ध हो रहा है घट पट आदिक की तरह, तब उन वर्णोंको एक मान लेना कैसे विश्वासके योग्य हो सकता है ? शंकाकार कहते हैं कि तुम्हारा जो हेतु है कि चूँकि शब्द एक साथ भिन्न देश और भिन्न स्वभावमें पाया जा रहा है, यह हेतु सूर्यके साथ व्यभिचारी हो जाता है। अर्थात् देखिये ! सूर्य एक साथ भिन्न देश और भिन्न स्वभावमें पाया जा रहा है लेकिन सूर्य तो अनेक नहीं हैं, एक ही है। और, एक साथ भिन्न देशमें पाया जानेपर भी भिन्न भिन्न स्वभावरूपसे सूर्यमें उपलब्धि नहीं होती। इससे यह हेतु बिल्कुल सही है कि अकार आदिक वर्ण एक नहीं हैं क्योंकि एक साथ भिन्न देश और भिन्न स्वभावरूपसे वर्णोंकी उपलब्धि हो रही है। शंकाकार कहता है कि निकट और दूर देशमें रहने वाले ज्ञाताजनोंके साथ इस हेतुका व्यभिचार हो जायगा, क्योंकि स्पष्ट और अस्पष्ट भिन्न स्वभावरूपसे ये लोग उस वस्तुको जान रहे हैं, तो देखो ! यहाँ एक पुरुष पास खड़ा है वृक्षके, एक पुरुष बहुत दूर है वृक्षके तो पास वालेको वृक्षका ज्ञान स्पष्ट हो रहा है और दूर वालेको ज्ञान स्पष्ट नहीं हो रहा है। तो देखो ! भिन्न देश और भिन्न स्वभाव रूपसे पाये जा रहे हैं प्रतिभास लेकिन वृक्ष तो वह एक ही है। तो एक साथ भिन्न देश, भिन्न स्वभावरूपमें पाये जानेसे वर्णादिकको नित्य कहा जाय यह अनुमान घटित नहीं होता। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका करना युक्तिमंगत नहीं है क्योंकि वृ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वृक्ष भिन्न--भिन्न देश रूपसे उपलब्ध नहीं हो रहा। वह तो जहाँ है वहाँ ही दिख रहा है पर दूरमें रहने वाले पुरुषको उसका अस्पष्ट ज्ञान है और पासमें रहने वाले पुरुषको वृक्षका स्पष्ट ज्ञान है। यह साधनके अन्तरसे अन्तर हुआ है।

वर्णोंका नानात्व सिद्ध करनेके लिये कहे गये भिन्न स्वभाव देशोपलब्धता हेतुकी अव्यभिचारिता – अब शंकाकार कहते हैं कि वर्णोंको अनेक सिद्ध करनेमें जो हेतु दिया है कि एक साथ भिन्न देश और भिन्न स्वभाव उपलब्ध होनेसे ये अकार आदिक वर्ण अनेक हैं तो इस हेतुका चन्द्रके साथ व्यभिचार होता है अर्थात् नेत्रोंमें कोई आवरण विशेष होनेसे या नेत्रोंके कोनेसे अंगुलियोंको कुछ दबा दिया जानेसे देखो—भिन्न भिन्न देश स्वभाव रूपसे उपलब्ध हो रहे हैं वे दो चन्द्रमा, तो वे दो चन्द्र जो कि आँखके कोनेको दबानेसे बहुत दूर दूर दिख रहे हैं, पर चन्द्र तो वहाँ एक है और दूर दूर दिखनेका कुछ अर्थ ही नहीं है। तो उस चन्द्रमाके ज्ञानके साथ हेतु दूषित हो गया। भिन्न देश, भिन्न स्वभावसे उपलब्ध तो हो रहे हैं वे दो चन्द्र लेकिन दो नहीं हैं एक हैं। तो इस प्रकार एक साथ भिन्न देश, स्वभावरूपसे वर्ण उपलब्ध तो हो रहे हैं मगर वे सब वर्ण एक ही हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि भ्रान्तकी उपलब्धिसे अभ्रान्तकी उपलब्धिमें व्यभिचार नहीं दिया जा सकता। यदि कोई भ्रम वाले उदाहरणसे निर्भ्रान्तकी उपलब्धिमें दोष देने लगे तो सभी प्रकारके हेतुवोंमें निर्दोषताका सम्बन्ध नहीं रह सकता। प्रत्येक हेतुमें कोई व्यभिचार आ ही सकता है। शब्दको भी एक साथ भिन्न देश स्वभावरूपसे जो उपलब्धिमें लिया जा रहा है वह भ्रान्तिज्ञान नहीं है। क्योंकि सर्वदा ऐसा समझनेमें बाधा नहीं आ रही। भ्रान्त ज्ञान तो वह होता है कि किसी एक दो का यदि भ्रम होनेपर अनेक लोग उसे नहीं जान रहे। दो चन्द्रमाका दिखना किसी खास रोग वालेको तो बनता है लेकिन अनेक पुरुषोंको तो सदा चन्द्र एक ही दिखता है। और, जो चीज सदा सबको अनेक दीखे वह तो अनेक ही है चन्द्र एक है जो वहाँसे दिखता है और सभी जनोंको एक दिखता है। अब किसीके नेत्रमें रोग हो और उसे दो चन्द्र दिखने लगें हो उसमें उत्तरकालमें बाधा आती है। वह भी खुद समझता है कि मुझे ऐसा रोग हुआ है कि एक चन्द्रकी जगह दो चन्द्र दिखते हैं। तो लो बाधा आ गई ना! मगर वर्ण एक साथ भिन्न देशमें भिन्न स्वभावसे पाये जा रहे हैं ऐसे ज्ञानमें किसी भी प्रकारका व्यभिचार नहीं आता। यदि भ्रान्तकी उपलब्धिसे अभ्रान्तकी उपलब्धिमें दोष दिया जाने लगे फिर तो सारे हेतु व्यभिचारी बन जायेंगे। किसी भी हेतुको निर्दोष न कहा जा सकेगा। सर्वदा बाधकोंका अभाव रहे और उसमें भ्रान्तपना रहे, यह संदेह न करना। कोई ऐसा सोचने लगे कि किसी बातनेमें सदाकाल बाधाका अभाव रहा आये और फिर भी भ्रान्त रहे तो यह बात नहीं है। एक साथ प्रतिनियत देशमें भेद और तीव्र जो श्रुति होती है याने उच्चस्वरसे और हल्के स्वरसे जो शब्दोंका श्रवण होता है सो अनेक ही सिद्ध हुए ना! कोई वर्ण धीरे बोला गया, कोई उच्चस्वरमें। इतने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर भी यदि वर्णको एक ही मानते हो तब फिर दुनियामें किसी भी जगह अनेकताकी सिद्धि नहीं हो सकती। घट पट अनेक दिखते हैं फिर भी कह देंगे कि अनेक हैं, बाधा इसमें कुछ आ नहीं रही, फिर भी ये भ्रान्त हैं। वस्तुतः एक ही पदार्थ है।

प्रत्यभिज्ञानसे वर्णोंके एकत्वको सिद्ध करनेका शंकाकारका विफल प्रयास— शंकाकार कहता है कि यह वह ही अकार है इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान होनेसे अकार आदिक वर्णोंमें एकत्व सिद्ध होता है याने वे अकार आदिक कोई भी वर्ण एक ही हैं। इसके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह तो अंगहार आदिक क्रियाविशेषोंमें भी एकत्व हो जायगा। जैसे कि कोई नर्तक पुरुष जैसा रोज नृत्य करता आया है, उसी तरह आज भी वह अपने अंगोंको फैलाकर फेंककर नृत्य कर रहा है तो वहां भी प्रत्यभिज्ञान होता है कि देखो ! यह वही नृत्य है जो कल था। तो वहाँपर भी एकत्व आ जाना चाहिए। और वहां ही क्या, इस तरह समस्त पदार्थ विशेषोंमें एकत्व हो जाना चाहिए। घट पट आदिक कोई भी पदार्थ अब भिन्न-भिन्न अनेक न रहेंगे, क्योंकि किसी प्रकारसे किसी भी पदार्थमें प्रत्यभिज्ञान किया ही जा सकता है वर्णोंकी तरह। जैसे कि आकार आदिक समस्त वर्णोंमें और भूत वर्तमान भविष्यमें सब ही वर्णोंमें प्रत्यभिज्ञान द्वारा कि यह वही वर्ण है, एकत्व मान लिया है तो सभी पदार्थोंमें एक सत्त्व हेतु द्वारा यह भी सत् है, यह भी सत् है, इस प्रकारका विचार होनेसे सभी पदार्थोंमें एकत्व बन जायगा, लेकिन यह तो प्रकट विरुद्ध है इसी तरह अकार आदिक वर्णोंमें देशभेद और कालभेदसे उनमें भेद पाया जाता है और उनको वर्णोंमें सदृशता का उदाहरण देकर एकत्व नहीं माना जा सकता। यहाँ शंकाकार कहते हैं कि देखो, शब्दमें अनेकत्वकी सिद्धि इस कारणसे नहीं है कि एक साथ प्रतिनियत देशमें मंद और तार श्रुतियोंके अभिव्यजक होनेका कारण है याने कोई शब्द बड़े ऊंचे स्वरसे प्रकट होते हैं कोई शब्द छोटे स्वरसे प्रकट होते हैं और वे होते हैं एक साथ। तो इस दृष्टिसे शब्दमें अनेकताकी सिद्धि नहीं है याने वर्णपनेसे अन्य जो भिन्न देशस्वभाव है उस विशेषको ग्रहण करने वाला बुद्धि है अतः शब्दमें अनेकता नहीं है। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह तो सब जगह वही बात लगाई जा सकती है। जितने भी अंगहार आदिक है उन सबमें भी देशादिक विशेष बुद्धिका अभिव्यजक करने वाले हैं याने अंगहार आदिक तो एक नित्य हैं और हाथ पैर आदिक उसके अभिव्यंजक हैं, ऐसा कल्पना करके यहां भी एक सत्त्वका निषेध किया जा सकता है। तो जो बात एक प्रत्यक्षमें सुगमतया विदित होती है उसका निराकरण करनेके लिए क्लिष्ट कल्पनायें करना इसका हिसाब निष्प्रयोजन है।

वर्णोंकी अनेकता और वर्णोंकी वर्तमानतासे पहिले व पश्चात् वर्णोंका अभाव—वर्ण अनेक ही सिद्ध होते हैं। जब वर्ण अनेक हैं तो इन पुद्गलोंकी भाषामयी उत्पत्ति होनेके उपायोंका सन्निधान बनता है, उनका साधन जब जुट जाता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तब ये सब यद्यपि श्रावण स्वभाव हैं याने सुननेमें आ सके ऐसा शब्दोंमें स्वभाव पड़ा हुआ है, लेकिन जिस समय ये सुननेमें आ रहे हैं उसके पहिले व उसके पश्चात् दोनों कालोंमें शब्द है कहाँ। वे तो प्रयत्नके बाद उत्पन्न होते हैं घट पट आदिककी तरह। जैसे घट पट आदिक पुद्गल पदार्थ जिस समय बनाये गए और जब तक वे रहते हैं तब तक तो वे हैं पर उससे पहिले याने उत्पन्न होनेसे पहिले नहीं हैं और घटके प्रध्वंस के बाद भी वह विवक्षित घट नहीं है। वह तो कुम्हार जुलाहा आदिकके व्यापारसे उत्पन्न हुआ है। तब समझना चाहिए कि शब्द भी न पहिले था न पश्चात् है और वह अपौरुषेय नहीं है, किन्तु पुरुष प्रयत्नके द्वारा उत्पन्न किया गया है। तो ऐसे शब्दका भी जैसे प्रागभावका निषेध करना ठीक नहीं है इसी प्रकार शब्दके प्रध्वंसका भी निषेध करना सही नहीं है।

गन्धपरमाणुवत् शब्दपरमाणुओंमें चाक्षुषताके प्रसंगका अभाव—अब यहाँ शंकाकार कहते हैं कि देखिये! शब्दको यदि पुद्गलका पर्याय मान लिया जाता है तब चक्षुके द्वारा शब्दकी उपलब्धि होनेका प्रसंग आ जायगा, क्योंकि कहा भी है कि जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाला हो वह पुद्गल कहलाता है, याने जो पुद्गल होता है वह स्पर्श, रस, गंध वर्ण वाला है। शब्दको मान लिया पुद्गल तो उसमें वर्ण भी सिद्ध हो गया। जब वर्ण है शब्दमें तो आँखके द्वारा वह दिख जाना चाहिए और दिखता है नहीं। सिद्धान्तसे विरुद्ध आ रहा तो कैसे माना जाय कि शब्द पुद्गलका पर्याय है शब्द तो शब्द आंखोंसे दिख जाना चाहिए, इस हेतुका गंध परमाणुओंके साथ व्यभिचार आता है। गंध परमाणु तो शंकाकार नैयायिक आदिक भी एक पिण्डरूप मानते हैं। गंध परमाणु जब एक भौतिक चीज मानते हैं तो उसकी भी चक्षुके द्वारा उपलब्धि हो जाना चाहिए, क्योंकि पुद्गल पर्याय है। तो जैसे गंध परमाणु एक पिण्ड-रूप भौतिक होनेपर भी चक्षुके द्वारा नहीं जाना जा रहा है तो इसी तरह शब्द भी चक्षुसे न जाना जायगा। जैसे उत्तर गंध परमाणुके सम्बन्धसे जो पुद्गल परिणमन है वह पुद्गल पर्यायपना अदृश्य होनेसे गंध परमाणु दर्शनमें नहीं आता तो वही उत्तर शब्द पुद्गलमें भी लगाना चाहिए कि शब्द पुद्गल भी इतने सूक्ष्म हैं उनकी पुद्गल पर्यायता इस किस्मकी है कि वह अदृश्य है। अतएव शब्द पुद्गल भी चक्षु द्वारा दिखने में नहीं आता। अब शंकाकार कहते हैं कि देखिये! शब्दको चक्षुके द्वारा दिख हो जाना चाहिए क्योंकि शब्द तो पुद्गल स्कंधका स्वभाव है, जैसे कि घट, घट पुद्गल स्कंध है ना! वह कोई बिखरे हुऐ परमाणु जैसा तो नहीं है, तो जब पुद्गल स्कंध है शब्द तो फिर वह आँखों दिख जाना चाहिए। इसके समाधानमें कहते हैं कि इस ही हेतुसे, इस ही पद्धतिसे गंध भी चक्षु द्वारा दिख जाना चाहिए, क्योंकि गंध भी तो पुद्गल स्कंधका स्वभाव है। यदि कहो कि गंधमें अप्रकट रूपकी विधिके पुद्गल स्कंध स्वभावपना है, याने गंधमें रूप भी समस्त अधिकरणरूपसे रह रहा है जैसे कि पृथ्वी है वह गंध वाली है और पृथ्वीमें गंध, रूप, रस पाये जा रहे, हैं लेकिन उसमें गंध तो

Version 1

उद्भूतरूप है किन्तु रूप उसमें अव्यक्त है। तो अव्यक्त है रूप जिसमें इस प्रकारका यह गंध परमाणु, पुद्गल स्कंध स्वभाव वाला है अतएव चक्षुके द्वारा उस गंध परमाणुमें रूपकी उपलब्धि होनेकी योग्यता नहीं है। सो गंधका चक्षुके द्वारा दिखना नहीं बनता। उत्तरमें कहते हैं कि फिर इन्हीं कारणोंसे शब्द भी आँखों न दिखे, इसमें कौन सी बाधा है शब्दमें रूपकी अव्यक्ति है और इस ही कारणसे आँख द्वारा उपलब्धि की योग्यता शब्दमें नहीं है सो शब्द भी आँखोंसे नहीं दिखता। यह दोष देकर कि शब्द आँखोंसे नहीं दिखता सो पुद्गल नहीं है, यह कहना अयुक्त है।

गंध परमाणुवत् शब्द परमाणुओंमें भी सीमाधिकविस्तार विक्षेप होने के प्रसंगका अभाव—शंकाकार कहते हैं कि शब्द परमाणु जब तालू आदिकसे उत्पन्न हुए वचनसे प्रेरित हो जाते हैं तो उनका बहुत बड़ा विस्तार हो जाना चाहिए, जैसे शब्दकी जितनी दूर तक फैलनेकी मर्यादा है उस मर्यादाका उल्लंघन करके भी शब्दोंको आगे फैल जाना चाहिये। इसके समाधानमें कहते हैं कि इसी तरह तो फिर गंध परमाणुओंके भी जो कि पवनसे प्रेरित हुए हैं उनके फैलनेकी मर्यादासे आगे भी फैल जाना चाहिए। जिस तरह शब्दमें यह दोष देते हो कि तालु आदिक वचनोंसे जब इन शब्दोंको प्रेरित किया जाता है याने जब कभी धीरेसे बोलना होता है तो तालू आदिकका प्रयत्न मंदतासे करना पड़ता है। और जब किसी शब्दको बहुत दूर तक सुनना है तो तालु आदिकका उपयोग बहुत तीव्रतासे किया जाता है। देखो—तालू आदिकसे उत्पन्न हुए वचनोंसे शब्द परमाणु प्रेरित हुए ना, तो यों प्रेरित होते हुए शब्द परमाणुवोंका विस्तार अत्यन्त अधिक बढ़ जाना चाहिए। याने शब्दमें जितनी दूर तक फैलनेकी मर्यादा है उससे और आगे बढ़ जाना चाहिए। सो यही बात गंधके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। जैसे जब हवा चलती है तो उस हवासे प्रेरित होकर गंध दूर तक फैलती ही है तो इस प्रेरणामें वह गंध अपनी मर्यादासे बाहर भी फैल जाना चाहिए। सो जैसे पवनसे प्रेरित होते हुए गंधमें जहां तक फैलने की मर्यादा है उससे बाहर वह गंध नहीं फैलती, इसी प्रकार तालू आदिक वचनोंसे प्रेरित होनेपर भी शब्द परमाणुओंमें जहाँ तक फैलनेकी मर्यादा है, उससे बाहर वे नहीं फैलते। यदि शंकाकार आक्षेपके समाधानमें यह कहेंगे कि गंध द्रव्यके स्कंध-रूपसे परिणत होनेके कारण जैसे कस्तूरी आदिक ये एक पिण्डरूप है ना, सो स्कंध-रूप होनेके कारण हवासे प्रेरित होनेपर भी इसका मर्यादासे अधिक विस्तार नहीं होता। जैसे कि शरीर। शरीर पिण्डरूप है पुद्गल स्कंधरूप है। तो इसका फैलाव विस्तार, कहाँ तक होता है! ऐसे ही गंध वायु आदिसे प्रेरित हो जाय तो भी यह मर्यादासे बाहर नहीं फैल सकता। कभी हवासे शरीर कुछ ढकिलने लगता है तो यह हजारों योजन तक तो न ढकिल जायगा तो जहाँ शरीरादिक पुद्गल स्कंध रूपसे परिणत होनेके कारण हवासे प्रेरित होनेपर भी यह विस्तृत नहीं बन पाता, ऐसे ही गंध द्रव्य स्कंधरूपमें परिणत होनेसे यह हवा द्वारा प्रेरित होकर भी मर्यादासे आगे

http://www.jainkosh.org

फैलना नहीं है । तो इसके समाधानमें कहते हैं कि ठीक है लेकिन इस ही तरह शब्द परमाणुवोंमें भी घटित कर लेना चाहिये । वे भी शब्द स्कंधरूपसे परिणत हैं अतएव तालु आदिक वचनोंसे प्रेरित होनेपर भी अपनी मर्यादासे आगे उनका विस्तार न बन सकेगा । और इस ही कारण उनका फैलना भी नहीं बन सकता, गंध परमाणुओं की तरह । जैसे कि गंध परमाणु स्कंध परिणत हैं तो उनका चारों ओर फैलना भी मर्याद से बाहर नहीं बनता । तो ऐसे ही शब्द भी स्कंध परिणत हैं इस कारण उन का भी चारों ओर फैलना मर्यादासे बाहर नहीं बनता । ये शब्द परमाणु स्कंध परिणत हैं क्योंकि इनमें बंध विशेष पाया जाता है । तो स्कंध परिणत होनेके कारण शब्दोंमें विस्तार व विक्षेपके दोष नहीं दिए जा सकते ।

गंधपरमाणुवत् शब्दपरमाणुवोंका प्रतिघात होनेसे पौद्गलिकताकी सिद्धि—कोई यह कहे कि जब ये शब्द स्कंध परिणत हैं तो इनका मूर्त द्रव्योंके द्वारा प्रतिघात हो जाना चाहिए, सो भी बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि स्कंध परिणत गंध परमाणुवोंमें भी प्रतिघात हो जाना चाहिए । यदि कहो कि गंध परमाणुओंका तो भींटादिकके द्वारा प्रतिघात होता हुआ देखा ही जा रहा है तो शब्द परमाणुओंका भी भींटादिकके द्वारा प्रतिघात होता हुआ देखा जाता है, सो गंध परमाणुओंकी तरह शब्द परमाणुओंमें भी पुद्गलकी पर्यायता सिद्ध होती ही है ।

गंध परमाणुओंसे नासिकापूरणके अप्रसंगवत् शब्दपरमाणुओंसे कान पूरणका अप्रसंग—शंकाकार कहता है कि मूर्तमान शब्द परमाणुओंके द्वारा जो कि स्कंधरूपमें परिणम गए हैं उन शब्द परमाणुओंके द्वारा श्रोताके कान भर जाने चाहिएँ । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस तरह तो गंध परमाणुओंके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है, क्योंकि गंध परमाणु भी स्कंध परिणाम हैं । तो स्कंधरूप परिणमे हुए गंध परमाणुओंके द्वारा घ्राण भर जाना चाहिये । तो जैसे गंध परमाणुओंका गंध विषय लेकर भी घ्राण कहीं उन परमाणुओंसे भर नहीं जाता इसी तरह शब्दरूप परिणत हुये उन स्कंधोंके द्वारा श्रोताके कान भर नहीं जाते । स्रोत्र इंद्रियके द्वारा यह आत्मा उन पुद्गल स्कंधोंका ज्ञान कर लेता है और ऐसे ही घ्राणेन्द्रियके द्वारा यह आत्मा उन गंध परमाणुओंके गंधका ज्ञान कर लेता है । इंद्रियां तो रूप रस आदिकके ग्रहण करनेके साधन हैं ।

गंधपरमाणुओंका एकमात्र घ्राणप्रवेशानुपलम्भकी तरह शब्दपरमाणुओंका भी एकमात्र श्रोत्र प्रवेशानुपलम्भ—शंकाकार कहते हैं कि जब शब्द एक श्रोताके कानमें प्रवेश कर रहा है तब एक स्रोत्रमें शब्दके प्रवेश हो जानेपर फिर इस ही के आस पास बैठे हुए अन्य श्रोताओंको शब्द सुनाई न दे जाना चाहिए, क्योंकि शब्दोंका प्रवेश तो एक पुरुषके कानमें हो गया है । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यों ही फिर गंध एक पुरुषके घ्राणमें प्रवेश हो जानेसे फिर अन्य जो पासमें जानकार लोग स्थित हैं उन्हें फिर गंधका ज्ञान न होना चाहिए। यदि कहो कि गंध परमाणु तो एक सदृश परिणाम वाला है। इस कारण इन गंध परमाणुओंका चारों ओरसे फैलाव होता है। वे गंध परमाणु चूंकि सभी गंध रूप हैं तो गंधरूपकी समानता होनेसे वे परमाणु फैल जाते हैं और तब अनेक पुरुषोंके घ्राणोंमें उन गंधोंका ज्ञान हो जाता है। इस कारण गंध परमाणुओंमें दोष नहीं दे सकते। तो इसके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो शब्द परमाणु भी जितने अनेक हैं वे सब समान परिणाम रखने वाले हैं। सभी शब्दरूप हैं अतएव शब्द परमाणुओंका भी नाना दिशाओंके रूपसे फैलना हो जाता है। इस कारण यहाँ भी वह दोष न होगा।

गंधपरमाणुवत् शब्दपरमाणुओंके भी आगमनकी सिद्धि होनेसे पौद्गलिकत्वका समर्थन—अब शंकाकार कहता है कि शब्दका आगमन होना ऐसी कल्पना बन जायगी। यद्यपि शब्द अदृष्ट हैं और आगमनकी बात कुछ नहीं है। शब्द सर्वदेशमें सब जगह व्यापक है और जहाँ उनका व्यञ्जक कारण मिलता है वहाँ वे शब्द व्यक्त हो जाते हैं। लेकिन अब तो जब शब्दोंको पौद्गलिक मान लिया तो इनका आगमन भी मानना पड़ेगा। यों शब्दके आगमन आदिक कल्पनायें करनेका प्रसंग आ जायगा। इसके समाधानमें कहते हैं कि यों ही फिर गंध परमाणुवोंके भी आगमनकी कल्पना करनी पड़ेगी। यदि यह कहो कि गंध परमाणुवोंका तो आगमन निश्चित् ही है, उसमें कोई कल्पना करनेकी बात क्या है? यदि गंध परमाणु न आते होते तो जानकारी विशेष बन ही नहीं सकती थी। तो गंधविषयक जो जानकारी बन रही है उससे यह सिद्ध है कि गंध परमाणुओंका आगमन है। यों अदृष्ट होनेपर भी गंध परमाणुओंके आगमनकी उचित परिकल्पना युक्त ही है। इस आक्षेपके समाधानमें कहते हैं कि यों ही तो शब्द पुद्गलका भी जानकारी विशेष अन्यथा न हो सकती थी इस कारणसे जाना जाता है कि शब्द परमाणु भी आते हैं। जैसे जहाँ जिस समय जितने जानकार पुरुषोंको शब्द पुद्गलकी उपलब्धि हुई है स्रोत्र इन्द्रिय द्वारा शब्दका श्रवण कर जानकारी करते हैं इस प्रकार वहाँ उस जगह इसके सब जीवोंको उपलब्धि बराबर होरही ना, तो उससे यह सिद्ध होता है कि ये शब्द आते हैं और उनके आगमनकी कल्पना करना कोई व्यर्थकी कल्पना नहीं किन्तु उचित कल्पना है। इस तरह शब्दोंके संबंधमें जो शंकायें की गई हैं उस शब्दको पुद्गल स्वभाव माननेपर ये आपत्तियाँ आती हैं, तो ये सारी आपत्तियां गंध परमाणुओंके सम्बन्धमें भी शब्दकी तरह बताई जा सकती हैं, और इस तरह शब्दको पुद्गल स्वभाव माननेपर जो उपालम्भ दिया गया कि शब्दको दिखाई दे जाना चाहिए। यदि यह पुद्गल स्वभावी है तो शब्दोंका विस्तार बढ़ना चाहिए, अपनी सीमासे अधिक क्षेत्रमें फैल जाना चाहिए, शब्दको बिखर जाना चाहिए या शब्दोंका प्रतिघात होना चाहिए और शब्दोंको कानमें भर जाना चाहिये। और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

एक पुरुषके स्रोत्रमें शब्दोंका प्रवेश हो गया तो अन्य स्रोत्रमें प्रवेश न होनेसे अन्य पुरुषों को सुनाई न दिया जाना चाहिए। ये जितने भी उपालम्भ शब्दके सम्बन्धमें शकाकार दे सकते हैं वे सभी उपालम्भ गन्ध परम णुओंके विषयमें भी सम्भव हैं। अतएव वह उपालम्भ युक्तिसंगत नहीं है।

शब्दोंको अपौद्गलिक सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त अस्पर्शत्व हेतुकी असिद्धि —अब मीमांसक शका करते हैं कि शब्द छूनेमें नहीं आते हैं पुद्गलकी तरह, सो इन शब्दोंका ज्ञान बन नहीं पायगा, तो ये पुद्गल कैसे कहलायेंगे ? अनुमान प्रयोगसे भी यह बात सिद्ध होती है कि शब्द पुद्गल स्वभाव नहीं है, क्योंकि इनका स्पर्श नहीं पाया जाता, सुख आदिककी तरह। जैसे सुख परिणाम स्पर्श रहित है, सुखका क्या स्पर्श ? क्या सुख कोमल है, कठोर है चिकना है, ठंडा है। ये कोई बातें सम्भव तो नहीं हैं। तो सुख स्पर्श रहित है, अतः सुख पुद्गल स्वभाव नहीं है। इसी प्रकार शब्द भी स्पर्श रहित है, अतः पुद्गल स्वभाव नहीं है। इस प्रकार बाधक अनुमानका स्वभाव पाया जाता है अतः शब्दकी पुद्गलस्वभावता सगत नहीं बैठती। इसके समाधानमें कहते हैं कि इस सम्बन्धमें जो हेतु बताया गया है वह हेतु असिद्ध है, शब्द स्पर्श रहित है, यह कहना अयुक्त है, क्योंकि इस कर्णमुद्राके भीतर, इस कर्णकुटी के अन्दर कट-कट रूपसे अनुभवमें आए हुए शब्दकी बराबर प्रसिद्धि है। यदि कोई शब्दको बहुत तेजीसे बोलता है, जैसे इंजनके पास खड़े हुए पुरुष इंजनकी सीटी सुन कर कानोंको दबा लेते हैं क्योंकि उन शब्दोंका स्पर्श इस कर्णमें विदित होता है और प्रायः करके ये शब्द प्रतिघातके कारण बनते हैं और ये शब्द भींटादिकसे छिड़ जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि शब्दमें स्पर्श पाया जाता है। तो शब्दके सम्बन्धमें स्पर्शपनेकी कल्पना करना निरर्थक है।

शब्दको अपौद्गलिक सिद्ध करनेके लिए प्रयुक्त निश्छिद्र प्रवेशत्व हेतुकी व्यभिचारिता —अब शकाकार कहते हैं कि द्वितीय अनुमानमें सुनो कि शब्द पौद्गलिक नहीं है वह अनुमान प्रयोग यों है कि शब्द पुद्गल स्वभाव नहीं है, क्योंकि छिद्ररहित मकानके भीतर भी शब्द चले जाते हैं। मकानके भीतर बाहरसे शब्दका प्रवेश हो जाता है और शब्दको रोकने वाला, उसका व्यवधान करने वाला कुछ नहीं दिखता। देखिये ! जो पुद्गल स्वभाव होता है उसका इस तरहसे दर्शन नहीं होता कि छिद्ररहित मकानके भीतर घुस जाय। जैसे लोष्ठ पत्थर है वह किसी मकानके भीतर प्रवेश नहीं कर पाता न बाहरसे मकानमें भींटमेंसे लोष्ठका आना बन सकता है। लेकिन शब्दमें तो इतनी बात देखी जा रही है कि छिद्ररहित मकानकी भींटमें प्रवेश कर जाय। इससे सिद्ध होता है कि शब्द पुद्गलस्वभावी नहीं है। उक्त शंका के उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी कल्पना करना शब्दमें पुद्गल स्वभावपनेका निषेध करना अयुक्त है। पुद्गल स्वभाव होनेपर भी छिद्ररहित मकानसे बाहर जा सकता है। इस

http://sahjanandvarnishastra.org/

का कोई विरोध नहीं है। इसका कारण यह है कि निश्छिद्र भींटादिकमें गमनागमन करना यह सूक्ष्म स्वभाव होनेसे सम्भव हो जाता है। जैसे स्नेह स्पर्श आदिक भी तो छिद्ररहित भींटसे बाहर पहुँच जाते हैं। जैसे कि किसी ताँबेके कलशके भीतर तैल और जल भरा हुआ है। मिट्टीके कलशके भीतर तैल या जल भरा हुआ है तो उस तैल और जलके बिन्दुओंका बाहर भी निर्गमन देखा गया है, क्योंकि वह कलश बाहरसे चिकना मालूम होता है। और उस कलशको बाहरसे छूकर ठंडापनका भी ज्ञान किया जाता। इससे सिद्ध है कि वह स्नेह और शीतस्पर्श यद्यपि भीतर ही वह वस्तु है लेकिन उसके बाहर निर्गमन हो गया है। ऊपरसे घड़ेको छूकर जो यह जान लिया जाता कि यह बड़ी ठंडी चीज है, या किसी अन्य बर्तनमें भी कोई गर्म या ठंडा जल पड़ा हो तो लोग बर्तनको बाहरसे ही छूकर परख लेते हैं कि इसमें यह ठंडा जल है, यह गरम जल है। तो उसका शीतस्पर्श है। जब बाहर निर्गमन हो गए तब ही तो यह जाना गया। कोई घड़ा बिल्कुल बंद है, उसमें शीतल जल रखा है और ऊपरसे बिल्कुल बंद किए हुए है लेकिन बाहरके स्पर्शसे अनुमान हो जाता है कि इसके भीतर ठंडा जल भरा हुआ है। तो किंचित् घटादिकमें जैसे बाहरकी चीज अन्दर प्रवेश करती है, भीतरकी चीज बाहर निर्गत हो जाती है तो ऐसे ही ये शब्द परमाणु भी सूक्ष्मस्वभाव के हैं अतः निश्छिद्र भवनादिकके बाहर चले जाते हैं और बाहरसे भीतर आ जाते हैं, इतनेपर भी जो भींटादिकमें दरार नहीं पड़ती कोई भेदन नहीं होता, इससे सिद्ध है कि ये इतने सूक्ष्म हैं कि निश्छिद्र भवनादिकमें प्रवेश कर जाते हैं और उनका भेदन नहीं करते। तब जो अनुमानमें हेतु दिया है शंकाकारने कि शब्द पुद्गलस्वभाव नहीं है, क्योंकि उनका निश्छिद्र निर्गमन आदिक देखा गया है। सो इस हेतुमें स्नेहादिक और स्पर्शादिकके साथ व्यभिचार आता है, इस कारण यह हेतु समीचीन नहीं है। जिससे कि यह हेतु शब्दके पुद्गल स्वभावका निराकरण कर सके। जो कुछ भी परिणमन होता है वह पुद्गल स्वभाव है। यह निर्णय बिल्कुल युक्त है इसमें किसी भी प्रकारका विरोध नहीं आता।

शब्दोंकी वर्तमानताका समय – अब और कुछ विशेषतः शब्दोंको निर्णीत करना चाहिये जैसे जब शब्दमें पुद्गल स्वभावका कोई विरोध नहीं है और प्रश्न उठे यह कि ऐसे पुद्गल शब्द फिर ठहरते कितने समय तक हैं सो सुनो। तालु आदिक यत्नसे उत्पन्न हुए वर्णादिक स्वरूप और ये शब्द वर्गणायें इनमें जो अब सुननेका स्वभाव आया है अर्थात् कर्णमें प्रवेश करनेपर ये शब्द सुने जा सकते हैं। इस प्रकार का इनमें जो स्वभाव आया है वह स्वभाव तालु आदिक प्रयत्नोंसे पहिले तथा और तालवादिक प्रयत्नके समाप्त होनेके बाद कुछ समय जितनी भी मर्यादा है उस ध्वनि समाप्त होनेके बाद उन पुद्गलोंमें वह श्रावणस्वभाव नहीं रहता है। इससे उतने समय तक ही ध्वनि प्राप्त होती है जितने समय तक ये सुननेमें आते हैं। सुने जानेका इसमें स्वभाव बना हुआ है। यही बात शब्दके सम्बन्धमें सबको मानना चाहिए।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदि शब्दको समस्त कालमें व्यापी माना जाय तो जैसे मध्य समयमें ये शब्द सुननेमें आ रहे हैं यानें ताल्वादिक प्रयत्नके पश्चात् और ध्वनि समाप्तिके पहिले तक इस मध्य कालमें जैसे शब्द सुननेमें आते हैं उस प्रकार पहिले और पीछे भी इन शब्दोंमें श्रावण स्वभावताका प्रसंग होगा। क्योंकि तालू आदिकसे उत्पन्न हुआ वर्णादिक स्वरूप रूप ही तो पदवाक्य होता है। तब वह पद वाक्य पश्चात् भी और पहिले भी सुननेमें आ जाना चाहिए। पर ऐसा तो किसीको अनुभव होता नहीं इससे सिद्ध है कि शब्दोंका श्रावण स्वभाव स्रोत्रइन्द्रिय द्वारा सुना जाता। ऐसी परिणति उस विशिष्ट वर्तमान कालमें ही होती है उससे पहिले और उसके बाद नहीं होती है। हां जिन वर्गणाओंका शब्दरूप परिणमन होता है वे शब्दवर्गणायें पुद्गलके रूपमें पहिले भी हैं और पीछे भी रहेंगी, किन्तु उन वर्गणाओंमें शब्दरूप परिणतिका बनना यह एक किसी निश्चित समयमें ही होता है : हां कि उत्कृष्ट सामग्री पूरी मौजूद है तालू आदिकका व्यापार भी बन रहा है। ऐसे समयमें ही उन शब्दोंमें श्रावण स्वभाव पाया जा रहा है। और इससे यह मानना चाहिए कि ये शब्द कार्य बने। जब उनका कार्य हो रहा है तब ही उनकी स्थिति है उसके पहिले और उसके पश्चात् शब्दकी स्थिति नहीं है। केवल उसके उपादानभूत पौद्गलिक परिणमन वहां पाया जाता है। यों उत्पादव्यय-ध्रौव्य युक्त है इसलिये ये सत् हैं, इनमें आविर्भाव और तिरोभावकी व्यवस्था नहीं है।

प्रागभाव व प्रध्वंसाभावका अपन्हव करनेपर निःस्वभावता व शून्यता का प्रसंग—शब्दको शाश्वत आकाशगुण मानने वाले मीमांसकोंके सिद्धान्तमें शब्द का प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं माना है। सो प्रागभावका निराकरण करनेपर व प्रध्वंसाभावका निराकरण करनेपर कूटस्थपना आता है अर्थात् शब्द शाश्वत अपरिणामी रहता है और जो कूटस्थपना है वह क्रमसे और एक साथ कैसे ही किसी अर्थ क्रियाके साथ नहीं जुट सकता। जैसे शब्द यहां कूटस्थ अपरिणामी बना तो अब शब्दमें न तो क्रमसे शब्दाकार ज्ञान होना ऐसी अर्थ क्रिया बन सकती और न एक साथ शब्दाकार ज्ञान होना ऐसी अर्थ क्रिया बन सकती है जो वस्तु अपरिणामी नित्य है उसमें परिणमन ही सम्भव नहीं। क्रमसे परिणमन तो यों सम्भव नहीं कि फिर तो वह अपरिणामी न रहेगा। कूटस्थ नित्यमें क्रम कैसे बन सकता है? एक साथ अर्थ-क्रिया यों न बनेगी कि अर्थक्रिया बननेके नामपर परिणमन तो मानना ही पड़ेगा और एक साथ अर्थक्रिया होती है तो अगले समयमें फिर कुछ काम ही न रहा। भूत भविष्य सब कुछ एक साथ हो गया। फिर विश्व शून्य हो जायगा आदिक अनेक दोष आते हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि जो कूटस्थ होता उसमें अर्थक्रिया नहीं बनती तो जब शब्द शाश्वत अपरिणामी है तो इसमें इतनी भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती कि शब्दाकार ज्ञान भी बन जाय और, जब शब्दाकार ज्ञान होनेकी भी अर्थ क्रिया नहीं बनती तब शब्द निःस्वभाव हो गया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रागभाव व प्रध्वंसाभावका अपलाप करनेपर सकलशून्यताके प्रसंग आनेका स्पष्टीकरण—प्रागभाव व प्रध्वंसाभाव न माननेपर इष्ट मंतव्यकी निःस्वभावताका प्रसंग प्राप्त है इसका स्पष्टीकरण यह है कि प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव को न मानना इन दोनों अभावोंका निराकरण करना यह तो कूटस्थपनेसे व्याप्त है। जिसका प्रागभाव नहीं अर्थात् पहिले अभाव नहीं तो अर्थ यही हुआ कि पहिले अनादिसे ही उसका सद्भाव है जिसका प्रध्वंसाभाव नहीं, तो अर्थ यह हुआ कि उस का अनन्त काल तक सद्भाव है। तो प्रागभाव और प्रध्वंसाभावका निराकरण कूटस्थपनेसे व्याप्त है और जो कूटस्थ है उसकी कूटस्थता क्रम और यौगपद्यके अभावसे व्याप्त है। याने जो अपरिणामी है, जिसमें रंचमात्र भी परिणमन सम्भव नहीं है उसमें क्रम और यौगपद्य कहांसे ठहर सकेंगे क्योंकि कूटस्थमें क्रम और यौगपद्य दोनों का विरोध है तथा क्रम और यौगपद्यके अभावसे समस्त अर्थ क्रियावोंका विरोध है। जैसे यहां शब्दको कूटस्थ माना जा रहा तो शब्दाकार ज्ञान बन जाय यह भी बात सम्भव नहीं है, क्योंकि यदि शब्दाकार ज्ञान बनता है तो उससे यह सिद्ध हो जाता है कि पहिले वह शब्दाकार ज्ञान था नहीं शब्द सुननेमें आ रहे नहीं थे अब शब्दमें शब्दाकार ज्ञान होनेका रूप आ गया तो कूटस्थता कहां रही ? पहिले उनमें दूसरा स्वभाव था अब दूसरा आ गया। तो कूटस्थपनेकी व्याप्ति स्वाकारज्ञानादिक अर्थक्रियाकी व्यावृत्तिसे व्याप्त हैं याने उसमें किसी भी प्रकारकी अर्थक्रिया नहीं हो सकती। और जहां स्वाकार-ज्ञानादिक अर्थक्रिया होती ही नहीं है तो उस अर्थक्रियाके अभावकी व्याप्ति निःस्वभावपनेसे है। जहां कोई परिणमन नहीं है वहां कोई स्वभाव नहीं है। तो इस तरह जब सब प्रकारकी अर्थक्रिया जहां सम्भव नहीं, अनर्थककारी कल्पित तत्त्व है वह तो समस्त वचनोंमें और विकल्प विचारोंसे निष्क्रान्त है। अर्थात् न वह किसी वचनका विषयभूत है और न किसी विकल्पका विषयभूत हो सकता है। तब उसका अभाव ही है। यों प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव न माननेपर कार्यद्रव्य अनादि अनन्त हो जावेंगे यह दूषण तो दिया ही था लेकिन इस सम्बन्धमें विचार करनेपर सकलशून्यपना हो जायगा, यह भी बात आपत्ति की आती है।

वर्णोंकी आनुपूर्वीकी अपौरुषेयता व प्रागभाव प्रध्वंसाभावरहितता मन्तव्यकी मीमांसा—अब यहां मीमांसक कहते हैं कि हम लोग वर्णोंको आनुपूर्वी को अपौरुषेय मानते हैं। वर्णोंमें जो क्रम लगा हुआ है वह अपौरुषेय है और उस आनपूर्वीका ही हम प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं मानते इस कारण ये सब उलाहना देना सही नहीं है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन भी असंगत है क्योंकि वर्णोंको छोड़कर अन्य कोई आनुपूर्वी तो नहीं होती। वर्णोंके ही विन्यासका ढग आनुपूर्वी कहलाता है। तो जब वर्णोंका नित्य स्वरूप प्रागभाव प्रध्वंसाभाव रहित स्वरूप सिद्ध नहीं होता है तब फिर उनके सम्बन्धमें आनपूर्वीकी कल्पना करना असम्भव है। और, किसी तरह आनपूर्वीकी कल्पना कर भी ली जाय तो उसके आन-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पूर्वोकी कल्पना भी विचार करनेपर कोई तात्विक सिद्ध नहीं होती। इस बातको बहुत विस्तारसे आगेकी कारिकामें कहेंगे, जहाँपर आगमका प्रकरण चलेगा वहांपर इस बातका निराकरण विस्तारसे किया जायगा। इस प्रसंगमें तो इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि जब शब्दमें नित्यता नहीं ठहरती, यह बात विस्तार पूर्वक बतायो है, तो इस प्रकरणसे यह जान लेना चाहिए कि प्रागभाव प्रध्वंसाभावका सब जगह लोप करनेपर ये समस्त दोष आते हैं। कार्य द्रव्य अनादि बनेगा, अनन्त बनेगा और कुछ रहेगा ही नहीं। सर्व शून्य हो जायगा, इन सब दूषणोंका प्रसंग निवारित नहीं किया जा सकता। प्रागभाव और प्रध्वंसाभावके माननेपर हीं यह दूषण टाला जा सकता है।

प्रागभाव व प्रध्वसाभावका अपन्हव माननेपर बाधा बताकर अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभावका अपलाप करनेपर होनेवाली बाधाके कथनका उपक्रम—यहाँ प्रसंग यह चल रहा है कि समंतभद्राचार्यने यह निर्णय दिया कि सर्वज्ञ आप्त प्रभु अरहंत हो हैं निर्दोष होनेसे, और वे ही निर्दोष हैं, क्योंकि उनके वचन युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध हैं। इस बातको अन्वयव्यतिरेक पूर्वक कहा याने व्यतिरेक पद्धतिसे यह भी कहा कि जो आपके शासन अमृतसे बाह्य हैं, सर्वथा एकान्तवादी हैं उनका कथन प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे वाधित है अतः अन्य कोई आप्त नहीं। इसके विस्तारसे पूछा गया कि एकान्तवादियोंका शासन कैसे प्रमाण विरुद्ध है? तो सामान्य रूपसे एकान्तवादियोंकी विरुद्धता बताकर यहाँ भावैकान्त माननेपर किस तरहसे विरोध आता है यह बात कही जा रही है और यहाँ तक यह बताया कि भावैकान्त माननेपर याने अभाव न माननेपर वस्तु सर्वात्मक अनादि अनन्त और निःस्वरूप बन जाता है याने अभाव चार होते हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव, उनमें प्रागभाव न माननेपर कार्य अनादि बनेगा, प्रध्वंसाभाव न माननेपर कार्य अनन्त हो जायगा, अन्योन्याभाव न माननेपर पदार्थ सर्वात्मक हो जायगा और अत्यन्ताभाव न माननेपर पदार्थ निःस्वभाव हो जायगा। इनमेंसे इस प्रकृत कारिकामें यह बताया गया कि प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव न माननेपर कार्य अनादि अनन्त किस प्रकारसे होगा और इसके साथ ही अनेक विडम्बनायें कैसे हो जाती हैं? इसका वर्णन करके अब प्राचार्य इतरेतराभाव और अत्यन्ताभाव न मानने वाले एकान्तवादियोंके प्रति दूषण बतानेकी इच्छासे अब आचार्य समन्तभद्र ११ वीं कारिका कहे रहे हैं।

सर्वात्मकं तदेकं स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।
अन्यत्र समवाये न व्यपदिश्येत सर्वथा ॥ ११ ॥

अन्यापोह न माननेपर वस्तुके सर्वात्मकताका प्रसंग और अत्यन्ताभाव न माननेपर व्यपदेशके भी सर्वथा अभावका प्रसंग—अन्यपोहका अपलाप करनेपर

http://sahjanandvarnishastra.org/

समस्त पदार्थ सर्वात्मक हो जायेंगे अथवा जिसका जो मंतव्य तत्त्व है वह न ठहर पायेगा। इष्ट अनिष्ट सब एक हो जायेंगे। इसी प्रकार अत्यन्ताभाव न माननेपर याने एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें समवाय तादात्म्य माननेपर फिर वह किसी भी नामसे व्यपदिष्ट न हो सकेगा। इस कारिकामें तब इस शब्दके द्वारा सर्व प्रवादियोंका इष्ट तत्त्व ग्रहण किया गया है। याने वह तत्त्व सर्वात्मक एक हो जायगा। याने जिसका जो कुछ इष्ट मतव्य है वह इष्ट अनिष्ट स्वरूपसे भी हो गया क्योंकि अन्यापोह तो माना नहीं। जैसे क्षणिकवादी मानते हैं कि प्रत्येक पदार्थ क्षणिक हैं और उनके लिए अनिष्ट है नित्यपना, तो जब अन्यापोह न रहा तो इसके मायने यह रहा कि क्षणिक और नित्य सब कुछ एक हो गया फिर इष्ट मंतव्य कहाँ रहा? ऐसी ही सबकी बात समझना चाहिए। तो यों अन्यापोहके न माननेपर इष्ट तत्त्व सर्वात्मक बन जाता है। फिर इष्ट ही नहीं रहता। इसी तरह अन्यापोह न माननेपर अर्थात् स्वसमवायी पदार्थका अन्य समवायियोंमें समवाय माननेपर जैसे कि चेतन अपने चेतनमें समवाय है और उसका मान लिया जाय समवाय अचेतन प्रधान आदिकमें समवाय, क्योंकि अत्यन्ताभाव न माननेपर यही तो मानना होगा, तो यों अन्यत्र समवाय माननेपर सभीको इष्ट तत्त्व किसी भी प्रकारसे व्यपदिष्ट नहीं हो सकता। अपने इष्ट स्वरूपसे व्यपदेश करनेपर याने अपने इष्ट स्वरूपसे नाम लेनेपर अनिष्ट स्वरूपसे भी व्यपदेश बन जायगा क्योंकि अत्यन्ताभाव तो माना नहीं जा रहा अथवा अनिष्ट स्वरूपसे व्यपदेश न करनेपर इष्टस्वरूपसे भी व्यपदेश न बनेगा क्योंकि स्वरूपसे जो इष्ट है अथवा अनिष्ट है उसके तीनों कालोंमें भी व्यावृत्ति नहीं मानी गई है। अतः अत्यन्ताभाव न माननेपर कोई व्यपदेश व्यवहाररूप ही नहीं बन सकता, यह बात स्पष्टतया सिद्ध हो जाती है।

अन्यापोहका याने इतरेतराभावका लक्षण—अब अन्यापोहकी बात विस्तारसे सुनिये! अन्यापोह कहते किसे हैं? अन्य स्वभावसे स्वभावकी व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह है, जैसे कि घट और पट। घटमें स्वभाव दूसरे प्रकारका है पटमें स्वभाव दूसरे प्रकारका है। तो घट स्वभावसे पट स्वभावकी व्यावृत्ति है यही अन्यापोह कहलाता है। अन्यापोहके लक्षणमें यही कहना चाहिए कि स्वभावान्तरसे स्वभावकी व्यावृत्ति होना सो अन्यापोह है। सो स्वभावसे व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह नहीं है। स्वभावान्तर कहना होगा अन्यापोहके लक्षणसे और स्वभावान्तर शब्द कहनेसे यह बात अपने आप बन जायगी कि अपने स्वभावसे व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह नहीं। यदि कोई पदार्थ अपने स्वभावसे ही व्यावृत्त हो जाता है तो उसमें तो स्वका ही अभाव हो गया। अन्यापोह न रहा, वह तो स्वापोह हो गया। खुद ही कुछ न रहा। इस कारण स्वभावान्तरसे स्वभावकी व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह है, यह बात समीचीन है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रागभाव प्रध्वंसाभावमें अन्यापोहपने याने इतरेतराभावपनेके प्रसंग का अभाव—यहाँ कोई शंका करते हैं कि फिर तो प्रागभाव और प्रध्वंसाभावमें अन्यापोहका प्रसंग आ जायगा। देखो! प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव ये दोनों अलग हैं ना, इनमें एक दूसरा तो नहीं मिलता। प्रागभावमें प्रध्वंसाभाव नहीं, प्रध्वंसाभावमें प्रागभाव नहीं। तो इसमें अन्यापोहपनेका प्रसंग आ जायगा। इसके समाधानमें कहते हैं कि यह प्रसंग नहीं आता, क्योंकि कार्यद्रव्यके पूर्व और उत्तर कालके परिणामोंमें स्वभावान्तरपना होनेपर भी कार्यद्रव्यकी पूर्वोत्तर परिणामोंसे व्यावृत्तिकी विशिष्टता है, जो विशिष्टता इतरेतराभावमें सम्भव नहीं है और इस व्यावृत्तिकी विशिष्टता होनेसे यह प्रसंग नहीं आता कि प्रागभाव और प्रध्वंसाभावमें अन्यापोह है। वे स्वयं ही व्यवस्थित है। कार्यद्रव्यका पूर्व और उत्तर परिणामोंमें व्यावृत्ति विशेष है। वह किस तरह है इसका स्पष्टीकरण करते हैं—जिसके अभावमें नियमसे कार्यकी उत्पत्ति हो उसको प्रागभाव कहते हैं और जिसके सद्भावमें नियमसे कार्यकी विपत्ति हो अर्थात् विनाश हो उसको प्रध्वंस कहते हैं। परन्तु इतरेतराभावके अभावमें कार्यकी उत्पत्ति हो और इतरेतराभावके सद्भावमें कार्यका विनाश हो यह बात नहीं देखी जाती है। अब इसका एक उदाहरण लेकर समझिये इतरेतराभाव है जैसे पानीका स्वरूप नहीं, इतरेतराभाव है लेकिन कहीं जलका अभाव होनेपर भी अग्निकी उत्पत्ति देखी जाती। जैसे कि प्रागभावमें बात थी कि मृत्पिण्डके अभावमें घटकी नियमसे उत्पत्ति देखी गई थी सो यहाँ इतरेतराभावमें ऐसा नहीं है कि जलका अभाव होनेपर अग्नि की उत्पत्ति हो ही जावे। सो जलका अभाव होनेपर भी अग्निकी अनुत्पत्ति होनेसे और कहीं कहीं जलके सद्भाव होनेपर भी अग्निका विनाश न होनेसे यह बात सिद्ध होती है कि इतरेतराभावमें वह व्यावृत्ति विशेष नहीं है कि इतरेतराभावके अभावमें कार्यकी उत्पत्ति हो और इतरेतराभावके सद्भावमें कार्यका विनाश हो, इस कारण कार्यद्रव्यका पूर्वोत्तर परिणामके साथ याने प्रागभाव और प्रध्वंसाभावके साथ एक विशिष्ट व्यावृत्ति है और इसी कारण यह आक्षेप नहीं किया जा सकता कि प्रागभाव और प्रध्वंसाभावमें अन्यापोहपनेका प्रसंग आ जायगा।

अन्धकारमें रूपज्ञानकी प्रागभावरूपता या प्रध्वंसाभावरूपता बननेके आक्षेपका अनवसर—यहाँ शंकाकार कहते हैं कि कहींपर अंधकारका अभाव होनेपर रूपज्ञान भी तो उत्पन्न होता है। जैसे हम आप सब मनुष्योंको देखा जा रहा है कि अंधकार मिटा और पदार्थोंके रूपका ज्ञान हो गया। सो अंधकारका अभाव होनेपर रूपज्ञानकी उत्पत्ति हो गई अतएव रूपज्ञानका प्रागभाव अंधकारको मान लेना चाहिए क्योंकि यहाँ यह बात कही जा रही है कि जिसके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्ति हो वह प्रागभाव कहलाता है। तो अंधकारके नाश होनेपर रूपज्ञान बन गया। फिर रूप ज्ञान प्रागभाव अंधकार क्यों न कहलायेगा? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह संदेह बिना जाने हुआ है। प्रागभावके लक्षणमें नियमतः शब्द भी पड़ा हुआ है याने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिसका अभाव होनेपर नियमसे कार्यकी उत्पत्ति हो वह प्रागभाव कहलाता है। ऐसे नियमका ग्रहण करनेपर अब यह आक्षेप न बनेगा क्योंकि किन्हीं किन्हीं जीवोंको अंधकारमें भी रूपज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे कोई पुरुष एक विशिष्ट अंजन नेत्रमें लगा ले तो उसे भी अंधकारमें रूपज्ञान हो जायगा। रात्रिको देख सकने वाले तिर्यञ्चोंको अंधकारमें भी रूपज्ञान हो जाता है। तब नियम तो न रहा अतः रूपज्ञान का प्रागभाव अंधकार नहीं हो सकता। जिस प्रकार अंधकारके अभावमें नियमसे ज्ञान नहीं हुआ करता अतः वह रूपज्ञानका प्रागभाव नहीं है, इस ही तरह अंधकाररूप ज्ञानका प्रध्वंस भी नहीं है। कोई यहां यह सन्देह करले कि जिसके सद्भावमें कार्यका नाश हो वह प्रध्वंस कहलाता है। तो अब अंधकारके सद्भावमें रूपज्ञानका नाश हो गया; अंधेरा हो जानेसे अब रूपज्ञान न बना तो रूपज्ञानका प्रध्वंस अंधकार कहलायेगा। सो भी बात नहीं क्योंकि यहाँ भी "नियमतः" इस शब्द दृष्टि देना है। प्रध्वंसके लक्षणमें भी यह बताया है कि जिसके सद्भाव होनेपर कार्यका नियमसे विनाश हो उसे प्रध्वंस अथवा प्रध्वंसाभाव कहते हैं। लेकिन इस आक्षेप वाले दृष्टान्त में यह नियम नहीं पाया जाता कि अंधकारका सद्भाव होनेपर रूप ज्ञानका नियमसे विनाश हो। रात्रिमें देख सकने वाले पशुओंको अंधकारका सद्भाव होनेपर भी रूप-ज्ञान बनता रहता है। अतः रूपज्ञानका प्रध्वंसाभाव अंधकारको नहीं कहा जा सकता। तो जब प्रागभाव और प्रध्वंसाभावके लक्षण जुदे हैं और उनमें इतरेतरा-भावके प्रसंगकी बात नहीं आती, तब अन्यापोहका जो लक्षण कहा गया है कि स्व-भावकी व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह है, यह लक्षण बिल्कुल युक्त है। और अन्या-पोहके इस लक्षणमें कोई बाधा नहीं आती।

अन्यापोहलक्षणकी अत्यन्ताभावमें व्याप्ति न होनेसे अतिव्याप्तिदोष-रहितता—अन्यापोहके लक्षणका अत्यन्ताभावमें भी अभाव है। अत्यन्ताभाव तो तीनों कालकी अपेक्षा रखने वाला है। तो तीनों कालकी अपेक्षा रखकर जो अभाव जोना जाता है ऐसे अत्यन्ताभावमें अन्यापोहके लक्षणका अभाव है। अतः अतिव्याप्ति नहीं बनती। अन्यापोहका लक्षण अत्यन्ताभावमें नहीं जाता, क्योंकि घटपटका जो इतरेतराभाव है वह तीनों कालोंकी अपेक्षा रखने वाला नहीं है। अर्थात् शाश्वत तीनों काल घट पटका परस्पर अभाव हो सो बात नहीं है। कभी पट घटरूप भी परिणम सकता है। कभी घट पटरूप भी परिणम सकता है। उस प्रकारके परिणमन होनेका जब कारण साधन समस्त मिल जायगा तो उस तरहका परिणमन होनेका विरोध नहीं है। जैसे कपड़ा जीर्ण शीर्ण हो गया, फट गया मिट्टीमें मिल गया। अब धीरे-धीरे वे पट परमाणु मिट्टी बन जाते हैं और बहुत समय बादमें मिट्टीका घड़ा बनाया जा सकता है। तो देखो— जो पुद्गल परमाणु एक पट स्कंधरूपमें थे कालान्तरमें वे मिट्टीरूपमें आ गये और उनका घट परिणाम बन गया। तो इतरेतराभाव जिनमें पाया जाता है उनमें तीनों काल अभाव नहीं है। कोई एक दूसरे रूप, पर्यायरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

 http://www.jainkosh.org

परिणम सकता है। पुद्गलके ऐसे परिणमनोंमें अनियम देखा गया है। जैसे चन्द्रकान्तमणि वाली पृथ्वीसे जलकी उत्पत्ति देखी गई है, जलोंसे मुक्ताफल आदिकरूप पृथ्वीकी उत्पत्ति देखी गई है। सूर्यकान्त नामक पृथ्वीसे अग्निकी उत्पत्ति देखी गई है। जब इस प्रकार परस्पर परिणाम हो जाया करता है तो पुद्गलके परिणामों में अत्यन्ताभाव नहीं कहा जा सकता। तो जैसे अन्यापोहके लक्षणकी अव्याप्ति नहीं बनती इसी प्रकार अन्यापोहके लक्षणमें अव्याप्ति दोष भी नहीं आता। हाँ जैसे अत्यन्ताभाव चेतन और अचेतन पदार्थमें है। जीव और पुद्गलमें जीव और जीवातिरिक्त अन्य समस्त द्रव्योंमें तीनों काल कभी परस्पर तादात्म्य परिणाम नहीं हो सकता कि कोई जीव अजीव बन जाय, कोई अजीव जीव बन जाय। तो द्रव्य और द्रव्योंमे अत्यन्ताभाव माना गया है तीनों कालमें भी कोई द्रव्य किसी अन्य द्रव्यरूप नहीं परिणम सकता। यह असाधारणस्वरूप है। यह तत्त्व अन्य तत्त्वरूपसे विरोध रखता है। अतएव अन्यापोहका लक्षण जो बताया गया है कि स्वभावान्तरसे स्वभाव की व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह है, वह पूर्णतया युक्तिसंगत है।

विज्ञानमात्रतत्त्ववादियोंके यहां भी अन्यापोहके मन्तव्यकी अनिवार्यता—अब यहां क्षणिकवादी प्रश्न करते हैं कि देखिये! इतरेतराभावका अपन्हव करनेपर इतरेतराभावको न माननेपर चार्वाकके यहां पृथ्वी तत्त्व समस्त जल अग्नि आदिक रूप बन जायगा सो बन जाय, सही बात है। और, सांख्यके यहाँ कोई एक पदार्थ महत् अहंकार आदिक अनेक परिणामोंरूप हो जायगा, सब कुछ अव्यवस्था हो जायगी सो वह भी हो लेकिन जो केवल विज्ञानमात्र ही तत्त्व मानते हैं ऐसे क्षणिकवादियोंके यहाँ क्या किस रूप बनेगा? जब केवल एक ज्ञान ही तत्त्व है, दूसरा कुछ है ही नहीं तो उस विज्ञानाद्वैतके सिद्धान्तमें अब क्या किस अन्यरूप होगा? अत: अन्यापोहके न माननेपर भी विज्ञानाद्वैतवादियोंका कुछ भी बिगाड़ नहीं होता। उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस प्रकार कहने वाले विज्ञानाद्वैतवादी भी विवेकशील नहीं जचते। देखिये—जो केवल विज्ञानाद्वैत मान रहे हैं, विज्ञानमात्र तत्त्व कहते हैं, उनको भी अन्यापोह मानना पड़ेगा। अनेकान्तकी सिद्धि स्वीकार करनी होगी, क्योंकि उनका जो ज्ञानमात्र तत्त्व है उस ज्ञानमात्र तत्त्व स्वरूप की नीलादिक ग्राह्याकारोंसे कथंचित् व्यावृत्ति तो माननी ही होगी। यानि ज्ञानमें नीलपीत आदिक आकार आये है तभी तो ज्ञानकी मुद्रा बनती। ज्ञान मायने जानना। और जानना क्या चीज बनेगी? जब उसमें कुछ समझ हो न गया हो तो ज्ञानमें नीलादिक आकार आते हैं, वे कहलाते हैं ग्राह्याकार। जो ज्ञानमें आया हुआ है स्वरूप सो ग्राह्याकार कहलाता है। तो ग्राह्याकारोंसे वह ज्ञान तत्त्व विलक्षण है या नहीं? उन ग्राह्याकारोंसे व्यावृत्ति है ऐसा मानना होगा और ऐसा माननेपर इतरेतराभाव आ ही गया। और अनेकान्त की भी सिद्धि होगई। द्वैत तो आगया वहाँ, ज्ञान तत्त्व और ग्राह्याकार, ये दो बातें तो आ गईं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानतत्त्व और ग्राह्याकारमें कथंचिद् व्यावृत्तिकी सिद्धि व सर्वथा व्यावृत्तिकी असिद्धि—यदि कहो कि ग्राह्याकार नीलादिक पदार्थ अत्यन्त जुदे हैं और सम्वित् ज्ञानमात्र जुदा है याने ज्ञानमें ग्राह्याकार नहीं है। वे पृथक पृथक चीजें हैं। यदि ऐसा माना जायगा तब फिर सम्बन्ध नहीं बन सकेगा कि इस ज्ञानने तो यह जाना, इस ज्ञानका यह ज्ञेय है, इस प्रकारका सम्बन्ध न बन सकेगा। क्योंकि यदि सम्वित्तिसे ग्राह्याकारको कथंचित् व्यावृत्त न मानकर सर्वथा व्यावृत्त मान लिया गया ना कि ये एक दूसरेसे बिल्कुल हटे हुए दो भाव हैं—ज्ञानभाव बिल्कुल जुदा है और नील पीतादिक ग्राह्याकार बिल्कुल जुदी चीज है। ऐसा सर्वथा भेद माननेपर अब सम्वित्में याने ज्ञानमात्र स्वरूपमें और ग्राह्याकारमें कोई सम्बन्ध तो न रहा। सर्वथा व्यावृत्तोंमें उपकार्य उपकारक भाव नहीं रहता क्योंकि वे सर्वथा ही जुदे हैं। तो जब उपकार्य उपकारकभाव न रहा तो कोई सम्बध बन ही नहीं सकता। उपकार्य उपकारक भावका सम्बन्ध पाये बिना समवाय आदिक सम्बन्ध बन ही नहीं सकते। इस विज्ञानमात्र तत्त्वके मानने वालोंको भी यह मानना होगा कि उस विज्ञान में नील पीत आदिक ग्राह्याकार हैं। और, वह नील पीतादिक ग्राह्याकारका स्वरूप और है। सम्वितका स्वरूप और है, लेकिन है वह एक आधारमें अतएव ज्ञानमात्रसे नीलादिक ग्राह्याकार कथंचित् व्यावृत्त है। लो यही तो इतरेतराभावका रूप आया और द्वैतकी सिद्धि भी हो जाती है। यदि यह कहा जाय कि ज्ञानमात्र स्वरूपमें और नीलादिक ग्राह्याकारमें परस्पर अतीव अभेद है, व्यावृत्ति नहीं है तब तो किसी एक की स्वभाव हानि हो गयी। जब ज्ञान मात्र और ग्राह्याकार ये सर्वथा एक मान लिए गए तो यहां कौन रहा? यदि ज्ञानमात्र रहा तो ज्ञेयाकार रहा तो ज्ञेयाकार स्वभाव नष्ट हो गया और यदि ग्राह्याकार रहा तो ज्ञानमात्र स्वभाव नष्ट हो गया। सो उस ज्ञानमात्रमें ग्राह्याकार एक हो जाय या कहिये - ग्राह्याकारमेमें यदि ज्ञानका अनुप्रवेश हो जाय, एक मिल जाय तब तो ग्राह्याकार ही रहा। अब सम्विदाकार न रहा। ज्ञानस्वरूप कुछ न रहा, और, जब ज्ञानाकार न रहा तो ग्राह्याकारका भी अभाव हो गया। क्योंकि जब ज्ञान ही न रहा तो ग्राह्याकारका योग ही कैसे बनेगा? ग्राह्याकार कहते हैं उसे जो कि ग्रहणमें आ सके। अब किसके ग्रहणमें आये। सम्वित् तब तो रहा ही नहीं। सो उस ग्राह्याकारमें यदि ज्ञानका प्रवेश मान लेते तो कुछ नहीं रहता, अथवा ज्ञानमात्र तत्त्वमें ग्राह्याकारका प्रवेश मान लेते हैं कि ग्राह्याकार समा गया तब ज्ञान ही रहा, ग्राह्याकार कुछ न रहा। और जब ग्राह्याकार कुछ न रहा तो ग्राह्याकारसे शून्य ज्ञानमात्र तत्त्व कुछ हो ही नहीं सकता, क्योंकि विषयाकार से रहित सम्वेदनमात्र कुछ भी तत्त्व नहीं है। अतः ज्ञानमात्र और ग्राह्याकार ये दो बातें माननी होंगी और इनकी कथंचित् परस्पर व्यावृत्ति भी। सो क्षणिकवादी भी अन्यापोहका अपलाप नहीं कर सकते हैं।

विज्ञानको ग्राह्यग्राहकविधुर मानने वाले अन्यापोहापलापियोंके यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी अगत्या स्वभाव व्यावृत्तिकी आपतितता यहाँ क्षणिकवादी प्रश्न करते हैं कि बुद्धिको छोड़कर अन्य कोई चीज ग्राह्य होती ही नहीं है। वही स्वयं एकमात्र है, वहाँ ग्राह्य ग्राहकका भेद नही है। उसमें अन्य कोई चीज बुद्धि द्वारा ग्राह्य नहीं होती। अतः जब उस ज्ञानाद्वैतमें ग्राह्य ग्राहकपना नहीं है तब वही एकमात्र बुद्धि ही तत्त्व है, अन्य कुछ है ही नहीं, तब ज्ञानाद्वैतके सम्बंधमें इतरेतराभावकी सिद्धि करना युक्त नहीं हो सकता है। इसके समाधानमें कहते हैं कि मान लो मूक सम्वित्तिमात्र ही है और इस सम्वित्तिके स्वलक्षणमें ही प्रत्यक्ष वृत्ति है याने ज्ञानका जो स्वयं स्वलक्षण है इस हीमें वह रह रहा है, इतनेपर भी यह तो मानना पड़ेगा कि सम्वेदनमें सम्वेद्याकारसे विविक्त करने वाले स्वभावान्तरकी उपलब्धि नहीं है। लो इस तरह स्वभावान्तरसे स्वभावव्यावृत्ति तो सिद्ध होती ही है। याने सम्वेदनको केवल सम्वेदनमात्र माननेपर इतना तो मानना पड़े। कि सम्वेदनसे भिन्न अन्य स्वभाव इसमें नहीं है। तो स्वभावव्यावृत्तिके सिद्धान्तसे कहाँ हट सके ? तब क्षणिकवादी भी स्वभावान्तरसे स्वभावव्यावृत्तिरूप अन्यापोहका उल्लघन नहीं कर सकते और फिर देखिये चित्र ज्ञानवादियोंके यहाँ अर्थात् जो ज्ञानको एक चित्राद्वैत मात्र मानते हैं उनके यहाँ चित्रज्ञानमें जहाँ कि अनेक विषयोंका युगपत् प्रतिभास होता है उसमें जो नील पीत आदिक अनेक आकार झलक रहे हैं, ग्राह्य हो रहे हैं तब उनकी परस्पर व्यावृत्ति भी माननी ही पड़ेगी। अभी विज्ञानाद्वैतवादियोंके सम्बन्धमें कहा था। अब यहां चित्रज्ञानवादियोंके सम्बन्धमें कहा जा रहा है। दार्शनिकोंका सिद्धान्त चित्रज्ञानमात्र है उनके इस ज्ञानकी चित्रता तो तभी कहलायेगी जब ज्ञानमें नील पीत आदिक अनेक आकार प्रतिभात माने जायें। सो जब उसमें अनेक आकार माने गए तो यह तो मानना होगा कि उन अनेक आकारोंमें एक आकार अन्य आकारसे व्यावृत्त है, नहीं वे अनेक आकार ही न कहलायेंगे। फिर चित्रज्ञान भी न कहलायेगा। जैसे कोई एक ही आकार प्रतिभासित हो ज्ञानमें तो उसका नाम चित्रज्ञान तो नहीं हो सकता। यदि चित्रज्ञानमें प्रतिभासित होने वाले अनेक आकारोंको परस्पर व्यावृत्त न माना जाय तो चित्रज्ञानका स्वरूप न बनेगा। और परस्पर व्यावृत्त मान लिया तो यही तो इतरेतराभावका रूप है। सो देखो—चित्रज्ञानवादियोंको भी इतरेतराभाव मानना ही पड़ा।

अन्यापोहके अपन्हवमें बाह्य नीलाद्याकारोंका भी अभाव होनेसे चित्रज्ञानकी असिद्धि—देखिये ! अन्यापोहके अभावमें यह भी दूषण है कि चित्रज्ञानमें जिनका आलम्बन है ऐसे नीलादिक पदार्थ भी अभेदस्वभाव बन जायेंगे और फिर जैसे कोई एक नील है तो वह नील स्वभावरूप ही है। अन्यरूप तो नहीं। यों उस चित्रज्ञानमें यदि उन आकारोंको व्यावृत्ति नहीं मानते तो चित्रज्ञान नहीं बनता, और बाह्य में भी तो पदार्थ हैं कुछ, जो कि ज्ञानमें आये. उन पदार्थोंमें भी यदि परस्पर अभाव नही मानते तो न ज्ञान बनेगा, न विश्व रहेगा। तब चित्रज्ञानवादियोंको भी इतरेतरा-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भाव मानना ही पड़ा। क्योंकि प्रतिभास भेदके अभावमें भी यदि नीलादिकमें भेदकी व्यवस्था बनेगी तब तो कोई भी चीज अभिन्न और एक नहीं ठहर सकती। कोई पदार्थ भिन्न–भिन्न हैं इसकी व्यवस्था प्रतिभास भेदसे ही सम्भव है। और यदि प्रतिभास भेद न होनेपर भी यदि नील पीत आदिक पदार्थोंको भिन्न–भिन्न स्वीकार कर लेते हो तब फिर कोई चीज एक और अभिन्न ठहर ही नहीं सकती निरंश स्वलक्षणको एक माना है। निरंशका अर्थ है – जिसके अन्य कुछ अंश नहीं हो सकते। और, स्वलक्षणका अर्थ है कि उस पदार्थका एक स्वरूप, उस ज्ञानका ही एकमात्र स्वरूप। तो ऐसे निरंश स्वलक्षण ज्ञानमें भी अनेकपना आ बैठेगा, क्योंकि प्रतिभासभेदके न होनेपर भी भेद माननेकी हठ की जा रही है। इस कारण नीलादिक विषयोंमें स्वरूपभेदको जो चाहते हो, जो यह स्वीकार करते हो कि पीतादिक पदार्थ ये भिन्न–भिन्न हैं तो उनको उनका प्रतिभासभेद भी मानना पड़ेगा। एक चित्रज्ञान हो रहा है लेकिन उसमें जो अनेक प्रतिभास हैं वे मानने ही होंगे जैसे कि अनेक ज्ञानोंमें प्रतिभासभेद हैं ना, तो उस भिन्नताके कारण उन्हें माना जा रहा है. और जब चित्रज्ञानमें प्रतिभास भेद और पीतादिक विषयोंकी विभिन्नता स्वीकार कर ली तब अन्यापोहका जो लक्षण किया जा रहा है कि स्वभावान्तरसे स्वभावकी व्यावृत्ति होना सो इतरेतराभाव है, यह पूर्णतया युक्तिसंगत बनता है। ज्ञानमें आये हुए पदार्थोंका जब परस्परमें भेद सिद्ध हो गया तो चित्रज्ञानका अपने प्रतिभाससे नीलाकार पीताकार आदिक ज्ञानाकारोंसे विभिन्नता सिद्ध हो गई और विषयकी चित्रपटादिकके अपने आकारोंमें नीलादिकसे विभिन्नता सिद्ध हो गई। तो यों अन्यापोह मानना ही होगा। तब वस्तुका स्वरूप कायम रह सकता है।

चित्रज्ञानकी नीलाद्याकारोंसे व्यावृत्तिकी साधना– यहां शंकाकार प्रश्न करते हैं कि किस प्रमाणसे चित्रज्ञानकी ज्ञानमें प्रतिभासित हुए नीलाकार आदिक अनेक आकारोंसे भिन्नता सिद्ध होगी? सो इस प्रश्नके उत्तरमें सुनिये! चित्रज्ञान अपने प्रतिभासित ज्ञानाकारोंसे भिन्न है क्योंकि चित्रज्ञान है अनेक स्वभावरूप और ये ग्राह्याकार नीलादिक आकार जितने हैं वे सब प्रत्येक हैं एक एक स्वभावरूप घटरूप आदिकको तरह। जैसे—घटमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये सब हैं अर्थात् रूप रसादिकको को छोड़कर घट कुछ न मिलेगा! सो घट गुणी है और उसमें रूप, रसादिक अनेक गुण हैं। अब लक्षणोंपर विचार किया जाय तो रूपादिक गुणों घटका स्वरूप भिन्न है अतएव घट और रूपादिक इनकी परस्परमें कथंचित् व्यावृत्ति है, तभी तो रूप घट न कहलायेगा। घट है, वह सर्वात्मक है, रूपादिक हैं वे एक एक धर्मस्वरूप हैं। तो जैसे घट और रूप एकानेक स्वभाववाले होनेसे घटकी रूपादिकसे व्यावृत्ति है इसी तरह चित्रज्ञान अनेक स्वभावरूप है और उसमें प्रतिभासित हुए नील आदिक प्रत्येक एक एक है। उन प्रत्येक अनेकोंसे इस अनेक स्वभावात्मक ज्ञानकी व्यावृत्ति हो जाती है। देखिये! नीलादिक प्रतिभास ही अथवा नीलादिक आकार ही अनेक स्वभाव नहीं हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जाते हैं और न यह कह सकते हैं कि नीलादिज्ञान चित्रपटादिका प्रतिभास एकस्वभावात्मक है। चित्रज्ञान अनेकस्वभावात्मक है और उसमें जितने आकार है वे तद्गत धर्म हैं। इस प्रकार सम्वेदन अनेकस्वभावात्मक है और बाह्य द्रव्य भी नाना हैं, वे भी एक न बन जायेंगे ? सो यह एकानेकस्वभावपना हेतु असिद्ध नहीं है, एकानेकस्वभावपना ज्ञान और ज्ञानगत ग्राह्याकार इसमें पाया जाता है एकानेकस्वभावपना बाह्य पदार्थोंमें भी एक धर्मी पिण्ड और सद्भूत अनेक गुण उनमें पाये जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो कोई द्रव्य ही मात्र रहेगा, कोई रूपादिक न रहेंगे। यदि सर्वथा घटसे रूप, रसादिक अभिन्न हो जायें तो रूप है सो ही घट है, रस है सो ही घट है। किसी एक धर्ममें वह घट बन जाय तो कुछ एक कह लीजिए अथवा कहलो कि वहाँ द्रव्य नहीं है, रूपादिक ही मात्र कुछ है। जो ऐसे अनेकस्वभाव घटादिक द्रव्य हैं और रूपादिक अनेकस्वभाव नहीं हैं याने रूप केवल रूपात्मक है, रस केवल रसात्मक है, लेकिन घट अनेकात्मक है। तो जैसे एकानेकस्वभावरूप होनेसे घटसे रूपादिककी कथंचित् व्यावृत्ति मानी गई है ऐसे ही चित्रज्ञानकी भी बात है।

चित्रज्ञानसे ग्राह्याकारोंकी कथंचित् व्यावृत्ति न माननेपर अनिष्टापत्ति—यदि चित्रज्ञानसे नीलादिक आकारोंकी व्यावृत्ति न हो, चित्रज्ञान अनेक स्वभावात्मक एक पिण्ड है और नीलादिक एक एक स्वभावरूप अनेक हैं अथवा उन नीलादिकमें प्रतिनियत नील एकरूप है व चित्रज्ञान नानाकारमय है। ऐसी बात यदि न मानी जायगी तो वहाँ कहना होगा कि या तो चित्रज्ञान ही रह गया। नीलादिक प्रतिभास कुछ न रहे। वहाँ यह कहा जा सकता है कि स्वभावकी एकता होनेपर भी द्रव्यमें और चित्रज्ञानमें जो प्रतिभासकी विलक्षणता है यह कारण और सामग्रीके भेदसे हो रही है, वस्तुतः नहीं। जैसे कि कोई पुरुष दूर खड़ा है, कोई पुरुष किसी एक पदार्थके निकट खड़ा है तो उन दो पुरुषोंको किसी एक पदार्थके विषयमें जो भिन्न रूपसे प्रतिभास हो रहा है, जो वस्तुके निकट है उसको उसका स्पष्ट प्रतिभास है, जो उस पदार्थसे दूर है उसको उसका अस्पष्ट प्रतिभास है। जो उस पदार्थसे दूर है उसको तद्विषयक अस्पष्ट प्रतिभास है। तो यह प्रतिभास भेद कह दिया कि कारण सामग्रीके भेदसे है। ऐसे ही किसी भी पदार्थमें स्वभावकी एकता होनेपर भी कह देंगे कि इसमें प्रतिभासभेद जो हो रहा है, जैसे कि चित्रपट आदिक द्रव्य जैसे पटमें नाना चित्रता है, नानारूपता है, ऐसे ही चित्रपट आदिक द्रव्य एक स्वभाव होकर भी चक्षु आदिक कारण साधन सामग्रीके भेदसे वे रूपादिक विलक्षणता आकारको धारण कर रहे। चित्रपट एक ही है पर इन्द्रिय और दूर पास आदिकके भेदसे भेद है। यों कह सकेंगे, यों ही कह बैठेंगे कि अन्तःकरणकी वासना है साधन है, उसके भेदसे नाना नील, पीतादिक प्रतिभासरूप है। और, ऐसा न माननेपर प्रत्येक पुरुषके प्रति विषय स्वभावका भेद बन बैठेगा क्योंकि सामग्रीके सम्बन्धका भेद बना रखा है ना, जैसे किसी एक अर्थके प्रतिभासके सम्बन्धमें दूरमें रहने वाले पुरुषकी ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साधक सामग्री अन्य ही है और आसन्न देशमें रहने वाले पुरुषकी देश सामग्रीका सम्बन्ध अन्य ही है तो यों आसन्न व दूरमें रहने वाले पुरुषको वस्तुमें जो नाना प्रकारके दर्शन हो रहे हैं, कह बैठेंगे कि इस वजहसे उस एक पदार्थमें भी स्वभावभेद हो जायेंगे, कि वे पदार्थ विशद हैं और अविशद हैं आदि। क्योंकि उस प्रतिभासमें कोई विशेषता नहीं है। करण सामग्रीके भेदकी तरह दूरादिक देशकी सामग्रीका भेद भी विषय स्वभावके भेदके बिना नहीं हो सकता।

इतरेतराभावके मन्तव्यकी उपयोगिता – तात्पर्य सबका यह है कि वस्तुमें ज्ञानमें, सभीमें एकानेक स्वभावता पाई जा रही है। खाली साधन और सामग्रीके भेद से उपचारतः उनमें भेद बताना और वस्तुमें भेद बनाना और वस्तुमें एक धर्मको हठ बनाना यह युक्त नहीं हो सकता। अनेकान्तके बिना, सप्रत्यक्ष धर्मके बिना किसी पदार्थका अस्तित्व नहीं रह सकता। ज्ञान है वह एक है तो अनेकान्तात्मकताको लेकर ही एक है। कोई द्रव्य हैं, घट पट आदिक है तो वह अनेकात्मकताको लेकर ही एक है। केवल याने एकानेकात्मकतासे रहित कुछ नहीं हो सकता। जैसे बताइये कि रूप, रस, गंध, स्पर्शके बिना घट क्या चीज है और घट एक द्रव्यके बिना रूप, रस, गंध, स्पर्शादिक क्या चीज है? एक माने बिना अनेकताका बोध न होगा। अनेक माने बिना एकात्मकताका बोध न होगा। जब वस्तु एकानेक स्वभावरूप है तब उसमें इतरेतराभावका निराकरण नहीं किया जा सकता।

प्रतिभासभेदसे स्वभाव भेदकी सिद्धिका प्रतिपादन—प्रतिभासभेद होने पर भी यदि विषय भेद स्वभावभेद आदिक न माने जानें तब, याने जुदे–जुदे पदार्थ प्रतिभासित होनेपर भी यदि भिन्न–भिन्नता नहीं मानी जाती तो प्रत्यक्ष विदित होने वाले भिन्न–भिन्न पदार्थोंमें भी एकता आ जायगी इस कारण यह मानना पड़ेगा कि चाहे अन्तस्तत्त्व हो चाहे बहिस्तत्त्व हो, प्रतिभास भेद होनेपर वहाँ स्वभावभेद है। कारणके बिना यदि भेद मान लिया जाय तब फिर किसी भी जगह एकत्वकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती। अन्यथा प्रतिभास भेद होनेपर भी चित्रपट आदिकमें या चित्रज्ञानमें एकरूपता माननेपर यह तो दोष आता ही है कि रूपादिकमें भी अभेद हो जायगा, एक घड़ेमें रूप, रस गंध आदिक प्रतिभासोंका भेद है सो भेद जचनेपर भी वे सब एक हो जायेंगे, यह तो दोष आता ही था। लेकिन अब एक नवीन दोष यह भी आता है कि आत्मादिक किसी पदार्थमें क्रमसे होने वाले विषय सम्बन्धी पदार्थोंका सम्बन्ध भी स्वभावको भेद न सकेगा। अर्थात् आत्मामें अनेक प्रकारके पदार्थोंके जाननेका स्वभाव है, सुख दुख आदिक उत्पन्न करनेका स्वभाव है। सो किसी भी प्रकारसे इस स्वभावका भेद न बन सकेगा। चाहे कितने ही सम्बन्ध और कारणकी बात बतायी जाय। और फिर इस तरह जो क्रमसे उत्पन्न होने वाले भी कार्य हैं जैसे सुख आदिक वे कार्य भी आत्माके स्वभावमें भेद न विदित करा सकेंगे।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

क्योंकि क्रमसे होने वाले सुख आदिक कार्योंका भेद जो कार्यभेद कारणभेदको सिद्ध कर सकता था ऐसे सुखादिक कार्य भेदोंका किसी एक पदार्थमें वृक्षादिक पदार्थमें समान कारण सामग्रीके सम्बन्धसे उत्पन्न होने वाला जो प्रतिभासभेद है उसके साथ व्यभिचार हो जाता है, याने प्रतिभास भेद पाया जा रहा है। लेकिन विषय एक है। तो ऐसे ही सुखादिक कार्यभेद पाये जायें और आधारभूत स्वभाव एक हो ऐसा नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कार्यभेदसे कारणभेद होता है और प्रतिभास भेदसे स्वभावभेद होता है यह बात सिद्ध की जा चुकी। इस कारण यह मानना चाहिए कि जितने भी सहकारी कारण हैं उतने ही उसमें स्वभावभेद है और वे प्रत्येक परस्परमें स्वरूप अपने अपने रखनेके कारण व्यावृत्त हैं। सो इस प्रकारकी व्यावृत्ति एक साथ अथवा क्रमसे होने वाले परिणामोंके भेदसे विदित हो जाती है। जैसे कि एक दीपक में बहुतसे स्वभाव भेद हैं। जैसे वह तैलको सुखा दे, बातीको जला दे, काजलको छोड़ दे, अंधकारका नाश करे, पदार्थोंका प्रकाश करे, ऐसे अनेक स्वभावभेद वहाँ परस्पर व्यावृत्त हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जो तैल शोषणका सामर्थ्य है वह वर्तिका दाहकी सामर्थ्यसे भिन्न है अन्यथा इतनी क्रिया सम्भव न हो सकेगी। तो देखिये— यहाँ यद्यपि एक साथ इतनी क्रियायें हो रही हैं। क्रम- स्वभावभेद होता है इसे भी देखिये – जैसे कि घट बनाया गया तो जब घट कच्चा अवस्थामें था तबका रूप और जब पक रहा है तबका रूप, और जब पक चुका तबका रूप, ये सारे स्वभावभेद वहां सिद्ध होते है ना, तो ये स्वभाव सब यहसिद्ध करते है कि यहाँ अन्यापोह है।

सिद्ध पदार्थमें परतन्त्रता व सम्बन्धके अभावका शंकाकार द्वारा कथन

अब यहाँ शंकाकार कहता है कि पदार्थोंमें सम्बन्ध तो सर्वथा असम्भव है फिर उनमें परतन्त्रता आ ही नहीं सकती क्योंकि परतन्त्रताका ही नाम सम्बन्ध है अथवा संबंध का नाम ही परतन्त्रता है। जो पदार्थ स्वयं अपनी सत्तासे सिद्ध है उस पदार्थमें परतंत्रताकी बात ही क्या ? इस कारण समस्त पदार्थोंमें तत्त्वतः सम्बन्ध नहीं है, तब फिर किसी भी पदार्थमें सम्बन्धियोंके भेद स्वभावभेद करनेके कारण नहीं बन सकते, कितने भी सहकारी कारण जुदे–जुदे मिल जायें लेकिन जिस एक पदार्थमें उन सहकारी कारणोंको निमित्त पाकर कार्य बनेना वह द्रव्य तो स्वतः सिद्ध है ना, तो जो स्वयं सिद्ध पदार्थ है उसमें स्वभावभेद करनेमें समर्थ सहकारी कारणोंका सम्बन्ध नहीं हो सकता। सहकारी कारण तो भिन्न चीज हैं. वे आगए अनेक तरहके तो उससे इस कारणभूत द्रव्यमें स्वभावभेद कैसे बन जायगा ? तो जो पदार्थ स्वयं सिद्ध है उन सिद्ध पदार्थोंमें एक दूसरेसे सम्बंध क्या ? और सहकारी कारणोंके जुट जानेपर भी यद्यपि कार्यभेद नाना प्रतीत होते हैं फिर भी उस मूल पदार्थमें स्वभावभेद नहीं किया जा सकता।

सम्बन्धकी असंभवता माननेवालोंके प्रति द्रव्यप्रत्यासत्तिरूप सम्बंधकी सिद्धि उक्त प्रश्नके समाधानमें कहते हैं कि यह कहना युक्तिसंगत नहीं है कि पदार्थोंमें सर्वथा सम्बन्धका अभाव है। क्योंकि, सम्बन्धका अर्थ है यह कि कोई प्रत्यासत्ति होना। सो द्रव्य द्रव्यकी निकटता हो, क्षत्रसे निकटता आये, कालसे निकटपना आये अथवा भावसे निकटपना आये, इसीका ही नाम तो सम्बंध है। ऐसे सम्बन्धका निराकरण नहीं किया जा सकता, किसी पदार्थका किसी पदार्थके साथ साक्षात् अथवा परम्परया सम्बन्ध नहीं है यह बात हो ही नहीं सकती। अन्यथा अर्थात् किसी पदार्थ का किसी भी भावके साथ साक्षात् अथवा परम्परया किसी प्रकार सम्बंध न हो तो वह स्वभावरहित हो जायगा। देखो ! गुण गुणीका पर्याय पर्यायवानका यदि साक्षात् कथंचित्—तादात्म्य सम्बंध नामक समवाय नहीं माना जाय याने गुण और गुणी कथंचित् तादात्म्यरूपसे हैं ऐसा समवाय सम्बंध न माना जाय और पर्याय पर्यायवानसे अर्थात् जो परिणाम हैं और जो परिणाम हुए हैं उन दोनोंमें यदि कथंचित्—तादात्म्य नामक समवाय न माना जाय तो अब देखिये ना, स्वतंत्र याने निराश्रय गुण और पर्यायका असत्त्व हो गया। याने गुण और पर्याय कुछ न रहे। और जब गुण पर्याय ये कुछ रहे ही नहीं, तो समस्त गुण पर्यायोंसे रहित द्रव्यमें भी असत्त्वकी आपत्ति आ जायगी, जब गुण पर्याय नहीं है तो द्रव्य भी कुछ नहीं है। यों गुण पर्याय स्वभावरहित हो गया और द्रव्य भी नि:स्वभाव हो गया। गुण और पर्यायका परस्परमें स्वाश्रयभूत एक द्रव्यके साथ समवाय सम्बंध न माननेपर असत्त्व आ जाता है तो वे नि:स्वभाव हो गए यह बात आपत्तिमें आती ही है। तो अब जान लीजिये कि भावमें द्रव्योंकी निकटता वाला सम्बंध मानना पड़ा।

क्षेत्रप्रत्यासत्तिरूप सम्बन्धकी सिद्धि—अब क्षेत्रप्रत्यासत्तिका सम्बन्ध देखिये ! चक्षु और रूप गुणकी बात तो लोग जानते ही हैं कि कितनी दूरमें रहने वाले पदार्थका रूप हो तो चक्षुसे दिख सकता है। यदि अत्यन्त दूर हुए हों रूपी पदार्थ कि चक्षुसे देखनेकी जहाँ योग्यता ही न रही वहाँके रूपको तो चक्षु नहीं देख सकता। क्योंकि अब चक्षु और रूपकी प्रत्यासत्ति न रही। तो अगर चक्षु और रूपमें परस्परया क्षेत्र प्रत्यासत्ति न मानी जाय, मायने कितने क्षेत्र तककी बात होना चाहिए तब चक्षु रूपको जाने ऐसा सम्बंध न माना जाय तो जैसे चक्षु बहुत दूर देशमें रहने वाले रूपका ज्ञान उत्पन्न नहीं करता ऐसे ही योग्य देशमें ठहरे हुए भी रूपके ज्ञानको भी चक्षु उत्पन्न न करेगा। इससे मानना होगा कि चक्षु और रूपका क्षेत्र प्रत्यासत्तिरूप सम्बन्ध है। रूपग्रहण न होनेसे उस चक्षुका ग्राहक अनुमान भी न रहेगा अर्थात् मुझमें चक्षु है रूपज्ञानका सद्भाव होनेसे यह अनुमान न बन सकेगा और चक्षुसे सत्त्वका ग्राहक अनुमान भी न बन सका तो चक्षुका ही असत्त्व हो जायगा और इन्द्रिय प्रत्यक्षका असत्त्व होनेसे रूपका भी असत्त्व हो जायगा। यहाँ यह दिखाया जा रहा है कि क्षेत्र की प्रत्यासत्ति भी एक सम्बन्ध कहलाता है। जिस मनुष्यके चक्षु ५ मील तकके पदार्थों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

को देख सकते हैं तो वहाँ यह सम्बन्ध मानना होगा चक्षु और रूपमें कि इतने क्षेत्रकी निकटता हो, सम्बन्ध हो तब चक्षु जानता है। यदि ऐसा क्षेत्र प्रत्यासत्तिको न माना जाय तब जैसे ५० मील दूर पर ठहरे हुए पदार्थोंको चक्षु नही देख सकता क्योंकि क्षेत्र प्रत्यासत्ति सम्बन्ध तो मान नहीं रहे, उसकी तरह योग्य देशमें रहने वाले रूपका भी ज्ञान चक्षु न कर सकेंगे। अब चक्षु कहीं भी रूपज्ञान कर न सका, तो किसी भी मनुष्य को चक्षुका सत्त्व है यह भी सिद्ध न हो सकेगा। मनुष्यको उसका चक्षु है यह ज्ञान इसीसे तो बनता है कि उसने रूपका ज्ञान कर लिया अतएव उसका चक्षु है। रूपका ज्ञान अब न रहा तो चक्षुकी भी सत्ता न रही। और जब चक्षु न रहे चाक्षुष प्रत्यक्ष न रहा तो रूपका भी सत्त्व न रहा। तो अब देखिये ! कि क्षेत्र प्रत्यासत्ति न मानने पर चक्षु और रूप दोनोंकी निःस्वभावता हो गयी दोनोंका असत्त्व हो गया। तब क्षेत्र प्रत्यासत्ति नामका भी कोई सम्बन्ध है, यह मानना होगा।

कालप्रत्यासत्ति व भावप्रत्यासत्तिरूप सम्बन्धकी सिद्धि— अब काल प्रत्यासत्तिकी बात सुनो ! कारण परिणाम और कार्य परिणाममें कालप्रत्यासत्ति हुआ करती है जैसे घड़ा और खपरियाँ। घड़ा पर्यायके बाद ही खपरिया पर्याय बनती है, यह तो लोग समझते ही हैं। इसमें काल प्रत्यासत्तिकी बात पड़ी हुई है, क्योंकि घट पर्यायका क्षय कारण है और खपरिया पर्याय कार्य है। और इन दोनों परिणामोंमें काल प्रत्यासत्ति मानी न जाय तो जैसे अनिष्ट कालमें कार्यकारणभाव नहीं बनता इसी प्रकार इष्ट कालमें भी कार्य कारणभाव न बनेगा, क्योंकि अब काल प्रत्यासत्ति तो माना नहीं है तब दोनों ही पर्यायोंका अभाव हो जायगा। कोई नाम या स्वभाव न रहेगा। तब देखिये कि पदार्थोंमें परस्पर काल प्रत्यासत्ति भी न माननी होगी। अब भावप्रत्यासत्तिकी बात देखिये ! जब पर्वतमें अग्नि है यह सिद्ध करने चलते हैं तो वहां हेतु दिया जाता है धूम होनेसे। सो इस सम्बन्धमें जब व्याप्ति बनाई जा रही है कि जहाँ–जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम नहीं होता। तो यों व्याप्तिके व्यवहारकालमें रहने वाले धूमादिक लिंगकी और अग्नि आदिक लिंगकी साध्यभावकी भावतः प्रत्यासत्ति है कि नहीं ? जब व्याप्ति बना रहे हैं कि जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। तो उस व्याप्तिपनेकी दृष्टिसे उन साध्य साधनोंमें भावप्रत्यासत्ति है अन्यथा व्याप्ति ही न बन सकेगी। लेकिन अब किसी भी प्रकारका सम्बन्ध न मानने वाले दर्शनिकोंके यहाँ भाव प्रत्यासत्ति तो कुछ रहा नहीं, तब किसी भी अग्नि आदिक साध्यमें अनुमान बन ही न सकेगा। तो भाव प्रत्यासत्ति न माननेपर अब अनुमान न बना, तब अनुमान और अनुमेय दोनोंका असत्त्व हो जायगा। तो देखिये ! यहाँ अनुमान और अनुमेय दोनों ही निःस्वभाव होगए, अतः यह हठ न चल सकेगी कि जब वस्तु स्वतः सिद्ध है तो स्वतः सिद्ध वस्तुमें संबंध और परतन्त्रता कुछ हो ही नहीं सकती, फिर स्वभावभेद वस्तुमें कहाँसे सिद्ध किया जायगा ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संवेदन व संवेद्याकारकी प्रत्यासत्तिसे भी सम्बन्धकी सिद्धि—देखिये ! सर्वत्र कहीं द्रव्य प्रत्यासत्ति कहीं क्षेत्र प्रत्यासत्ति कहीं काल प्रत्यासत्ति और कहीं भाव प्रत्यासत्तिरूप सम्बन्ध बराबर देखा जा रहा है। प्रत्येक पदार्थका किसी न किसीके साथ साक्षात् अथवा परम्परया सम्बन्ध कोई न कोई होता ही है। इस सम्बन्धमें और बहुत क्या कहें—एक इस सम्वेदन विज्ञान मात्रको भी देखिये ! तो इस विज्ञानका किसी वेद्यादि आकारसे प्रत्यासत्ति है ही। यदि किसी सम्वेदनसे वेद्याकारकी प्रत्यासत्ति न हो जैसे कि विज्ञानाद्वैतवादी कभी–कभी कहते हैं कि इसमें ग्राह्याकार भी नहीं है. यों यदि विज्ञानका वेद्यादिक आकारके साथ प्रत्यासत्ति सम्बन्ध न माना जाय तो वेद्यका और वेदनका ही असत्त्व हो जायगा। वेद्याकारके जानन बिना वेदन क्या वस्तु रही ? और वेदन बिना वेद्याकार क्या रहा ? जब वेदन और वेद्यमें किसी प्रकारकी प्रत्यासत्ति नहीं मानते तो दोनों निःस्वभाव हो गए। इस तरह जब वेद्य और वेदनकी प्रत्यासत्ति मान ली जाती है तो चारों ही प्रकारका सम्बन्ध सिद्ध हो गया। द्रव्य प्रत्यासत्ति, क्षेत्र प्रत्यासत्ति कालप्रत्यासत्ति और भाव प्रत्यासत्ति, चारों ही सिद्ध हो जाते हैं। वेदन और वेद्याकारमें जब ये चारों प्रत्यासत्ति सिद्ध हो गए तब परस्पर परतन्त्रता सिद्ध हो जाती है। यहाँ परतन्त्रताका अर्थ है वस्तुके आश्रय रहना। जैसे कि आत्मामें ज्ञान गुण है निश्चयतः ज्ञान ही आत्मा है। उसमें परतंत्रताकी बात नहीं है. किन्तु दार्शनिक पद्धतिसे जब वस्तुस्वरूपकी चर्चा होती है तो चूँकि व्यवहारनयसे यह कहना ही पड़ेगा कि आत्मामें ज्ञान है। तो इस समय इस दृष्टिमें ज्ञान आत्मतंत्र हो गया। ये कोई भिन्न–भिन्न प्रदेशवान पदार्थ नहीं है. जिनकी परतंत्रता जैसी कल्पना की जाय लेकिन परतंत्रताका अर्थ यह है कि निराश्रय नहीं है। तो ज्ञानाकार वेदन जब सिद्ध है तो उस सिद्ध सम्वेदनाकारको ग्राह्याकारादिको ज्ञानके परतन्त्र मानना होगा। यदि संवेद्यको संवेदनाश्रित नहीं मानते तो जो ग्राह्याकार हैं वे ज्ञानके आश्रय नहीं हैं, ऐसा माननेपर फिर ज्ञानके अभावमें भी ग्राह्याकारोंका सद्भाव होना पड़ेगा। जब ज्ञान और ज्ञेय इन दोनोंकी प्रतिपत्ति नहीं मानते और दोनोंको निराश्रय मानते हैं तब तो ज्ञेयाकार, ग्राह्याकार बिना ज्ञानके ही बन जायें यह प्रसंग आ जाता है। अथवा ज्ञानका यदि ज्ञेयाकारके साथ सम्बन्ध नहीं मानते ज्ञेयाकारके परतंत्र नहीं मानते ज्ञान को तो ज्ञान निराकार कहलायेगा। ऐसा ज्ञान जिसमें कोई ज्ञेयाकार नहीं, कोई ग्राह्याकार नहीं, विषय ही नहीं कुछ उस ज्ञानका स्वरूप ही क्या ? यहाँ परतन्त्रताका अर्थ आधाराधार्य गुण गुणी विषय विषयी आदि सम्बन्धोंसे है।

ज्ञानमें वेद्याकाराभावका पारतन्त्र्य (सम्बन्ध) न माननेपर निराकार ज्ञानकी असिद्धि—कदाचित् ज्ञानको निराकार भी मान लिया जाय तो इतना माननेपर भी सम्बन्धकी मान्यतासे हट नहीं सकते। यह भी मान लिया जाय कि ज्ञान निराकार है। उसमें ग्राह्याकार नहीं है तो निराकार ज्ञानके माननेपर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि ज्ञानमें वेद्याकारके अभावका सम्बन्ध है। याने उस ज्ञानमें वेद्या-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारके अभावका सम्बन्ध है । या'ने उस ज्ञानमें वेद्याकारका अभाव है । ज्ञान निराकार माना । ज्ञानका अर्थ यह है कि ज्ञानमें ग्राह्याकार नहीं है तो क्या है ? ग्राह्याकारका अभाव है । तो लोक ज्ञानमें ग्राह्याकारके अभावका तो सम्बन्ध मानना पड़ा । यदि ज्ञानमें ग्राह्याकारके अभावका सम्बन्ध न माना जाय तो अर्थ क्या हुआ कि ज्ञानमें ग्राह्याकार स्वरूप है । सो ये दोनों बातें विरुद्ध हैं या तो यह मान लिया जाय कि ज्ञान ग्राह्याकारके परतंत्र है या फिर यह मानें कि ज्ञान ग्राह्याकारके अभावके परतंत्र है और दोनोंको परतन्त्रताका अभाव तो विरुद्ध हा है । तब किसी न किसी प्रकारकी प्रत्यासत्ति माने बिना तो स्वरूप कोई सिद्ध कर ही न सकेगा ।

सर्वथा अभावको भावपरतन्त्र न माननेपर अभावनामक स्वतंत्र पदार्थकी सिद्धि—और, भो देखिये— सर्वथा सम्बन्धाभावका यदि किसी भावके परतंत्र है यह न माना जाय तो सर्वथा अभाव स्वतन्त्र बन गया, याने निराश्रय बन गया । देखिये जब कभी अभावका प्रतिपादन किया जाता है तो किसी वस्तुके आश्रय से हो किया जाता है । जैसे घटका अभाव आदिक रूपसे अभाव भी भावके परतंत्र है अथवा कहो भावका विशेषण कहकर अभावका प्रयोग होता है तो लो सर्वथा अभाव भी भावके परतन्त्र हो गया । यदि अभावको भावके परतंत्र नहीं मानते तो अभाव स्वयं स्वतंत्र हो गया, निराश्रय हो गया । तो जो निराश्रय है । स्वतन्त्र है, उसमें अभावरूपता कैसा रहेगी ? वह तो सत्तात्मक रूप स्पष्ट बन गया । फिर सम्बन्धाभावकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती है । इस तरह चाहे पदार्थको सिद्ध मानने वाले हों, चाहे कार्य द्रव्यको असिद्ध मानने वाले हों, सभी प्रकारके दार्शनिकोंका किसी न किसीके साथ प्रत्येक पदार्थका पारतन्त्र्य मानना होगा । तब यहाँ देखिये कि सिद्ध अथवा असिद्ध किसी भी कार्यद्रव्यका पारतंत्र्य प्राप्त करके गुण गुणी आदिक में कहते हैं कि क्या परतंत्रता है । सो देखो—ये दार्शनिक स्वयं परतन्त्र हो रहे हैं । अर्थात् ज्ञानके आधीन हो रहे हैं । जैसे किसी भी सिद्ध पदार्थका किसीके साथ कोई सम्बन्ध न माना जाय तो उस वस्तुकी सिद्धि नहीं हो सकती । इसी प्रकार किसी भी कार्यात्मक असिद्ध पदार्थमें कारणकी परतंत्रता है ऐसा मानना ही पड़ेगा । अन्यथा कारणके अभावमें जहाँ चाहे जिस चाहे कार्यकी उत्पत्ति हो पड़ेगी । यदि यहाँ शंकाकार यह कहेंगे कि हम तो कार्य कारण भाव ही नहीं मानते, फिर कार्यात्मक किसी पदार्थमें कारणकी परतंत्रता आती है यह बात कैसे बने ? इसके समाधानमें कहते हैं कि किसीसे किसीकी उत्पत्ति न माननेपर फिर तो शाश्वत सत् हो जायगा । क्षणिकवादी यदि कार्यको कारणसे नहीं मानते, कारण कार्यभाव नहीं मानते, क्षणिकताका विघात हो जायगा इस भयसे क्षणिकसिद्धान्तानुयायियोंने कारण कार्य भाव नहीं माना और इस नीतिके अनुसार यदि कारणसे कार्यकी उत्पत्ति न मानेंगे तो अर्थ यह होगा कि प्रत्येक पदार्थ सदा सत् है । और, कारणके बिना जो सत् हो वह नित्य होता है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संवृत्तिसे सम्बन्ध माननेपर परमार्थतः अकारण द्रव्यमें नित्यत्वकी प्रसक्ति—यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि वास्तवमें किसीका किसीके साथ सम्बन्ध नहीं है। केवल कल्पनासे ही सम्बन्ध माना जाता है। और, चूंकि सम्बन्ध व्यवहारके लिए उपयोगी है अतः व्यवहारकी जननी कल्पना ही वहाँ सम्बन्धका कारण बनती है। इसके समाधानमें कहते हैं कि क्या हुआ, कल्पनासे भी यदि परतंत्र मानोगे तो वह दोष तो नहीं हट सकता, क्योंकि सम्बन्ध तो कल्पनासे ही माना। अथवा कार्य कारण भाव है इस प्रकारका सम्बन्ध कल्पनासे हो कहा, परमार्थसे तो सम्बन्ध न रहा। और कल्पना है मिथ्यारूप। तो कल्पनासे सम्बन्ध रहा, इसका अर्थ है कि झूठा यदि कहलवाते हो तो सम्बन्ध है वस्तुतः कार्य कारणका सम्बन्ध नहीं। तब परमार्थसे तो यही निर्णय रहा कि बिना कारणके कार्य हो गया है। तो जो बिना कारणके हो वह नित्य ही है। इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी जा सकती। यदि परमार्थसे कारणका कार्यात्मक स्वरूपमें परतंत्र मान लेते हैं तो सम्बन्धकी तात्त्विकता सिद्ध हो ही गई। इस प्रकार वह कथन कि अन्योन्याभाव और इतरेतराभाव ये कहीं भी घटित नहीं होते सो उनका निराकरण करना समीचीन नहीं है क्योंकि सहकारी कारणोंकी अपेक्षासे संतानान्तरमें भाव स्वभावके भेद परस्परमें व्यावृत्त तो हैं ही ना, तब वहाँ तो अन्योन्याभाव व अत्यन्ताभाव घटित हो जायगा। इन अभावोंका निराकरण करनेपर वस्तुके स्वरूपकी सिद्धि नहीं की जा सकती।

पदार्थोंके प्रतिक्षण अनन्त पर्यायोंरूप परिणमनेका वर्णन—देखिये ! प्रतिक्षण अनन्त पर्यायवान प्रत्येक पदार्थ जितने भी प्रदेशी सत हैं वे सब प्रतिक्षण अनन्त पर्यायोंरूप परिणमते हैं और भूत भविष्य कालकी अपेक्षा अनन्त पर्यायोंरूप परिणमते रहे और अनन्त पर्यायोंरूप परिणमते रहेंगे। प्रत्येक पदार्थ अनेक शक्त्यात्मक होते हैं, शक्ति, स्वभाव, गुण किन्हीं भी शब्दोंसे कहो प्रत्येक पदार्थोंमें अनन्त शक्तियाँ होती हैं और जितनी शक्तियाँ हैं उतने ही परिणमन हैं उतने परिणमन प्रति समय हुआ ही करते हैं। तब ये पदार्थ सब एक स्वभाव न रहे और न क्षणमात्रकी स्थिति वाले रहे। इसका अन्वय दिखाया जा रहा है, ये पर्यायें प्रतिक्षणमें जो परिणमती रहती हैं वे किसकी होती हैं उनमें अन्वयभूत सत् बराबर रहता ही है निरन्तर अन्वयका सद्भाव है, अविच्छेद है अन्वयका, तो उन अनन्त पर्यायोंमें रहने वाले सद्भूत पदार्थोंका यदि क्रमसे भी विच्छेद कोई माने तो भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती। जो स्वयं असत् है, क्रियाके सम्बन्धमें प्राप्त नहीं हुआ है ऐसे कारण द्रव्यसे तत्त्वतः कहीं भी उपयोग सम्भव नहीं है। और जब असत् पदार्थसे कुछ भी कार्य नहीं बन सकता तब फिर किसके द्वारा किसका आत्मलाभ हो ? याने कोई कारण नहीं बन सकता और न कोई पदार्थ कार्य बन सकता है। हाँ कथंचित् अविच्छेद मान लिया जाय, कारणभूत पदार्थका विनाश नहीं होता, ऐसा कथंचित् अविच्छेद मान लिया जाय तो कार्यका होना सुघट हो जायगा। जैसे मृत्पिण्डसे घड़ा पर्याय बनती है तो जिस कारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से घट पर्याय बनेगा वह कारण कथंचित् अविच्छिन्न है. मृत्पिण्डमें भी था और घट होनेपर भी है वह, अथवा कारण है मिट्टी सो घटका आकार विशेष जो मृत्पिण्ड था उसका तो विच्छेद हुआ लेकिन मिट्टीका विच्छेद नहीं हुआ। तो द्रव्यार्थिकनयसे वस्तु का अविच्छेद माननेपर कार्यका होना घटित हो जाता है। कार्यस्वरूपसे होने वाले कारणका विच्छेद नहीं किया जा सकता, अर्थात् वह निरन्तर है। कार्यरूपसे जो उपादान हुआ है वह द्रव्य तो सदा ही रहता है उसमें समयका भी अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि वह कारणान्तरकी अपेक्षा नहीं करता। मिट्टीमें स्वयं घड़ा रूप पर्याय बनती है तो जब किन्हीं भी कारणोंके सन्निधानमें मिट्टीमें घड़ारूप पर्याय बनती है तो अपने द्रव्यमें सहयोग लेनेके लिए याने मिलकर परिणमनेके लिए मिट्टी किसी द्रव्यकी अपेक्षा नहीं करती तब यह सिद्ध हुआ कि जो उत्पन्न होने वाला है वह अपनी उपादान विधि में कार्यरूपसे परिणमनेके लिए किसी अन्य द्रव्यके उपादानकी अपेक्षा नहीं करता। स्वयं अर्थ पर्यायरूपसे उत्पन्न होने वाले कार्यद्रव्य यदि स्वभावान्तरकी अपेक्षा करने लगे तो जिनके यहाँ विनश्वर पदार्थ माने है उनके यहाँ भी विनश्वर पदार्थकी उत्पत्ति में स्वभावान्तरकी अपेक्षाका प्रसंग हो जायगा। तब इस प्रकार याने स्वयं उत्पन्न होने वाले विनश्वर पदार्थका यदि स्वभावान्तरकी अपेक्षा नहीं है यह चाहते हो तो इसी पद्धतिसे यह मानना होगा कि इस ही प्रकार जो स्थायी पदार्थ है, सर्व समयोंमें ठहर सकने वाला है, उस पदार्थको भी स्वभावान्तरकी अपेक्षा नहीं होती। स्वभावतः उत्पत्ति, विनाश, और स्थितरूपसे परिणमने वाले पदार्थके कारणान्तरकी अपेक्षा न रखकर उत्पाद व्यय और ध्रौव्य इन तीनकी व्यवस्था है। एक विशेषमें ही स्थूल व्यञ्जन पर्यायमें ही जो वचनगम्य है, विनाशीक है, उसमें ही हेतुका व्यवहार माना गया है। तो जब कारणान्तरकी अपेक्षा न रही तो पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे प्रतिक्षण अनन्त पर्यायें क्रमसे नष्ट न होने वाली अन्वयकी संततिरूप विदित होती है। पर्यायें किसकी ? जिस सद्भूत प्रदेशवान पदार्थकी पर्यायें हैं ये पर्यायें उस सद्भूत अविनाशी द्रव्यकी ओर इशारा करती हैं। तब यह सिद्ध हुआ कि यह पदार्थ उत्पन्न होता हुआ ही विनष्ट होता है और नष्ट होता हुआ ही ठहरता है। उत्पन्न और नष्ट होता हुआ भी स्थिर रहा करता है।

समस्त पदार्थोंकि त्रिलक्षणत्वकी सिद्धि—उक्त कथनका सारांश यह है कि ये पदार्थ उत्पन्न हो रहे उत्पन्न होते हुए नष्ट होते हैं। यहाँ यह सन्देह न करें कि उत्पन्न होते हैं तो उत्पन्न हों, फिर विनष्ट कैसे होते है ? क्योंकि उत्तरकालीन जो सुखादिक पर्यायें हैं उनकी उत्पत्ति पूर्वदुःखादिक पर्यायोंके विनाशको छोड़कर होती है। तो उत्तर पर्यायका उत्पाद पूर्वपर्यायके विनाशको लिए हुए है, इस कारण यह भी कहा जा सकता है कि पर्याय अपेक्षासे ही नश्वर हुई वह पदार्थकी स्थिति रहती है, क्योंकि द्रव्यकी अपेक्षासे अगर स्थाणु न हो कोई पदार्थ, द्रव्यकी अपेक्षा स्थिर न होने पर फिर नाश भी नहीं बन सकता। जब कोई द्रव्य ही न रहा तो नाश किसमें कहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायगा ? जैसे खरविषाण कोई पदार्थ ही नहीं है तब उसमें नश्वरताकी बात कहांसे आयगी कि वह नष्ट होता है ? और, इस ही कारण यह भी कहा जा सकता है कि स्थिर रहते हुए ही उत्पन्न होता है। कोई पदार्थ सत्त्व, द्रव्यत्व, चेतनत्व आदिककी अपेक्षासे स्थिर रह रहा हो वही तो उत्पन्न हो सकता है। कोई पदार्थ यदि सर्वथा ही रहने वाला न हो तो उसका कभी भी उत्पाद नहीं बन सकता खरविषाणकी तरह। जैसे खरविषाण कुछ चीज ही नहीं है स्थिर रहनेकी चीज नहीं है तो उसका उत्पाद नहीं बन सकता। इस कारण प्रतिक्षण प्रत्येक पदार्थ विलक्षण है उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों ही धर्म एक साथ एक ही कालमें निरन्तर पदार्थमें रहते हैं। इस को तत्त्वार्थ महाशास्त्रमें भी यही कहा है कि "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्", समस्त सत् उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त होते हैं।

स्थिति आदिके अभिन्न व भिन्न होनेके दोनों विकल्पोंमें वस्तुके त्रिलक्षणत्वके अभावकी आशंका— अब यहां क्षणिकवादी शंका करते हैं कि देखिये ! यहाँ तीन धर्म बताये हैं—स्थिति, उत्पत्ति और विनाश। सो ये धर्म जिस पदार्थमें भी माने गये, जैसे जीवमें घटाइये— जीवकी स्थिति, जीवकी उत्तर पर्यायका उत्पाद, जीवकी पूर्व पर्यायका विनाश, तो ये तीनों जो माने गए हैं धर्म, तो यह बतलावो कि जीव वस्तुसे भिन्न है अथवा अभिन्न है ? यदि ये स्थिति आदिक जीवसे अभिन्न हैं तब तो स्थिति मात्र ही रहे या उत्पत्ति व व्यय मात्र ही रहे। अब उत्पत्ति और विनाश भी स्थितिका ही नाम पड़ेगा अथवा विनाशका ही नाम स्थिति और उत्पत्ति होगी या उत्पत्तिका ही नाम विनाश व स्थिति होगी जब ये तीनों धर्म जीवसे या किसी भी पदार्थसे अभिन्न मान लिए गए तब ये तीनों न ठहरेंगे। तो ये स्थिति आदिक परस्परमें अभिन्न हैं तब एक रहा, दोका अभाव हो जायगा क्योंकि एकसे अभिन्न रूपसे रहने वाली स्थिति आदिकके विभागका विरोध है। ठहरनेका अर्थ है दूसरा, उत्पाद होनेका अर्थ है दूसरा, नष्ट होनेका अर्थ है दूसरा। जो ठहर रहा है उसे उत्पन्न होना और नष्ट होना नहीं कह सकते। जो उत्पन्न हो रहा है उसे अन्य दो बातें नहीं कह सकते। और, जब स्थिति आदिकको परस्परमें अभेद मान लिया तब ये विभाग ही नहीं बन सकते और जब स्थिति, उत्पत्ति विनाशका विभाग न बने तो वस्तुकी त्रिलक्षणता तो कुछ न रही। इस कारण इन तीनों लक्षणोंको अभिन्न तो कह नहीं सकते। यदि कहते हो कि स्थिति, उत्पाद, ध्रौव्य ये तीनोंके तीनों भिन्न–भिन्न हैं तो ये तीन हो गए ना सत् और जो 'है' होना है वह त्रिलक्षणात्मक होना है तो ये तीनों जब हैं तब ये तीनों त्रिलक्षण हो जायेंगे। स्थिति भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप है, उत्पाद भी उत्पाद व्यय, ध्रौव्य रूप होगा, व्यय भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होगा, व्यय भी उत्पाद उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होगा। अन्यथा इन तीनोंका सत्त्व नहीं ठहर सकता। और, जब इन तीनोंमें असत्त्वकी आपत्ति आई, ये असत् हो गए तब फिर त्रैलक्षण्यकी सिद्धि नहीं की जा सकती कि प्रत्येक पदार्थ त्रिलक्षणात्मक है। तो यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्थिति उत्पाद व्यय सत् है और त्रिलक्षण नही है। उत्पाद केवल उत्पादरूप है स्थिति केवल स्थिति रूप है और व्यय केवल व्ययरूप है, तो ये हैं और त्रिलक्षण न रहें ना अब यह घोषणा तो नहीं कर सकते कि जो कुछ भी सत् है वे सब त्रिलक्षणात्मक हैं।

सत्के त्रिलक्षणात्मक होनेकी शंकाका समाधान – उक्त शंकाके समाधान में कहते हैं कि ऐसा कहने वाले क्षणिकवादियोंने पदार्थोंके स्वभावका विचार नहीं किया। बात यह है कि इन तीन धर्मोंके सम्बन्धमें जो भेद और अभेदका विकल्प उठाया है कथंचित् ये दोनों ही बातें मान्य हैं। स्थिति आदिक धर्मवान पदार्थोंसे इन तीनोंका कथंचित् अभेद है। अन्वयरूप द्रव्यका दृष्टिसे ये तीनों अभिन्न हैं और इस तरह तीनका कथंचित अभेद माननेपर स्थिति आदिकोंकी स्थिति ही उत्पन्न होती है और नाशसामर्थ्य होनेसे नष्ट भी होती है क्योंकि अब त्रिलक्षणात्मक पदार्थोंसे इन तीनोंका कथंचित अभेद मान लिया है। और, इस ही कारण विनाश हो स्थिर रहने वाला है और उत्पत्तिसामर्थ्य होनेसे उत्पन्न होने वाला है। और, उत्पाद ही व्ययरूप है और ध्रौव्य है क्योंकि जीवादिक पदार्थोंसे अभिन्न जो स्थिति आदिक हैं उनमें भी त्रिलक्षणता सिद्ध है। एक मोटे रूपसे दृष्टान्त लीजिए कि एक घट था और घटका प्रध्वंस होनेसे खपरियाँ हो गयीं तो घटका व्यय हुआ। घटके व्ययके कालमें ही खपरियोंका और जो घटका व्यय है उस व्ययमें जो भी सत्त्व है वही ध्रौव्य है। इसी तरह उत्पादका माध्यम लेकर घटाओ तो जो खपरियोंका उत्पाद है सो ही घटका व्यय है। उत्पादका ही नाम व्यय हो और उस उत्पाद व्ययमें जो कुछ है उसीका नाम स्थिति हुआ। तो यों त्रिलक्षणात्मक पदार्थको कथंचित अभेद मान लेनेपर ये तीनों ही एक कालमें सम्भव हुए और तीनोंको उस एक रूपमें परखा जा सकता है और जिस तरह त्रिलक्षणात्मक पदार्थसे इन तीन लक्षणोंका कथंचित अभेद माननेपर एक ही सब कुछ है उस ही कारणसे अब उनका भेद मान लेनेपर पर्याय दृष्टिसे उनमें भेद मान लिया जाय कि भेदविवक्षामें स्थितिका स्वरूप स्थितिरूप है। उत्पादका स्वरूप उत्पत्तिरूप है, व्ययका स्वरूप व्ययरूप है, इस तरह पर्यायकी अपेक्षासे भेद मान लेनेपर अब उन प्रत्येक में त्रिलक्षणपनेकी सिद्धि हो जाती है। कोई वहाँ ऐसी आशंका न करे कि इस तरहसे तो फिर अनवस्था दोष होगा। अनवस्था दोष यों नहीं आता कि यदि सर्वथा भेदका पक्ष किया जाता तो अनवस्था दोष आता, पर स्याद्वादकी नीति में अनवस्था दोष नहीं हो सकता, क्योंकि जिस ही स्वभावसे त्रिलक्षणात्मक तत्त्वसे अभिन्न हैं ये स्थिति आदिक उस स्वभावसे तो अर्थात् द्रव्य दृष्टिसे प्रत्येक त्रिलक्षणात्मक है, क्योंकि वही द्रव्य रहा किन्तु भेद माननेसे अर्थात् पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे स्थितिमें स्थिति धर्म है उत्पादमें उत्पाद धर्म है, व्ययमें व्यय धर्म है उस दृष्टिसे परस्पर स्थिति आदिकोंको तद्वान जीवादि पदार्थसे भिन्न भी माना जाता है। क्योंकि भेदरूप और अभेदरूप दोनों ही दृष्टियोंसे उनकी प्रतीतिमें कोई बाधक कारण नहीं होता। इस कारण यह कथन निर्दोष है कि समस्त पदार्थ प्रतिक्षण त्रिलक्षणात्मक

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही है प्रतिक्षण चर अचर समस्त पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक होते हैं, क्योंकि पूर्व पर्याय और उत्तर पर्यायमें नष्ट न होने वाली अन्वय संतति बराबर रहती है।

वस्तुका त्रैलक्षण्य व वस्तुसे कथंचित् अभेद होनेसे तीनों लक्षणोंका त्रैलक्षण्य – अब तीनों कालोंकी अपेक्षासे भी इन सबको त्रिलक्षणात्मक देखियेगा! जीवादिक पदार्थका द्रव्यरूपसे तो तीनों कालमें रहना होता है, अन्यथा याने निरन्वय माननेमें, ऐसा क्षणिक एकान्त माननेमें कि जहाँ संतति अथवा द्रव्य नहीं है सर्वथा अर्थ क्रियामें विरोध आता है नित्य एकान्तकी तरह। जैसे जिनका सिद्धान्त है कि वस्तु नित्य एकान्तरूप है उनके यहाँ भी अर्थक्रिया नहीं बनती, और जो मानते हैं कि वस्तु सर्वथा क्षणिक ही है उनके यहाँ भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती। इससे यह मानना होगा कि जीवादिक पदार्थ द्रव्य–पर्यायात्मक हैं, क्योंकि क्रमसे और युगपत् उनमें अर्थ क्रिया अन्यथा बन ही न सकती थी। इस तरह प्रत्येक पदार्थकी द्रव्य पर्यायात्मक-रूपता प्रमाणसे उत्पन्न है और तब यह कहना भी युक्त है कि स्थिति ही स्थिर रहेगी, उत्पन्न होगी, नष्ट होगी और स्थिति ही स्थिति थी, उत्पन्न हुई और नष्ट हुई। इसी प्रकार यह भी कह सकेंगे कि विनाश ही ध्रौव्य होगा, उत्पन्न होगा, नष्ट होगा और विनाश ही ध्रौव्य था, उत्पन्न था, नष्ट था इसी प्रकार यह भी कह सकेंगे कि उत्पत्ति ही उत्पन्न होगी, नष्ट होगी स्थिर होगी, और वह उत्पत्ति ही उत्पन्न हुई, नष्ट हुई, स्थित हुई, ये सब भेद विभाग कथंचित् भेद और अभेद मान लेनेपर सिद्ध होते हैं क्योंकि स्थिति आदिकके आश्रयभूत जो वस्तु है वह अनादि अनन्त रहती है, अतएव कभी भी उसका उपरम नहीं होता। उसके तीनों कालकी अपेक्षा रखकर यदि स्थिति आदिक पर्यायोंका काल देखा जाय तो कह सकेंगे कि तीनोंका ही उपरम नहीं होता। क्या कोई समय ऐसा होगा कि जिस समय किसी पदार्थमें उत्पादका होना समाप्त हो जायगा। अथवा कोई समय ऐसा होगा कि उसका विनाश होते रहना समाप्त हो जायगा। अथवा पदार्थ सदाकाल पहिले भी था, उत्पन्न होता था, नष्ट होता था और आगे भी भविष्यकालमें स्थिर रहेगा। यदि इन तीनों बातोंका उपरम मान लिया जाय तब फिर वस्तुकी त्रिलक्षणात्मकता न रहेगी और फिर वस्तु सत् भी न रहेगा। तब स्थिति आदिक तीनों कालोंमें जब त्रिलक्षणता है तब यह कह देना युक्त है कि जीवादिक वस्तु ठहर रहे हैं, ठहर रहे थे और ठहरे रहेंगे। जीवादिक पदार्थ नष्ट हो रहे हैं, नष्ट हो रहे थे और नष्ट होते रहेंगे समस्त पदार्थ उत्पन्न हो रहे थे और उत्पन्न होते रहेंगे, अन्यथा अर्थात् जीवादिक पदार्थोंमें तीनों कालोंमें यदि त्रिलक्षणात्मकता नहीं मानी जाती है तो पदार्थोंसे कथंचित् अभिन्न जो स्थिति आदिक धर्म है उनमें ये ठहरे रहेंगे नष्ट होते रहेंगे आदिक व्यवस्था नहीं बनती। अतः इन तीनोंमें ये धर्म हैं इस तरह ये ९ विकल्प प्रत्येक ९ विकल्पोंके साथ जुड़ेंगे और यों ८१ विकल्पोंके रूपमें वस्तुका विचार बनेगा। ९ विकल्पोंमें वस्तु परखिये— पदार्थ जब तक ठहरते हैं, ये अपने कालकी अपेक्षासे ठहरते हैं, उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं और अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कालसे उत्तर कालकी अपेक्षा भविष्यकी अपेक्षा ठहरे रहेंगे उत्पन्न होते रहेंगे नष्ट होते रहेंगे। और अगले पूर्वकालकी अपेक्षा ठहर रहे थे, उत्पन्न हो रहे थे नष्ट हो रहे थे, ये ६ भेद होते हैं तो यह स्थितिके सम्बन्धमें कहा है कि यह एक कालकी स्थितिकी बात है। इसी तरह ८ भंगोंमें भी यह लगा लेना है। यों ९ विकल्पोंके साथ ६ विकल्प उठते हैं। ८० विकल्पोंके क्रमसे वस्तुका विचार चलता है। यहाँ यह शंका नहीं की जा सकती कि इस तरहकी व्यवस्था धर्मकी तो हो जाय पर धर्मीकी न हो सकेगी। जब धर्म धर्मीसे अभिन्न कथंचित देखा गया है तो वस्तुसे अभिन्नरूप रहने वाली स्थिति आदिक पर्यायोंमें भी उतने ही प्रकारके विकल्प बनते हैं। अतएव उन तीनों लक्षणोंका वस्तुमें कहीं भी उपरम सिद्ध नहीं होता।

प्रत्येक द्रव्यकी तरह सन्मात्र कल्पनामें भी त्रैलक्षण्यका अवतार—उक्त प्रसंग में यह बताया है कि प्रत्येक पदार्थ चाहे वह कोई भी जीव हो, चाहे वह कोई भी पुद्गल हो, धर्म द्रव्य हो, अधर्म द्रव्य हो आकाश द्रव्य हो कोई भी काल द्रव्य हो, ये सभी प्रत्येक पदार्थ अनन्त पर्यायों वाले सभी एक साथ और क्रमसे विचार जानेपर ८१ प्रकारके विकल्पोंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यस्वरूप कहे गये हैं। यह सब वर्णन एक भेद विवक्षा किए बिना जो द्रव्यका परिज्ञान होता है उस भेदविवक्षारहित शुद्ध दृष्टिके प्रतिपक्षमें अशुद्धद्रव्यका प्रतिपादन है। अशुद्ध द्रव्यका अर्थ विभाव पर्याय सयुक्त से नहीं, किन्तु द्रव्य ऐसा ही मात्र केवल न सोचकर उसके भेद देखकर अथवा अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय याने व्यवहारनयकी दृष्टिसे इन सबको भेदोंके रूपमें निरखकर बताया गया है कि ये सब उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप हैं। तो जैसे अशुद्ध द्रव्यके सम्बंधमें अर्थात् सत्ताके द्रव्यके अनेक भेद करके प्रत्येक भेदके सम्बंधमें त्रिलक्षणता बतायी है उस ही प्रकारसे सन्मात्र शुद्ध द्रव्यमें भी त्रिलक्षणता निरखना चाहिए। शुद्ध द्रव्यका अर्थ है यहाँ भेदकी विवक्षा न करके जिस दृष्टिमें भेदविद्यमान नहीं है ऐसे शुद्ध संग्रहकी अपेक्षा जो सन्मात्र द्रव्य कहा गया है वह उसमें भी त्रिलक्षणता समझ लेना चाहिए। जिसके भेद विवक्षामें नहीं लिए गए ऐसे शुद्ध सन्मात्र की बात सुनकर कोई सत्ताद्वैतवादी ऐसी आशंका कर सकता है कि जिसके भेदकी विवक्षा नहीं है ऐसे शुद्ध सन्मात्र तत्त्वमें द्रव्यपना ही घटित नहीं होता। फिर सन्मात्र शुद्ध द्रव्यके सम्बंधमें त्रिलक्षणता की बात कहना कैसे युक्त होती है? ऐसी शंका करने वालेको यह समझ लेना चाहिए कि सन्मात्र शुद्ध द्रव्यका ही जब द्रव्यत्व विशेषणमें विचार चलता है तो वह द्रव्य व्यवहारका विषय बन जाता है। द्रव्यका लक्षण भी यही कहा है कि "द्रव्यं सल्लक्षणिकं" जो सत्लक्षण वाला हो सो द्रव्य है तो सत्को ही द्रव्यत्व विशेषण करके निरखनेपर उसमें द्रव्यका व्यवहार बन जाता है। तो यों सन्मात्र तत्त्वमें द्रव्यत्वकी सिद्धि है इसी बातको स्पष्ट करते हैं।

सन्मात्र तत्त्वमें त्रैलक्षण्य सिद्ध होनेका आधार—देखिये! सत्ता ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यायोंके प्रति जाती है, जायगी और गयी थी अर्थात् सत्तामें ही पर्यायोंको अंगीकार किया था, कर रही है, करती रहेगी, इस कारणसे सत्ता ही एक द्रव्य हुआ। द्रव्य शब्दकी व्युत्पत्ति ही यह है कि द्रवति, द्रोष्यति, अदुद्रवत् इति द्रव्यं–याने जो पर्यायोंके प्रति जाता है याने पर्यायोंरूप परिणमता है परिणमेगा, परिणमता रहा वह द्रव्य है तो अब इस भावसे ही, सन्मात्र तत्त्वसे ही उसके इस विशेषपर दृष्टि दी तो सिद्ध हुआ कि सत्ता ही द्रव्य है। और भी देखिये ! यह सत्ता ही जिसमें निवास करती है इस सत्ताने जिसमें निवास किया, यह सत्ता जिसमें निवास करती रहेगी, ऐसा ही तो पदार्थ है. यों सत्ता ही क्षेत्र हो गया। क्षेत्र शब्दकी व्युत्पत्ति है यह कि क्षीयंते क्षेष्यंते, क्षितर: अस्मिन् पदार्था: इतिक्षेत्र याने पदार्थ जिसमें निवास करते हैं, निवास करेंगे, निवास कर रहे उसको क्षेत्र कहते हैं। तो अब उस सत्ताको देखिये ! कहीं नो है वह, जहाँ है वही सत्ताका क्षेत्र कहलाता है। तो यों सत्ता ही क्षेत्र कहलाया। तो यों सत्ता ही द्रव्य हुआ और सत्ता ही क्षेत्र हुआ, तथा सत्ता ही काल कहलाया। काल शब्दकी व्युत्पत्ति है कि कलयन्ते कलयिष्यन्ते कलिता: अस्मात इति काल: याने जो पूर्व और उत्तर परिणामको प्राप्त होता है और होता रहेगा जिस भावसे सत्त्वसे, उसे काल कहते हैं। तो इस तरह देखिये ! सत्ता ही काल बन गया और सत्ता ही भाव कहलाता है। भाव शब्दकी व्युत्पत्ति है–भवति भाविष्यति अभूत् इतिभाव: । जो हो रहा है, होवेगा, हुआ था उसे भाव कहते है। तो इस तरह देखिये ! यह सत् ही तो भाव बना, पर्याय बना, यों सत्ता ही द्रव्यरूपसे, क्षेत्ररूपसे, कालरूपसे और भावरूपसे विशिष्ट होती है। तब समझ लेना चाहिये कि सन्मात्र द्रव्य भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप हुआ। और यों चतुष्टय रूप होकर यह सत् अब त्रिलक्षण बन जाता है, इसके समझनेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। सर्वप्रथम सन्मात्र सत्त्वको इस चतुष्टयमें विभिन्न करिये। कुछ भी सत् हो वह द्रव्य, क्षेत्र काल, भावकी अपेक्षाको छोड़कर नहीं रहता। सदा ही उस प्रकारसे व्यवहारका विषय बनता है।

सन्मात्र तत्त्वमें त्रैलक्षण्यके दर्शनका विवरण—यहाँ तक यह बताया गया कि देखिये ! प्रत्येक द्रव्यमें या जो कुछ भी इष्ट पदार्थ माना जाय उसमें त्रिलक्षणता माने बिना अस्तित्व नहीं ठहरता। इष्ट तत्त्व द्रव्य क्षेत्र काल, भाव स्वरूपसे भेद हो विशेषन होता है। अथवा सन्मात्र तत्त्व भी अनन्त पर्याय सिद्ध होता है। इस कारण अब इस सन्मात्र द्रव्यमें भी त्रिलक्षणताकी बात घटित कर लेना चाहिए। देखिये ! परस्पर व्यावृत्ति स्वभाववाली याने एक दूसरेसे भिन्न प्रकारका स्वभाव रखने वाली वह अनन्त गुण पर्यायोंकी संतति है। जितने भी गुण हैं वे सब गुण परस्परमें एक दूसरेसे विभिन्न स्वभाव रखते हैं। यदि विभिन्न स्वभाव न रखें तो वे अनन्त गुण न ठहरेंगे। सर्वसंकर होकर एक ही कुछ रह जायगा। और, यों ही जितनी पर्यायें हैं वे भी परस्पर व्यावृत्त स्वभाववाली हैं, अन्यथा वे परिणमन व्यक्तरूप ही सिद्ध न हो पायेंगे। तो ऐसे परस्पर व्यावृत्त स्वभाव वाले अनन्त गुण अनन्त पर्यायोंको प्रतिक्षण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वीकार करने वाली सत्ता ही ध्रौव्य है, ध्रौव्य रहेगी ध्रौव्य रही थी। ये सब विकल्प उस सन्मात्रमें भी लगाये जाना चाहिए और इस तरह फिर जैसे स्थितिमें विकल्प लगाये ऐसे ही पर्याय दृष्टिसे उत्पाद और व्ययमें भी विकल्प लगेंगे, और प्रत्येक लक्षण में त्रिकाल अपेक्षा घटित होगी, तब सन्मात्र द्रव्यमें भी ८१ विकल्पोंके रूपकी उत्पत्ति होगी। वह सन्मात्र तत्त्व याने सत्ता जीवादिक अनेक भेदोंसे प्राप्त करती हुई जब जानी जा रही है तब वहाँ ये चारों रूप व्यक्त होते हैं। सत्त्व ही जीवादिक अनेक भेदोंको प्राप्त करती है, अन्त द्रव्य है। सत्ता ही इन सब द्रव्योंको निवासित करती है, अतः क्षेत्र है। सत्ता ही पूर्व उत्तर पर्यायरूपसे प्रवर्तनी है अतः काल है, सत्ता ही होती है, होती रहेगी, हुइ थी, परिणामारूप, अतः सत्ता ही भाव है। यों चार प्रकार रूपमें भेदरूपसे जानी हुई सत्ता ही स्थिर रहती है, उत्पन्न होती है, विनष्ट होती है विनष्ट होती थी, स्थिर रही थी, उत्पन्न हो रही थी, विनष्ट होती रही थी, स्थिर रहेगी। उत्पन्न होती रहेगी, विनष्ट होती रहेगी। यह दृष्टि भेदसे सब घटित हो जाता है, इसके सम्बन्धमें स्पष्टरूपसे यह बताया गया है कि सत्ता समस्त पदार्थोंका समूह है और वह विश्वरूप है, अनन्त पर्याय वाली है। स्थिति व्यय और उत्पादसे निश्चित है और सत्ता प्रतिपक्ष सहित है। कोई पदार्थ सत् है तो किसी दृष्टिसे वही असत् है अतः सप्रतिपक्ष माने बिना सत्त्वका निश्चय नहीं बनाया जा सकता। ऐसी वह सत्ता सप्रतिपक्ष होकर भी एक है जब उसमें किन्हीं विशेषोंका भेद नहीं किया जाता, उस स्वरूपकी दृष्टिसे एक है।

सन्मात्र तत्त्वके मन्तव्यमें भी इतरेतराभावका अपन्हव न किये जाने की अशक्यता—जब सन्मात्र तत्त्व है इतना कहनेपर भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्वरूप वहाँ आवेंगे ही और तब उसमें अनन्त गुण, अनन्त पर्याय ये सब विदित होंगे तब प्रासंगिक बात उनमें यह समझना चाहिये कि वे सब गुण और पर्यायें परस्पर व्यावृत्त हैं। देखिये ! अन्यापोहका लक्षण सर्वत्र घटित होरहा है। अन्यापोहका अपलाप करनेपर फिर कोई भी अपना इष्टतत्त्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। कुछ भी पदार्थ सत् है, ऐसा कहनेपर यह तो कहना ही होगा कि जिस कल्पनामें जिस भावमें, जिस दृष्टिमें सत् है उससे विपरीत अन्य दृष्टिमें यह असत् है। जैसे घड़ा है तो वह घड़ेके अन्यरूपसे है, पर कपड़ा आदिक द्रव्यरूपसे नहीं है। यों सत्ता और असत्ता दोनोंको स्वीकार किए बिना घड़ेका अस्तित्त्व नहीं रह सकता। तब सन्मात्र द्रव्य है ऐसा कहने वालेके यहाँ भी यह बात अनिवार्यरूपसे सिद्ध होगी कि वे अनन्त गुण पर्यायात्मक हैं। और जब अनन्तगुण पर्याय सिद्ध हो गए तो भेद दृष्टिमें, पर्यायार्थिकनयकी विवक्षामें वहाँ गुण पर्याय ये सब अनेक हो गए। हाँ द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमें चूंकि वह भेदकी विवक्षा नहीं करता अतएव वहाँ कुछ अवक्तव्य एक ही है। यों पदार्थ द्रव्य पर्यायात्मक है। अब उसमेंसे पर्यायार्थिकनयकी प्रधानतासे और द्रव्यार्थिकनयको गौण करके जब देखते हैं तो सभी पदार्थोंमें स्वभावान्तरकी व्यावृत्ति

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रसिद्ध होती है। अन्यापोहका लक्षण भी यही किया गया है कि स्वभावान्तरसे स्वभावकी व्यावृत्ति होनेका नाम अन्यापोह है तो वस्तुस्वरूपको सिद्ध करने जब चलते हैं तो अन्यापोहका आश्रय लिये बिना सिद्ध नहीं किया जा सकता। तो यहाँ यह स्वभावान्तर व्यावृत्ति सिद्ध हुई और अन्यापोहका न मानना यह सिद्ध नहीं होता है। अन्यापोहके अपलापका निराकरण स्वयमेव हो जाता है यह रहस्य वस्तुस्वरूपकी सम्हाल करते हुए में अन्यापोहका सहारा लिया जानेसे स्पष्ट सिद्ध है। इस सम्बन्धमें अधिक प्रयास करनेकी जरूरत नहीं। वस्तुके स्वरूपको सिद्ध करनेमें ही अन्यापोहकी सिद्धि हो जाती है। कुछ भी कहा जायगा द्रव्य, गुण, पर्याय किसी भी रूपको लिया जायगा तो वहां अनेक तत्त्व विदित होंगे। और परस्पर एक दूसरेसे स्वभाव विभिन्न रखता है यह मानना ही होगा। और विशेष बात जाने दो, कुछ भी इष्ट तत्त्वकी कोई कल्पना करे तो उसमें अनिष्ट तत्त्वका अभाव है कि नहीं ? यदि अनिष्टका अभाव नहीं है तब इष्ट न रहा, किन्तु अनिष्ट बन गया। अतः प्रत्येक स्वरूपकी सिद्धिमें अन्यापोहका आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। यों अन्यापोहका याने अन्योन्याभावका उल्लंघन करनेपर समस्त पदार्थ सर्वात्मक हो जायेंगे। जब सभी सर्वात्मक हो गए, कोई एक भी सर्वात्मक हो गया तब स्वयंकी कोई सत्ता न रही। यों अन्यापोह अर्थात् इतरेतराभाव न माननेपर अर्थात् इतरेतराभावका मना करनेपर सारा विश्व शून्य हो जायगा।

अत्यन्ताभावका अपन्हव करनेपर सर्वके सर्वात्मकताका प्रसंग और इष्टतत्त्वकी अप्रसिद्धि-इतरेतराभावका लोप करनेपर सर्वात्मकता और शून्यताका प्रसंग आता है। यह बात बताकर अब यह बतला रहे हैं कि अत्यन्ताभावके अपन्हव करनेपर क्या स्थिति होती है। कोई दार्शनिक परमार्थमें अत्यन्ताभाव को स्वीकार नहीं करते। तो जिन दार्शनिकोंने अत्यन्ताभाव को नहीं माना है उनके सिद्धान्तमें फिर किसी पदार्थमें अन्य पदार्थके गुण क्यों न आ जायेंगे। जैसे जीवमें रूपादिक सत्य रूपसे क्यों न बर्तेंगे। क्यों बर्तेंगे यह बात सुनकर सांख्यसिद्धान्तानुयायी कहते हैं कि यदि किसी पदार्थमें कोई अन्य चीज रहती है तो रहो, हमारा तो सिद्धान्त है कि सब कुछ सब जगह मौजूद है। ऐसे प्रश्न के समाधानमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि यदि यह नीति मान ली जाती है कि सब कुछ सब जगह रहता है तब इसपर अब डटे रहिये ! मना न करना। देखिये—सब जगह सब कुछ सर्व प्रकारसे उपलम्भकी बात मानते हो सो अत्यन्ताभाव न माननेपर यह बात माननी ही पड़ेगी कि सब कुछ सब जगह सर्व प्रकार पाया ही जाता है। तो अब देखिये—ज्ञानादिक घटादिकमें कहाँ पाये जा रहे हैं यह बात स्पष्ट है उसका निराकरण नहीं कर सकते। घट पट आदिक अचेतन पदार्थोंमें ज्ञानानन्द आदिक कहाँ पाये जा रहे और आत्मामें रूपादिक कहां पाये जा रहे ? तो केवल कहने मात्रसे तो स्वरूप नहीं बनता। स्वरूप तो वह है जो वस्तुमें पाया जाय। कुछ भी चीज अपने स्वरूपकी तरह पररूपसे भी पायी जाय तब कोई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

इष्ट तत्त्व नहीं रहता है, क्योंकि इष्ट तत्त्वके माननेमें इतना तो मानना ही होगा कि यह अपना इष्ट तत्त्व किसी अनिष्ट पदार्थमें सत्य स्वरूपसे नहीं रह रहा है और तीन कालमें नहीं रहता है। इस तरह की बात तो माननी ही पड़ेगी। और, ऐसा मानने पर सिद्ध हो गया कि यह ही तो अत्यन्ताभाव है।

अभावग्राहक प्रमाणका अभाव होनेसे अत्यन्ताभावकी असिद्धिसे सम्बन्धित क्षणिकवादियोंकी आरेका!—अब इस प्रसंगमें क्षणिकवादी कहते हैं कि अत्यन्ताभाव कहाँसे मान लोगे ? जब अभावकी प्रतिपत्ति ही नहीं हो रही है, अभाव कोई विषय ही नहीं है तब फिर अभाव मान कैसे लिया जायगा ? सर्वथा भावलक्षण अभावका कोई ग्रहण करने वाला प्रमाण नहीं है, क्योंकि अभावका ग्रहण ही नहीं होता। अभाव विषयभूत पदार्थ ही नहीं है। प्रमाणका विषय तो भाव होता है, सत्तात्मक वस्तु होती है। असत् पदार्थ प्रमाणका विषय नहीं होता। प्रमाण होते हैं दो — प्रत्यक्ष और अनुमान। जिनमें प्रत्यक्ष तो रूपादिक स्वलक्षणको ही विषय करता है। जो रूपक्षण रसक्षण, ज्ञानक्षण आदिक स्वलक्षणमात्र सत् हैं उनको ही प्रत्यक्ष जानता है। प्रत्यक्षकी अभावमें प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्ष अभाव कारणक नहीं हो सकता। क्षणिकवादमें पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानी है। तो जिससे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उसको विषय करता है। जैसे कोई सन्देह करे कि कैसे जाना जाय कि यह घटका ज्ञान है ? तो कहिये ! घट पदार्थसे उत्पन्न हुआ ज्ञान है वह घटका ज्ञान है। तो ज्ञान (प्रमाण) अर्थसे उत्पन्न होता है, किन्तु जो अभाव है वह असत् है उससे तो कोई ज्ञान और प्रमाण उत्पन्न नहीं हो सकता अन्यथा खरविषाणसे ज्ञान उत्पन्न हो बैठे ! तो प्रत्यक्ष ज्ञान अभाव कारणक नहीं हो सकता और कदाचित् कोई ज्ञानको अभावकारणक मान ले तो अभाव फिर अभाव न रहा, वह स्वलक्षण बन गया, कोई क्षणिक सत् वस्तु परमार्थ हो गया, लेकिन अभाव तो परमार्थ नहीं है वह तो असत् है। तो ऐसा जो असत् है, अकारण है, अभाव है, जो ज्ञानका कारण ही नहीं बन सकता वह अविषय हो रहेगा, प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा विषयभूत नहीं हो सकता।

अनुमानसे भी अभावका अग्रहण होनेसे अत्यन्ताभावकी असिद्धिकी आरेका—अब दूसरे प्रमाणके सम्बन्धमें बात सुनो ! दूसरा प्रमाण है अनुमान। सो अनुमान भी अपने कारणको ही विषय करता है, अभावको विषय नहीं करता। तो अनुमान यद्यपि साक्षात् स्वकारणका विषय करने वाला नहीं है, तो भी परम्परासे अपने कारणको ही विषय करता है। जैसे — अग्नि स्वलक्षणसे धूम स्वलक्षण उत्पन्न होता है और उससे धूमका दर्शन होता है। धूम दर्शनसे धूमका विकल्प होता है और धूम विकल्पसे फिर अग्निका अनुमान होता है। तो देखिये ! अनुमानका कारण है धूमका विकल्प और धूमका विकल्प बना है धूमके प्रत्यक्ष ज्ञानसे, धूमदर्शनसे और

http://sahjanandvarnishastra.org/

धूम दर्शन होता है धूम स्वलक्षण से और धूम स्वलक्षणकी उत्पत्ति हुई है अग्नि स्व लक्षणसे तो परम्परासे अनुमानका विषय कारण ही पड़ा। यहाँ कोई ऐसा यदि सन्देह करता है कि यह एक कार्य अनुमान भी होता है याने कार्यरूप साधन देख करके कारणरूप साध्यका ज्ञान करना और यह कार्यलिंग बनता है तब जब यह बोध होता है कि इस कारणके बिना यह कार्य नहीं हो सकता था। तो यों कार्य अनुमानमें अभाव कारण पड़ गया। ऐसा सन्देह यों न करना चाहिए कि भले ही किसी परंपरा से कार्य अनुमानसें अभावकी कारणता आ गई लेकिन यह वास्तविक नहीं है, युक्तिसे असिद्ध है वहाँपर भी भावस्वभाव स्वलक्षण ही कारण होता है। स्वभावानुभवमें भी अभावकी भावात्मकता आती है, जिसे लोग अभाव कहते हैं वह अभाव नहीं किन्तु भावस्वरूप है। अभावमें स्वभाव नहीं होता याने अभाव स्वभाव हेतु नहीं बन सकता। अब तीसरा हेतु होता है अनुपलब्धि सो अवस्तुकी अनुपलब्धि बतानेसे कोई अभाव ग्रहणमें नहीं आता, किन्तु पर्युदास पद्धतिसे किसी वस्तुमें ही ज्ञानका नियम बनता है। यों अनुमान प्रमाणसे भी भाव विलक्षण अभावकी सिद्धि नहीं होती। सर्वथा ही अभाव अविषय रहता है। अनुपलब्धिका जो विषय है वह भी भावस्वभाव ही है, ऐसा ही अभाव है क्योंकि किसी एककी केवलता बताना दूसरेकी विकलता कहलाती है। जैसे कोई कहता है इस कमरेमें घड़ा नहीं है, तो उसने जाना क्या? उस पृथ्वीकी केवलताको। खाली पृथ्वी थी देखो—इसीके मायने हैं घटका अभाव। तो वह अभाव भी भाव स्वभाव रहा। सर्वथा भाव विलक्षण अभाव कोई तत्त्व ही नहीं है। फिर अत्यन्ताभावकी सिद्धि कैसे होगी?

क्षणिकवाद प्रस्तुत अत्यन्ताभावपन्हवकी आरेकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि बात तो कुछ ठीक कही जा रही है। तुच्छाभावरूप अभाव तो नहीं होता लेकिन किसी एक की केवलताका नाम दूसरेकी विकलता है। ऐसा कहने वाले क्षणिकवादी किसी भी रूपसे अभावका निर्णय नहीं करते हैं। यह आश्चर्यकी बात है। और, देखिये—स्वयं माना है अभाव। पर सीधे शब्दोंमें अभावके समर्थनका भय है। क्षणिक सिद्धान्तमें भी भावकी उत्पत्ति और अभावकी भी प्रतिपत्ति मानना तो बन ही गया, सो देखिये! ये क्षणिकवादी अनादि वासन से उत्पन्न हुए विकल्पमें सुनिश्चित किया गया यह तीन प्रकारका धर्म, कारण स्वभाव और अनुपलब्धि ये भाव अभाव दोनोंके आश्रित हैं। ऐसा स्वयं स्वीकार करते हैं याने परमार्थसे भाव और अभावकी प्रतिपत्ति मानते हैं। यों भाव और अभावकी जानकारी करनेसे अभावका मानना स्पष्ट सिद्ध हो जाता फिर भी अभावकी जानकारीमें वे प्रकृत प्रश्न क्यों किए जा रहे हैं कि कैसे अभावकी जानकारी होगी? यदि यह प्रश्न किया जा रहा है तो परमार्थसे ये दार्शनिक स्वस्थ नहीं हैं। अपने आपकी स्वच्छ बुद्धिमें ठहरे नहीं रहे, क्योंकि देखिए—जितने भी जो कुछ सत् हैं वे स्वरूपसे भावरूप और पररूपसे अभावरूप इस लक्षणसे खड़े हुए हैं। जैसे कि न सैनीके पद जिनपर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि पैर रखकर लोग चढ़ते हैं वे पद नसैनीके दोनों लम्बे काठों से बँधे हुए हैं। क्या कोई नसैनीका पद ऐसा भी हो सकता है कि जो एक काठसे बंधा हुआ हो ? जो नसैनीके पद बंधोंकी तरह समस्त पदार्थ भावस्वभाव और अभाव स्वभाव दोनोंसे प्रतिबद्ध हैं। पदार्थ सत् है तो वह स्वरूपसे सत् है, पररूपसे असत् है। स्वरूपादिककी तरह पररूपादिकसे द्वारा भी अपने इष्ट तत्त्वका सद्भाव मान लेनेपर अपने इष्ट तत्त्वका विघात होता है।

अभावका अपन्हुव करनेपर विज्ञानमात्र तत्त्वकी साधनाकी निरुपायता—विज्ञानाद्वैतवादियोंके यहाँ भी अभावका अपन्हुव करनेपर उस विज्ञानाद्वैतको स्वरूपादिकके द्वारा जैसे सद्भाव माना है उस तरह पररूपादिकके द्वारा भी सद्भाव मान लेंगे। तो उसमें भेदरूपता आ जायगी अथवा वह रहेगा ही नहीं। पररूपादिके द्वारा जैसे ज्ञानाद्वैतका अभाव माना है इसी प्रकार स्वरूपादिकके द्वारा भी उस ज्ञानमात्रका अभाव माननेपर स्वयं उस इष्ट विज्ञानमात्र तत्त्वका विरोध हो जायगा। कोई भी प्रमाण सर्वात्मक रूपसे भाव अथवा अभावका ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है। याने स्वरूपसे भी सद्भाव है और पररूपसे भी सद्भाव है, ऐसा माना जाता है तो भी वस्तुका स्वरूप नहीं बनता। असत् हो जायगा वस्तु। और, पररूपसे भी अभाव है तथा स्वरूपसे भी अभाव है ऐसा भी कहीं देखनेमें नहीं आता, और न ऐसा सर्वात्मक भावको कोई प्रमाण ग्रहण करता है। यदि कोई प्रमाण स्वरूपसे भाव और अभावको ग्रहण करने लगे तो पदार्थके प्रतिनियतता रह ही नहीं सकती कि यह घट ही है, कपड़ा आदिक नहीं है। इसको सिद्ध करनेका फिर कोई उपाय न रहेगा।

भावप्रमेयके एकान्तमें अभावनियमप्रतिपत्तिका भी अभाव—और भी देखिए ! क्षणिकवादियोंके यहां भाव ही प्रमाणका विषय बताया गया है। अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण केवल स्व लक्षणको सद्भावको ही विषय करते हैं, इस प्रकार जो भावप्रमेयका एकान्त मानते हैं, अर्थात् प्रमेय है तो केवल भाव ही है ऐसा कहनेवाले एकान्तवादियोंके यहाँ अभावकी प्रतिपत्ति नय और प्रमाणसे रहित है। इस ही कारण भावको प्रतिपत्ति होती है, ऐसा नियम नहीं बन सकता। कोई भी पदार्थ है तो उसका कथंचित् सिद्ध होगा ही। यदि किसी प्रकारका किसी पदार्थमें किसीका असत्त्व न माना जाय तो स्वभावकी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती। घटमें पटकी असत्ता न मानी जाय तो कैसे व्यवस्था बनायी जा सकेगी कि यह घट ही है। तो पदार्थका सत्त्व कायम रखनेके लिए यह मानना होगा कि पदार्थ स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है। जब इसके माने बिना स्वरूप व्यवस्था नहीं बन सकती तो सिद्ध हो गया ना, कि अत्यन्ताभाव है, एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यसे। इस अत्यन्ताभावका निराकरण करनेपर फिर कोई भी वस्तु अपना स्वरूप नहीं रख सकतो है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभावके अनभ्युपगममें वस्तुसत्ताकी असिद्धि होनेसे क्षणिकवादमें तृतीय प्रमाणान्तर माननेकी अनिवार्यता- चूंकि किसी प्रकारसे अभाव माने बिना वस्तुकी सत्ता सिद्ध नहीं होती, तब क्षणिकवादियोंको भी अभावकी त्रिविधता स्वीकार करनी ही पड़ी और अभावका स्वीकार करना ही पड़ा अब अभावका प्रमेयत्व स्वीकार करनेपर प्रमाण दो हैं इस प्रकारका नियम नष्ट हो जाता है क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणोंने तो क्षणिकवादियोंके अभावको ग्राहक माना तब अभावको ग्रहण करने वाला कोई अन्य प्रमाण मानना पड़ेगा। देखिये! तुच्छाभाव प्रमाणका कारण नहीं माना सो प्रत्यक्ष और अनुमान नामक ज्ञानमें अभावकी ग्राहकता तो होगी नही। क्योंकि प्रमाण और तुच्छाभावका तादात्म्य नहीं माना है और इसी कारण अभावसे प्रमाणकी उत्पत्तिके सम्बन्धका क्षणिकवादमें विरोध आता है। तुच्छाभावसे प्रमाणकी उत्पत्ति माननेपर वह तुच्छाभाव भाव स्वभाव ही बन बैठेगा। प्रमाण और नैरात्म्यका यदि सम्बधान्तर मानते हैं तब तो लिंगकी त्रिविधता का विरोध होता है। अर्थात् क्षणिकवादमें लिंग माने हैं तीन—कारण, स्वभाव और अनुपलब्धि। लेकिन अब यहाँ प्रमाण और तुच्छाभावके सम्बन्धमें कोई अन्य लिंग मानना पड़ा प्रमाण और नैरात्म्यका जब तीनों प्रकारोंमेंसे कोई सम्बन्ध न रहा तब अन्य प्रमाणकी सिद्धि होवेगी ही। फिर दो प्रमाणोंके नियमका विघटन कैसे न होगा। अर्थात् अब प्रमाण तीसरा मानना पड़ेगा जो अभावका ग्रहण करने वाला होगा।

अभावकी समझ किये बिना क्षणिकवादमें प्रत्यक्ष व अनुमान प्रमाण की भी असिद्धि—अभावसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती, ऐसा एकान्त करनेपर प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण भी न बन सकेंगे क्योंकि खुद क्षणिकवादियोंने कहा है कि पदार्थसे अभावमें प्रत्यक्ष प्रमाणका अभाव होता है अतएव प्रत्यक्षमें प्रमाणता आती है व साध्यके साथ जिसका प्रतिबंध है ऐसे साधनको हेतु माननेपर भी ये दोनों बातें एक समान हैं। इस कथनमें अभावकी सिद्धि समझे बिना कुछ निर्णय न किया जा सकेगा। तब प्रत्यक्ष और अनुमानका भी निश्चय कैसे हो सकेगा? परन्तु मानसिक जो अभाव ज्ञान है वह अपनी कारण सामग्रीसे उत्पन्न होता है और वह अभाव का परिच्छेदक है ऐसा माननेपर तो अभावका ग्रहण करने वाला कोई प्रमाणान्तर बन जायगा। तब प्रमाण प्रतिबन्धका नियम न रहा कि प्रमाण दो ही हैं। इस प्रकार अभावके अपन्हव करनेपर ये समस्त दोष उपस्थित होते हैं। उस दोषको टालनेकी इच्छा रखने वाले दर्शनिकोंको यह मानना होगा कि जिस अभावकी प्रतिपत्ति होती है वह अभाव भी वस्तुका धर्म ही है। जैसे पदार्थका धर्म अस्तित्व है उसी प्रकार पदार्थका धर्म नास्तित्व भी है और उस अभावकी प्रतिपत्ति हुआ करती है। तब यह निश्चित हुआ कि जो दार्शनिक केवल भावैकान्तको मानते हैं उनके यहाँ अपने इष्टकी भी सिद्धि नहीं हो सकती। अतः प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव अन्योन्या-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भाव और अत्यन्ताभावके रूपके अभावकी व्यवस्था माननी ही होगी। तब पदार्थ केवल सद्रूप ही न रहा, सद् सदात्मक सिद्ध होता है। अब समन्तभद्राचार्य भावैकान्त पक्षमें दूषण बताकर अभावैकान्त पक्षमें भी बाधा बतलाते हैं।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम्।
बोधवाक्यं प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥१२॥

अभावैकान्त माननेपर स्वेष्ट तत्त्वकी सिद्धिकी निरूपायता—अभाव का एकान्त स्वीकार करनेपर उसका अर्थ यही तो हुआ कि भावका अपन्हव किया गया अर्थात् अस्तित्व माना ही नहीं। कोई पदार्थ सद्रूप न रहे तो भावका अपन्हव करने वाले शून्यवादियोंके यहाँ ज्ञान, वाक्य, प्रमाण ये नहीं बन सकते। फिर किसके द्वारा साधनमें दूषण दिया जा सकेगा? सर्व शून्यवादियोंने अपने शून्यवादकी ऐसी प्रतिज्ञा की है कि जिस एकत्व अनेकत्व स्वभावमें भावोंका निरूपण किया जाता है वस्तुतः वह स्वरूप नहीं है। जिससे कि एक और अनेक रूप उन भावोंमें नहीं घटित होता है। इस तरह सर्वका शून्य है ऐसी प्रतिज्ञा करना सो अभाव एकान्तका पक्ष है। उस अभाव एकान्तसे पक्षमें भी जो अपने अर्थका साधन और दूषण रूप बने ऐसे ज्ञान का और वाक्यका वहाँ होना सम्भव ही नहीं है। न तो दूसरेके साधनमें दूषण दिया जा सकता है और न अपने साधनमें कोई युक्ति दी जा सकती है। तब फिर कुछ प्रमाण ही न रहा, फिर कैसे प्रमाणके द्वारा नैरात्म्यकी सिद्धि की जायगी। न तो अपने समझनेके लिए नैरात्म्य सिद्ध किया जा सकता न दूसरेके समझानेके लिए नैरात्म्यकी सिद्धि की जा सकती। भला बतलावो—जो भावका अपन्हव करता है, केवल अभावको ही तत्त्व मानता है वह किस वाक्यके द्वारा दूषण दे सकेगा। यदि कोई भी दार्शनिक अपने पक्षका साधन मानता है और परपक्षको दूषण देना मानता है तो उसके मन्तव्यमें साधनकी सिद्धि बराबर सिद्ध होती है।

अभावैकान्तमें स्वपक्षसाधन व परपक्षदूषणकी अशक्यता—अब इस तरह भी देखिये कि वस्तुतः सभी पदार्थ सत् हैं। बाह्य पदार्थ और अन्तरङ्ग ज्ञान पदार्थसे सब परमार्थतः सत् हैं, क्योंकि उन सब पदार्थोंमें से किसी एकका भी अपलाप किया जाय, बाह्य पदार्थ न माना जाय या अन्तः ज्ञान पदार्थ न माना जाय तो साधन और दूषणका प्रयोग करना बन ही नहीं सकता। यहाँ कोई यह शंका कर सकता है कि इस अनुमानसे साध्यकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि उसमें पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व विपक्षव्यावृत्ति का अभाव है, सो बात नहीं कह सकते, क्योंकि जब एक युक्तिसे प्रकृत अर्थकी जानकारी पूर्ण रूपसे बन जाती है तब हेतुमें त्रिलक्षणकी कल्पना करनेसे लाभ क्या है? देखिये सपक्षसत्त्व न होनेपर भी केवल एक ऐसे हेतुसे जिसमें कि यह नियम निर्णीत हुआ है कि साध्यके अभावमें नहीं हो सकता तो साध्यके

Version 1

अभावमें साधनके न होनेका नियम जिसमें पड़ा हुआ है ऐसे अन्यथानुत्पत्ति लक्षणवाले साधनसे जब साध्यकी सिद्धि हो जाती है तो साधनका समर्थन बन ही गया ना। अब सपक्षसत्त्वकी वहाँ क्या आवश्यकता रही? सपक्षसत्त्वके अभावमें भी जब सर्व पदार्थों को अनित्य सिद्ध करनेमें क्षणिकवादी सत्त्वादिक हेतु देते हैं तो देखिये! उन्होंने कुछ भी साधन माना है उसका सपक्षसत्त्व नहीं है। जब क्षणिकवादी यह अनुमान प्रयोग करते हैं कि सर्व अनित्य हैं सत्त्व होनेसे तो अब इसका सपक्ष वे बतायें क्योंकि सब कुछ तो पक्षमें अन्तर्भूत हो गया। सपक्ष बनानेके लिए अब कुछ भी न रहा। तो जब सपक्ष ही नहीं है तब उसमें साधनके सद्भावकी बात ही क्या? तो यों सपक्षसत्त्वका अभाव होनेपर भी सर्वका अनित्य सिद्ध करनेमें जो सत्त्वादिक हेतु दिए गए हैं उनसे यह सिद्ध है कि क्षणिकवादियोंने स्वयं सपक्ष सत्त्व के अभावमें भी साधनका साध्यका साधक माना है। स्वयं जहाँ धर्मी धर्म प्रसिद्ध है, विज्ञानाद्वैत की अपेक्षासे धर्मी और धर्म ये सिद्ध नहीं है क्योंकि धर्मी धर्म माननेपर वहाँ द्वैतका प्रसंग आ जाता है। तो वहाँ पक्ष धर्म न होनेपर भी प्रमाणके अस्तित्वमें इस साधनको हेतुरूपसे दिया ही गया है और किसी किसी प्रयोगमें त्रिलक्षणके अभावका अभाव होनेपर भी हेतुरूप नहीं माना। जैसे कोई यह अनुमान बनाये कि यह मंत्रीका लड़का श्याम है मैत्रीका लड़का होनेसे तो इस हेतुका पक्ष सत्त्व भी है, सपक्ष सत्त्व भी बन सकता है, विपक्ष व्यावृत्ति भी बन सकती है, लेकिन इस अनुमान प्रयोगमें साधनका अन्यथानुत्पत्ति नहीं है, तो अन्यथानुत्पत्तिका नियम न होनेसे देखो यह हेतुरूपसे नहीं माना गया। अतः अन्यथा-नुत्पत्ति ही साधनका सही लक्षण है और ऐसे हेतुसे ही साध्यकी सिद्धि होती है। त्रिलक्षणताकी कल्पना करना व्यर्थ है।

शून्यवादके मन्तव्यमें विडम्बनाका वर्णन—अब यहाँ माध्यमिक क्षणिक-वादी कहते हैं कि साधन और दूषणका प्रयोग शून्यवादियोंके यहाँ परमार्थसे सिद्ध नहीं है जिससे कि बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कोई सद्भूत वस्तु परमार्थसे सिद्धकी जाय। और असिद्ध हेतुसे साध्यकी सिद्धि की नहीं जा सकती, यदि असिद्ध हेतुसे साध्यकी सिद्धि की जाने लगे तो इसमें अतीत विडम्बनायें बन जायेंगी। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह भी सब बिना विचारे कहा गया है। क्योंकि यदि परमार्थसे नैरात्म्यक सिद्धि नहीं मानी जा रही है तो अशून्यवादमें दूषण भी नहीं दिया जा सकता। जब वास्तवमें हेतु अनुमान साधन आदिक माने ही नहीं गए हैं तो वास्तवमें शून्यवादकी सिद्धि भी नहीं बन सकती। देखिये! कल्पना मात्रसे साध्य साधनकी व्यवस्था करना युक्तिपूर्ण नहीं है। यदि साध्य साधनकी व्यवस्था कल्पनासे की जाती है तब तो वह मिथ्या है और मिथ्या साध्य साधनसे कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती या किसीके मंतव्यमें दूषण नहीं दिया जा सकता। और, यदि शून्यवादको परमार्थ मानते हो तो शून्यवादके परमार्थपना माननेपर केवल साधन सिद्धि ही कल्पित न बनेगी, किन्तु नैरा-त्म्य (शून्यवाद) भी कल्पित बन जायगा, क्योंकि काल्पनिक साधनसे वास्तवमें सिद्धि

http://www.jainkosh.org

नहीं बन सकती। शून्यवाद है, यह क्या वास्तविक बात है। शून्यवादकी वास्तविकता यदि काल्पनिक साधनसे सिद्ध करते हो तो काल्पनिक साधनसे शून्यवादकी वास्तविक कल्पना सिद्ध नहीं हो सकती। यदि कहो कि शून्यकी सिद्धि वास्तविक नहीं है तब फिर पदार्थोंके सद्भावका निराकरण न किया जा सकेगा, क्योंकि शून्यसिद्धिको तो अपरमार्थ मान लिया याने शून्य परमार्थ नहीं है। तो अर्थ यही हुआ कि अशून्य है। पदार्थों का सद्भाव वास्तविक है तब तो सर्व पदार्थोंकी शून्यता की सिद्धि नहीं बन सकती। अर्थात् अंतस्तत्त्व ज्ञानस्वरूप और बाह्यतत्त्व ये समस्त पदार्थ वास्तविक हैं इनमें शून्यताका दोष नहीं आता। और जब सभी पदार्थोंकी अशून्यता सिद्ध हो जाती है तब शून्यका साधन करना विरुद्ध बन जाता है।

अभावैकान्तपक्षमें विज्ञानाद्वैतकी असिद्धि—विज्ञानमात्र तत्त्वमें ज्ञानस्वरूपका वेद्य वेदकभाव नहीं है, तो वेद्य वेदक भाव न होनेसे यदि यह कह दिया जाय कि विज्ञानकी गति तो स्वतः होती है, याने ज्ञानकी जानकारीके लिए अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होती, तो यह बात समारोपके व्यवच्छेदमें भी कही जा सकती है तब साध्य साधनकी व्यवस्था कल्पनामात्रसे क्यों नहीं हो जाती? वहाँ भी सब कल्पनासे मानना होगा। जब कि शून्यवादका साधन एक कल्पनामात्रसे मान लिया जाता है तो कुछ भी बात कल्पना मात्रसे मान ली जाना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जो लोग अभावका एकान्त करते हैं, मात्र एक अभाव ही तत्त्व है, सद्भाव कुछ भी नहीं है तो जब कुछ है ही नहीं तो इसके मायने यह हुआ कि वाक्य भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, प्रमाण भी नहीं है। तो दूसरेको समझावेंगे किस तरह कि शून्यवाद ही तत्त्व है और स्वयं भी जानेंगे किस तरह कि शून्यवाद भी तत्त्व है। तो अभावका एकान्त माननेपर शून्यवाद का साधन नहीं बन सकता है और भाववादका दूषण देनेमें न कोई प्रमाण बन सकता है और न कोई वाक्य बन सकता है।

शून्यवादकी अन्तः स्वीकारता न होनेपर भी शून्यवादकी व्यर्थ पुकार

किसी भी प्रमाण या साधनसे परमार्थतः नैरात्म्य ज्ञानका व्यवच्छेद मान लिया जाय तो इस स्थितिमें साध्य साधनकी व्यवस्था काल्पनिक न रहेगी और नैरात्म्य ज्ञानके व्यवच्छेद होनेसे जो अपरमार्थ मान लिया जाय, साम्प्रतिक स्वीकार किया जाय तब तो फिर जहां नैरात्म्य ज्ञानका निराकरण न हो ऐसे वाक्य वाचक भावसे शून्य उस नैरात्म्य ज्ञानकी उस सम्वेदन मात्रकी स्वतः भी गति नहीं बन सकती और तब बहिस्तत्त्व और अन्तस्तत्त्वकी अशून्यता हो जाती है तब देखिये! कि ये शून्यवादी हेय उपादेयसे रहित बातोंको केवल पुकारते ही है। उनको दृष्टिमें हेय तो है अंतस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व तथा उपादेय है नैरात्म्य याने कुछ स्वरूप न आये कोई मुद्रा ही न बने, ऐसा सम्वेदन मात्र। इस प्रकार हेय उपादेय रहितरूपसे केवल शून्यवादी एक पुकार ही करता है उनका सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता है। जैसे कि तत्त्वोपप्लववादी अपने सिद्धान्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की पुष्टिमें केवल प्रलाप भर करते हैं। तत्वका सर्वथा उपप्लव नहीं हो सकता है।

कल्पनासे सद्वादकी हेयता व शून्यवादकी उपादेयता माननेका व्यर्थ व्यामोह—अब यहाँ शंकाकार कह रहे हैं कि कल्पनासे हेय सद्वादको मान लिया गया है और उपादेय शून्यको मान लिया गया है। तथा हेयका निषेध और उपादेयका विधान इन दोनोंका उपाय भी मान लिया है। कल्पनासे ये सब बातें सिद्ध कर ली जायेंगी। तब तो शून्यवादके मन्तव्यमें निर्लज्जताका दोष या केवल प्रलाप मात्र या एक किसी गुस्सामें आकार सर्व अपलाप करने वाली बुद्धि न बनेगी, वह दोष न आयगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो इस ही पदके अर्थपर विचार करिये कि 'कल्पनासे है" इतने पदका अर्थ क्या है। कल्पनासे है क्या इसका तात्पर्य यह है कि स्वरूपसे है या पररूपसे नहीं है यह अर्थ है या स्वरूपसे है पररूपसे नहीं ये दोनों बाते हैं अथवा दोनों ही बातें नहीं हैं? इन विकल्पोंका विश्लेषण करनेपर विदित होगा कि यह सब स्याद्वादके अनुकूल ही कहा जा रहा है।

"कल्पना है" इसके अर्थरूप चार विकल्पोंमें स्याद्वादके अनुसरणकी झलकका विवरण उक्त चार विकल्पोंमेंसे यदि कल्पनासे है इतने वाक्यका अर्थ यह किया जाता कि स्वरूपसे यह पदार्थ है तब तो यह बात स्याद्वाद शासनके अनुकूल ही है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है। फिर तो वे वक्ता केवल अपनी हठ ही सूचित कर रहे हैं जो कि सद्वृत्तिसे है, इसका अर्थ स्वरूपसे है मानकर फिर भी शून्यवादकी रट लगाये जा रहे हैं। न्यायके बलसे जो बात निरस्कृत हो जाती है, खण्डित हो जाती है, उसका यदि प्रलाप किया जाय, जिसमें अपने मंतव्यकी सिद्धि कुछ भी न होती हो ऐसा प्रलाप एकमात्र धृष्टता ही है। स्वरूपसे अस्तित्वका तो स्याद्वादियोंने समर्थन किया है सम्वेदनकी तरह। सर्वभाव स्वरूपसे हैं। जैसे कि सम्वेदनवादी इतना तो कह ही लेते हैं कि सम्वेदन अपने स्वरूपसे है। तब देखो कि क्षणिकवादियों ने भी उस स्याद्वाद सिद्धान्तके अनुकूल अब निश्चय करनेकी ओर आनेकी ठान ली है। यदि कल्पनासे है इसका अर्थ यह किया जाय कि पररूपसे नहीं है, द्वितीय विकल्प माना जाय तो यह भी बात स्याद्वादियोंके अनुकूल है। जैसे कि प्रथम विकल्पमें स्वरूपसे अस्तित्वकी बात स्याद्वादके अनुकूल रही। अब केवल नाममें ही विवाद रहा। अर्थमें विवाद न रहा। तात्पर्य तो यह ही हुआ कि प्रत्येक पदार्थ पररूपसे नहीं है। अब इसे शून्यवाद कहो, कुछ शब्द कह लिया जाय तो ऐसे अर्थको मानकर फिर किन्हीं भी नामोंसे कहो—केवल नाममें ही विवाद रहा। यह द्वितीय विकल्प भी प्रथम विकल्पकी तरह अनुकूल है। अर्थात जैसे पदार्थ स्वरूपसे है, इस बातमें कोई बाधा नहीं है इसी प्रकार पदार्थ पररूपसे नहीं है इस मंतव्यमें भी कोई बाधा नहीं आती। जैसे सम्वेदनवादीको भी यह मानना पड़ता है कि उसमें ग्राह्य ग्राहकके अभाव की विकलता है और ग्राह्य ग्राहक भावका अस्तित्व है। तो जैसे वह ग्राह्य ग्राहक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भाव सम्वेदनसे पररूप माना है और उस पररूपसे रहित सम्वेदनको बताते हैं तो ज्यों सम्वेदनमें पररूपसे नास्तित्वकी बात ज्ञानमात्र अद्वैतवादी कहते हैं, तो यों ही समस्त पदार्थोंके पररूपसे नास्तित्वका समर्थन करना चाहिए कि समस्त पदार्थ पररूप से नहीं हैं। इसमें किसी भी प्रकारका विवाद नहीं है। इस कारण याने जब स्वरूपसे सत् और पररूपसे असत्त्वकी बात सिद्ध हो गई तो उभय और अनुभयका विकल्प भी यथार्थ समझ लेना चाहिए। जब संवृत्तिसे है इसका अर्थ स्वरूपसे है, कर लिया गया, और उसमें कोई विवाद न रहा और सम्वृत्तिसे है, इसका अर्थ पररूपसे नहीं है यह कर लिया गया और इसमें भी बाधा नहीं है। तो इस ही प्रकार यदि संवृत्तिसे है इसका अर्थ यह किया जाय कि स्वरूपसे है, पर रूपसे नहीं है। तो इसमें भी किसी भी प्रकारका विवाद नहीं है। यह तृतीय विकल्प भी समर्थित होता है। अब यदि चौथे विकल्पकी बात लोगे कि अनुभयरूपसे है, पदार्थ यह है "कल्पनासे है" इस वाक्यका अर्थ, तो इसमें भी कोई विवाद नहीं है। एक साथ दोनों दृष्टियोंसे बात देखी जाय तो वह अवक्तव्य होती है। अनुभय है वह, इस बातका आगे समर्थन किया ही जायगा। अब यहाँ शंकाकार कहते हैं कि हेय उपादेयका ज्ञान संवृत्यात्मकरूपसे है इसका अर्थ यह है कि हेयोपादेय ज्ञान मृषात्मक रूपसे है, कल्पनात्मकरूपसे है। तो उत्तरमें यही कहना पर्याप्त है कि इसकी भी चर्चा उन चार विकल्पोंमेंसे कर लीजिए। मृषात्मक रूपसे है इस मंतव्यका क्या स्व, पर, उभय, अनुभय रूपसे सत्त्व है, इन चार विकल्पोंमें वह निराकृत हो जाता है। स्वरूपसे है, पररूपसे है, उभयरूपसे है या अनुभयरूपसे है। इस तरहके विकल्पोंमें उक्त कथनकी भाँति यह कथन दूषित हो जाता है कि हेय उपादेयका ज्ञान केवल कल्पनासे माना गया है।

विचारानुपपत्तिरूप संवृत्तिलक्षणकी अयुक्तता होनेसे शून्यवादकी असंगतता—यहाँ शून्यवादी कह रहे हैं कि हमारे मंतव्यका आधार यह है कि सब कुछ कल्पनासे माना गया है और कल्पना कहा है विचारकी अनुपपत्तिको। जहाँ कोई विचार ही उत्पन्न नहीं होता वह है सम्वृत्ति। इसके समाधानमें कहते हैं कि शून्यवादियोंका यह सिद्धान्त अयुक्त है क्योंकि विचारका ही अभाव है शून्यवादमें। जब विचारका ही अभाव है तो किसी पुरुषने किसी मंतव्यका विचारसे अनुपपत्ति बताना यह बात कही नहीं जा सकती। कोई बात हो तब उसको कहा जाय कि किसी जगह किसीके उसकी उपपत्ति नहीं है। किन्तु जो है ही नहीं, विचार है ही नहीं तो विचारके अभाव होनेपर किसी पुरुषसे यह कहना कि विचारके द्वारा अनुपपत्ति है यह केवल अविवेकपूर्ण कथन है क्योंकि शून्यवादीके सिद्धान्तमें तो कुछ भी निर्णीत नहीं है। जिसका आश्रय करके किसी अन्य जगह अनिर्णीत अर्थमें विचार लगाया जाय क्योंकि शून्यवादीके तो सर्वत्र ही विवाद है। विचार किसी अनिर्णीत अर्थमें अगर चलता है तो प्रमाण आदिक तत्त्वका कौन तो सहारा लेकर चलेगा? प्रमाण प्रत्यक्ष हो, अनुमान कोई प्रबल ज्ञान हो, जिसकी समीचीनताका पहिलेसे निर्णय कर रखा हो तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसी निर्णीत प्रमाण आदिक तत्वका आश्रय करके ही तो प्रनिर्णीत अर्थमें विचार चला करता है। जहां सभी बातोंमें विवाद है, प्रमाण तत्व भी नहीं, साधक वचन भी नहीं कुछ भी नहीं है, जहां सर्वत्र ही विवाद है वहां तो विचारणा भी नहीं चल सकती। तब देखिये ! कैसी मोहमहा मदभरी चेष्टा है, शून्यवादानुयायियोंकी कि विचारका अभाव मानते हैं। सो जहां विचार तो कुछ चल ही नहीं रहा है और दूसरे शिष्यादिकको समझानेके लिए उस विचारका प्रतिपादन किया जा रहा है शास्त्रका उपदेश करते हुए उपदेष्टाका वर्णन किया जाया करता है अपने गुरुपरम्पराकी वन्दना किया करता है, तो यह क्या ? उन्होंने तो सब कुछ ही निराकृत कर दिया। विचारका अभाव होनेसे किसी भी बातका समर्थन नहीं, तब क्यों न मोहमदभरी यह चेष्टा कही जाय ? स्वयं उपदेश किए गये विचारका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रादिक को जो निराकृत करता है, विचारे ही नहीं, वह कैसे न अविवेकमत्त कहा जाय ?

अभावैकान्तपक्षी शून्यवादियोंके सिद्धान्तमें माया, स्वप्न, भ्रम आदि सकल योजनाओंकी असिद्धि—यहां शङ्काकार कहते हैं कि देखिये ! समस्त भाव अर्थात् पदार्थ किसी मायाकी तरह हैं, स्वप्नकी तरह है, इस प्रकारका क्षणिकवादियों के गुरुवोंका उपदेश बराबर मौजूद है फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि क्षणिकवादी सबका ही निराकरण कर रहे हैं और ये उन्मत्त होंगे, इसके समाधानमें कहते हैं कि अहो देखिये ! इन शून्यवादियोंका यह मंतव्य बुद्धिका विरोध, अपराध इस समस्त लोकका उल्लंघन कर गया। सो कैसे कर गया ? इसमें बड़े आश्चर्यकी बात लग रही है ! और, फिर भी ये शून्यवाद कहकर, सबका निराकरण करके भी अपने गुरुवोंका कीर्तन करते हैं। तो इस सम्बन्धमें एक मोहनीय कर्मके तीव्र विपाकके सिवाय और क्या कारण कहा जा सकता है ? जहां विचार नहीं, प्रमाणादिक तत्त्व नहीं, अंतस्तत्व बहिस्तत्व नहीं वहां उपदेशकी परम्परा बताना और ऐसे उपदेष्टाओंका अभिवन्दन करना यह चेष्टा केवल एक अपने पक्षव्यामोहवश ही हो सकता है। शङ्काकार कहता है कि स्वप्नादिकमें होने वाले भ्रमकी तरह ये आचार्य पुरुष उपदेष्टा आदिक भी सब भ्रान्त हैं, इनका भी विभ्रम ही है, इस कारण दोष नहीं दिया जा सकता। जैसे कल्पनासे नैरात्म्य ज्ञानकी सिद्धि करते हैं यों ही कल्पनासे ये आचार्य आदिक भी माने गये हैं, तब तो कोई दोष न होगा। इसके समाधानमें कहते हैं कि फिर तो जरा यही बता दो कि विभ्रममें भी क्या अविभ्रम है या विभ्रम ? यदि कहो कि भ्रममें भ्रम नहीं है, तो फिर यह कथन तो सही न रहा कि सबका विभ्रम हो गया है। लो भ्रमका तो विभ्रम नहीं हुआ। यदि कहो कि विभ्रममें भी विभ्रम बना हुआ है तो इसका अर्थ क्या हुआ ? विभ्रममें भ्रम है याने भ्रम सत्य नहीं है, भ्रम है यह बात प्रमाणीक है तो अर्थ यह है कि भ्रम नहीं है, कोई तथ्यकी बात है। भ्रममें भी भ्रम मान लेनेपर अर्थ यह होगा कि सब जगह कहीं भी भ्रम नहीं है। भ्रम खुद भ्रमरूप है। जैसे कोई कहे कि उसे तो इस बातमें सन्देहका ज्ञान हो रहा है और यह कह देवे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जानने भी सन्देह है, तब तो यही तथ्य हुआ था कि संदेह रूप नहीं है वह असंदेह है । यदि कहो कि विभ्रममें भी विभ्रम मान लिया जायगा सो यों भ्रम लेकर तो वह ही प्रश्न खड़ा रहेगा और अनवस्था दोष आ जायगा । फिर जितने भी भ्रम जाने जा सकते और भ्रम माने हो जाने पड़ेंगे फिर इस अनुमानका कहीं अन्त ही नहीं होता है । सो उपदेश भी करें, आचार्योंकी प्रशंसा भी गायें और फिर कहें कि सर्व शून्य है, इस बातमें बड़ा आश्चर्य है, शून्यवादमें शून्य ही माना है, न प्रमाण तत्त्व न प्रतिपादक न प्रतिपाद्य अचेतन पदार्थ, फिर शास्त्र उपदेश अनेक क्यों हुए ? किसलिए माध्यमिकोंने सब कुछ उपदेश किया ? जब शून्य ही है तो सब ग्रन्थ रचे जानेकी बड़ा आश्चर्य है । जब सभीको शून्यमयता आ रहा है तो वह भी भ्रममें शामिल है और यह भ्रम भी भ्रम है या नहीं आदिक अनेक विकल्पोंसे शून्यवादकी व्यवस्था नहीं बनती है, लेकिन ये शून्यवादी अब तक भी एक शून्यमें आसक्त हैं दिनकी गवाही नहीं देता फिर भी ये शून्यवाद में जो आसक्त हो रहे हैं इसमें अज्ञान के सिवाय और क्या कारण हो सकता है ? ऐसा शून्यवाद अभाव एकान्त मानते हैं, उनका माने आपका इष्ट मन्तव्य भी तो सिद्ध नहीं हो पाता । शून्यवादियोंने नैरात्म्य माना शून्य माना, लेकिन यह इष्ट मन्तव्य प्रत्यक्षसे बाधित हो रहा है, जैसे भावैकान्तमें प्रत्यक्षसे बाधा आती है उसी प्रकार अभाव एकान्तमें भी प्रत्यक्षसे बाधा आती है । अब यह बात सुनकर कि भावैकान्तमें भी पदार्थ व्यवस्था नहीं बनती तब दोनोंका एकान्त मान लिया जाये, सो इस सिद्धान्त पर आचार्य कहते हैं कि परस्पर निरपेक्ष भावैकान्त और अभावैकान्तका पक्ष भी समीचीन नहीं है इस ही बात को स्वामी समन्तभद्राचार्य १३ वीं कारिकामें पुष्टिमें कहते हैं—

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।

परस्पर निरपेक्ष उभय एकान्तकी असंगतता — भाव और अभाव एकान्तका जब निराकरण किया उनमेंसे किसी भी एक पक्षका निराकरण सुनकर उन पक्षोंमें जो दोष आये हैं उन दोनोंको मिटानेकी इच्छासे कोई दार्शनिक सब विश्वको भावाभावात्मक मानते हैं लेकिन उनका यह भावाभावात्मक मानना परस्पर निरपेक्ष है अतएव ऐसे उभय एकान्तका भी निराकरण हो जाता है क्योंकि भाव और अभाव ये दो स्वरूप ऐसे हैं कि परस्पर एक दूसरेका परिहार करके ही ठहर पाते हैं । भाव और अभाव दोनों एक जगह नहीं रह सकते । विवक्षावशसे भाव और अभावकी बात बताना अन्य बात है लेकिन इस उभय एकान्तमें तो परस्पर निरपेक्ष भाव और अभाव एकान्तकी बात कही गई है । सर्वात्मकरूपसे याने स्वरूपसे भी और पररूपसे भी किसी अर्थको सत् ही माना जाय और सर्वात्मकरूपसे ही अर्थात् स्वरूपसे भी पररूपसे भी और पररूपसे भी किसी पदार्थको असत् माना जाय तो ऐसा कहने वाले दार्शनिक स्वस्थ नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने आपमें जो कुछ माना है उस वह इतर-

http://sahjanandvarnishastra.org/

पक्षके निरास करनेसे सिद्ध नहीं हो पाता शून्यज्ञानकी तरह, जैसे कि सर्वथा शून्यतत्त्व को मानने वाले दार्शनिक चूँकि स्वसंवेदनको नहीं मानते अन्य अनुमान व उपदेशादिकको नहीं मानते क्योंकि उन्हें तो शून्यताका हठ है तो जब स्वसंवेदनको न माना गया, परपक्ष भी न माना तो उससे अपने माने हुए शून्य एकान्तका निराकरण स्वयमेव हो जाता है। सो जो अपने इष्ट तत्त्व है उसका तो हो जाता है, निराकरण और जिस बातको ये शून्य ही नहीं बनाना चाहते प्रमाणादिकका सद्भाव सो प्रमाणादिक उनके यहाँ भी सिद्ध हो जाते हैं, क्योंकि प्रमाण प्रमेय नहीं मानते तो शून्यवादको भी सिद्धि कैसे हो? शून्य है तत्त्व, इसकी सिद्धिमें कुछ प्रमाण देना होगा। वह प्रमाण है ज्ञानात्मक। अब ज्ञेयकी सत्ता न बनी तो बिना ज्ञेयके ज्ञान नहीं रहता। यों शून्यताका एकान्त ठहर ही कैसे सकता है।

उभयैकान्तकी हठमें भी इष्टविघात और अनिष्ट संपात—जैसे सर्वथा शून्य मानने वाले पुरुष अपने इष्ट-तत्त्वका घात करते हैं और अनिष्ट तत्त्व माननेके लिये बाधित हो जाते हैं उस ही प्रकार भाव और अभावका तादात्म्य एकान्त मानने वाला कोई भी दार्शनिक अपने माने हुए उभय एकान्तका निराकरण कर देता है और जो नहीं माना गया है तत्त्व—जैसे भावैकान्त और अभावैकान्त सो इस अनिष्ट तत्त्व को भी वे अपने वचनोंसे सिद्धि कर लेते हैं क्योंकि जहाँ परस्पर निरपेक्ष भाव और अभावको उभय माना गया है तो वह तो सर्वात्मकरूपसे माना गया है। वहाँ अपेक्षा और विवक्षाका अवकाश है नहीं। तो अभावमें हो गया भावका प्रवेश और भावमें हो गया अभावका प्रवेश। तो जब भावमें अभावका प्रवेश हो गया तब तो रहा भाव एकान्त। अभाव तो वहाँ है ही नहीं। और जब अभावमें भावका प्रवेश हो गया तब
१ रह गया अभाव एकान्त। वहाँ भावकी बात कुछ न रही। तो जो उभय एकान्त मानते हैं उनके यहाँ यह विडम्बना है क्योंकि अभावमें हुआ भावका प्रवेश, भावमें हुआ अभावका प्रवेश। अन्यथा अर्थात् भाव और अभावके अभिन्न होनेपर भी एकका दूसरेमें प्रवेश अंगीकार नहीं करते, तब तो भाव और अभावमें भेद सिद्ध हो जाता है, इस कारण अब दोनोंका अभेद न रहा, और इस तरह जो स्याद्वादका विद्वेष करने वाले हैं जो अपेक्षावाद न कहकर केवल एक माना ही उभय एकान्त रखते हैं उनको कोई श्रेय न होगा। सत् और असत् ये सदा परस्पर एक दूसरेका परिहार करते हुए ही स्थित रह सकते हैं। कथंचित् भावाभावात्मक पदार्थ देखा जा रहा है उससे ही सर्वथा उभय एकान्तमें बाधा आती है। जैसे कि सर्वथा भाव एकान्तमें बाधा आती है। इसी प्रकार परस्पर निरपेक्ष एकान्त भी बाधित है। वस्तु तो भाव एकान्त और अभाव एकान्तसे रहित कथंचित् भावाभावात्मकरूप सिद्ध होती है। इस प्रकार जो भट्ट सिद्धान्तानुयायियोंने एक उभय एकान्तका आग्रह किया उसका निराकरण हुआ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रधान पुरुष सिद्धान्तानुयायियोंके भी उभय एकान्तकी असिद्धि—उभय एकान्तके निराकरणके प्रकारवत् सांख्योंका भी उभय एकान्त प्रमाणसिद्ध नहीं होता है। किसीको नित्य ही मानना व किसीको अनित्य ही मानना सो उभय एकान्त है। सो वे उभय एकान्तको कहते हुए तीन लोकको याने समस्त पदार्थोंको महत् आदिककी अभिव्यक्तिसे तिरोहित कर देते हैं, निराकृत कर देते हैं क्योंकि अब ऐसा बोलनेमें नित्यत्वका प्रतिषेध हो जाता है। जहां अभिव्यक्तिवाद बताया गया है और प्रलयवाद भी बताया गया है तो अभिव्यक्ति और प्रलयके माननेमें अपरिणामी नित्यत्व नहीं ठहरता। और, इसी प्रकार यह भी स्पष्ट होता है कि जो नष्ट हो रहा है वह सर्वथा नष्ट नहीं हो रहा। कथंचित् नित्य भी है, क्योंकि विनाशका प्रतिषेध है। जो पदार्थ मूलत: है उसका कभी विनाश नहीं होता। सांख्यसिद्धान्तके अनुयायी जन भी कहते हैं कि भूतोंका विलय तन्मात्राओंमें होता, तन्मात्राओंका विलय अहंकारमें होता, अहंकारका विलय महानमें और महानका विलय प्रधानमें होता। तो यों प्रधान तो बराबर रहा, उसका तो लोप नहीं किया जा सकता। तो कोई भी पदार्थ जड़से नष्ट नहीं हो सकता। चाहे अभिव्यक्तिवाद हो, चाहे उद्भूतिवाद हो, सभी जगह मूलभूत पदार्थकी रक्षा माननी ही होगी। तब यह मानना पड़ेगा कि तिरोभूत और प्रकट होजाता है इस तरह माननेसे आखिर किसी भी तरह मुड़कर बोलते हुए भी स्याद्वादका सहारा लेना ही हुआ। जैसे कोई सर्प अंधा होता है तो यहां वहां घूमकर भ्रमण करके आखिर बिलमें प्रवेश करना ही है, उसी प्रकार किसी भी तरह एकान्तमें बुद्धि लगायी दार्शनिकोंने लेकिन तत्त्वकी सिद्धि स्याद्वादका आलम्बन लिए बिना हो नहीं सकता, सो आखिर किसी न किसी रूपमें स्याद्वादका आलम्बन लेना ही पड़ा। तीन लोक याने समस्त पदार्थ महत् आदिक व्यक्त रूपसे तो अपेत है अर्थात् तिरोभूत होते हैं और अव्यक्त स्वरूपसे उनकी सत्ता बराबर कायम रहती है और ऐसा खुद माना भी है कि उस प्रधानमें दो रूप हैं। व्यक्त और अव्यक्तरूप। तो प्रधानके जो परिणाम होते हैं वे तो होते हैं व्यक्त और स्वयं मूलमें जो अपना स्वभाव है वह है अव्यक्त। स्पष्टरूपसे कहा है सांख्य सिद्धान्तमें कि "कारणवाला, अनित्य, अव्यापक, क्रियावान" अनेक दूसरोंके आश्रय रहने वाले चिन्हरूप अवयव सहित परतन्त्र तो व्यक्त होता है याने महत् अहंकार आदिक तत्त्व इन विशेषणोंसे युक्त होते हैं और प्रधान इनसे विपरीत है और वह अवक्तव्य होता है।

प्रधान तत्त्वमें भी कथंचिद् व्यक्ताव्यक्तात्मकता अनिवार्य होनेसे स्याद्वादके अनुसरणकी अनिवार्यता—शंकाकार कहते हैं कि परमार्थसे व्यक्त और अव्यक्तमें अपना अपना एकत्व है अत: सांख्योंके सिद्धान्तमें स्याद्वादका आलंबन नहीं आता। ऐसा शंकाकार कह रहा है याने परमार्थ यह बताया कि कोई तत्त्व अव्यक्त है। एक ही का व्यक्त और अव्यक्तरूप विवक्षासे नहीं कह रहे हैं फिर स्याद्वादियोंका आलम्बन सांख्य सिद्धान्तमें कैसे आ जायगा ? इसके समाधानमें, कहते हैं कि यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथन युक्तिसंगत नहीं है। यदि स्याद्वादका आलम्बन न लिया जाता तो विरोध उस ही प्रकारसे अवस्थित रहता है। हाँ प्रधानाद्वैत माननेमें उभय एकान्त माना गया नहीं कहलाता है। तो इस प्रकार स्वयं न मानते हुए भी उन्हें भी कथंचित् उभयात्मक माननी ही पड़ेगी। प्रधान व्यक्त भी है, अव्यक्त भी है। अब परितत्त्ववादकी बात मानली हो पड़ेगी। प्रधान व्यक्त भी है, अव्यक्त भी है। अब परिणामकी अपेक्षा व्यक्त है और स्वयंके स्वरूपकी अपेक्षा अव्यक्त है। तो यही नो स्याद्वादियोंका आलम्बन हुआ। पदार्थोंमें भी जो स्याद्वादका आलम्बन किया जाता है वह यद्यपि उत्पादव्ययकी दृष्टिसे है, लेकिन पद्धति यह ही है। प्रत्येक पदार्थ पर्यायकी दृष्टि से व्यक्त है, अनित्य है, और स्वरूपकी दृष्टिसे वह व्यक्त नहीं है तो इस प्रकारका अनुसरण तो स्याद्वादमें ही बनता है। स्याद्वादकी पद्धति अपनाये बिना फिर तो इच्छानुसार उनकी बात रह जायगी। कभी महत् आदिकको व्यक्त कह दिया जायगा। कभी प्रकृतिके स्वरूपको अव्यक्त कहा तो कभी व्यक्त भी कह दिया जायगा, इस कारण यह उभय एकान्त भी सिद्ध नहीं होता। भावैकान्तमें तो अभावका अपह्नव कर दिया जानेकी बात नहीं बनती। स्वपक्ष सिद्ध और परमत दूषण भी अभाव का अपह्नव करने वालेके यहां नहीं बनता। इसी प्रकार अभाव एकान्तमें भी भाव न माना जानेसे इस पक्षकी भी सिद्धि नहीं बनती। और, कोई दार्शनिक भावाभावात्मक पदार्थ भी मान लें और मानें सर्वरूपसे कि स्वरूप और पररूप दोनोंसे ही तो सत् है और स्वरूप पररूप दोनोंसे ही असत् है। तो एक ही दृष्टिसे परस्पर विरुद्ध दो धर्म एकमें कायम नहीं रह सकते क्योंकि भाव अभावके परिहार पूर्वक रहेगा और अभाव भावके परिहार रहेगा। इस तरह उभय एकान्त भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता। उसमें भी अनेक विरोध हैं। यों तीन पक्ष न रहे, न भाव एकान्त रहा और न उभय एकान्त रहा और न अभाव एकान्त रहा। और किसी तरह अनुभय एकान्त भी नहीं रहता, इस बातका अब वर्णन करेंगे।

अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥१३॥

अवाच्यताके एकान्तमें अवाच्यत्व कहनेका भी अनवसर—अवाच्यता का एकान्त करनेपर अवाच्य है इस प्रकारका वचन भी लग नहीं सकता। पहिले भावैकान्त, अभावैकान्त और उभयैकान्तका निराकरण करके यहाँ अनुभय एकान्तका निराकरण किया जा रहा है। अनुभयका अर्थ है दोनों नहीं। और जब दोनों नहीं हैं तो उसका तात्पर्य यह निकाला कि अवक्तव्य है। तो ऐसा अवक्तव्यका एकान्त करने पर फिर तो "यह अवक्तव्य है" इस प्रकारसे भी वक्तव्य न होगा। क्षणिकवादी दार्शनिकोंमेंसे कोई दार्शनिक उक्त तीन पक्षोंमें दिये गए दोषको हटानेकी इच्छासे कि जब भावैकान्तमें दोष है अभावैकान्तमें दोष है और उभयैकान्तमें भी दोष है तब तत्त्व यह मानना चाहिए कि तत्त्व सर्वथा अवक्तव्य है। यों जो क्षणिकवादी अवक्तव्य तत्त्वका आलम्बन करते हैं वे भी अवक्तव्य हैं, ये इतना भी कैसे बोल सकेंगे जिससे कि उनके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अवक्तव्यका एकान्त नहीं बन जाय। और यह अवक्तव्य है यह कथन भी बन जाय। तो अवक्तव्यका एकान्त करनेपर अर्थात् तत्त्व किन्हीं भी शब्दोंमें कहा ही नहीं जा सकता, ऐसा पक्ष मान लेनेपर फिर यह कहा ही नहीं जा सकता कि यह अवक्तव्य है। सो अनुभय एकान्तमें "तत्त्व अवाच्य है" यह कथन न घटित होगा। और जब तत्त्व अवाच्यपनेके रूपसे भी वाच्य न हो सकेगा तब फिर दूसरेको अपना इष्ट तत्त्व समझाया ही कैसे जा सकेगा क्योंकि दूसरेको समझा देना अपने ज्ञानसे नहीं होता। उनको समझानेके लिए तो शब्द, पद, वाक्यका ही सहारा लेना होगा। कोई यह सोचे कि हम तो जाने गए उस अवक्तव्य तत्त्वको तो हमारे ज्ञानके द्वारा दूसरे शिष्य भी समझ लेंगे तो शिष्योंको समझाना तुम्हारे ज्ञानके द्वारा न होगा, किन्तु उस ज्ञानमें आयी हुई बात का प्रतिपादन कर सकने वाले शब्द वाक्य बोले जायेंगे तब दूसरोंका समझाना बनेगा। तो अवक्तव्यके एकान्तमें जब अवक्तव्य है तत्त्व, इसने भी शब्द न बोल सकेंगे तो दूसरा कोई समझ न सकेगा।

बिना परीक्षाके तत्त्वको मान लेनेपर सबके मन्तव्यको बिना परीक्षाके ही मान लेनेका प्रसंग—जब कोई दूसरा अनुभय तत्त्वको समझ ही न सका तो फिर क्षणिकवादियोंकी परीक्षकता कैसे सिद्ध होगी? याने ये दार्शनिक परीक्षक हैं, भली प्रकार सोच समझ करके, निर्णय करके इसने तत्त्वकी बात रखी है यह बात कैसे समझी जायगी? और जब कोई यह न जान पायगा कि ये क्षणिकवादी परीक्षक हैं तो उनकी अपरीक्षकता सिद्ध होनेपर कि यह कोई समझकर परखकर निर्णयकर कहने वाले नहीं हैं, किन्तु ये सभी स्वयं बिना निर्णयके हैं। ऐसी अपरीक्षकता उनकी सिद्ध होनेपर फिर अन्य अल्पज्ञजनोंसे उन क्षणिकवादी वक्ताओंमें विशेषता क्या रहेगी? बिना परीक्षा किए हुए तत्त्वको ही मान लिया जाय तब तो सब निरंकुश हो जायेंगे। जो भी दार्शनिक जो कुछ भी कहेंगे वही सत्य है यही निर्णय देना होगा क्योंकि तत्त्व की परीक्षा किए बिना, युक्ति आदिकसे परख किए बिना जब तत्त्वको मान लिया गया जैसे कि अवक्तव्य तत्त्व है इसकी परीक्षाका कोई उपाय ही नहीं बनता, इस तत्त्वकी परीक्षा ही नहीं बनती और फिर भी इसको मान लिया गया। तब तो सभी दार्शनिकों का मन्तव्य मान लेना होगा, किसीका भी निराकरण न किया जा सकेगा।

अवाच्यतैकान्तमें प्रतिबोधका अवसर न होनेके सम्बन्धमें एक शंका समाधान—यहाँ शंकाकार कहते हैं कि अवाच्यताका एकान्त करनेपर दूसरोंको समझाया न जा सकेगा और बिना-समझे तत्त्वको मानेनेपर सभी मतोंके मंतव्यकी स्वच्छन्दता हो जायगी यह दोष नहीं आता। क्योंकि जैसे इतने शब्द बोले जा रहे हैं कि स्वलक्षण अनिर्देश्य होता है। अर्थात् पदार्थका निजका जो सही लक्षण है वह निर्देशके योग्य नहीं है, कहा नहीं जा सकता अथवा बोला जाय कि प्रत्यक्ष कल्पना से रहित है। तो जैसे ये शब्द बोले जाते हैं तो उनसे अवाच्य ही सिद्ध होता है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि परमार्थका निजी लक्षण अनिर्देश्य है, इस कथनका यही तो अर्थ हुआ कि अवक्तव्य है। प्रत्यक्ष प्रमाण कल्पनासे रहित है। वहाँ कोई कल्पना विकल्प उठते ही नहीं है, तो इसका भी तात्पर्य यही तो हुआ कि इसमें विकल्प हो नहीं सो अवक्तव्य है। तो जैसे यह शब्द बोला जाता है इसी तरह यह कह दिया जाय कि समस्त तत्त्व अवक्तव्य है, तो इस वचनमें भी विरोध क्या आयगा क्योंकि अवाच्य है यह तत्त्व, ऐसे वचन बोले बिना दूसरेको समझाया ही नहीं जा सकता। दूसरोंको इस अवाच्य तत्त्व का प्रतिबोध करानेके लिये ये वचन पर्याप्त हैं कि तत्त्व अवाच्य है। अतः यह दोष नहीं दिया जा सकता कि तत्त्वको अवाच्य माननेपर दूसरे समझ न सकेंगे और बिना समझे तत्त्वकी स्वीकारिता करनेपर सभी शंकितोंके मंतव्यका स्वीकार कर लेना होगा। जब यह दोष नहीं आता तो तत्त्व अवाच्य है यह बात सिद्ध हो जाती है। उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी अयुक्त है। जो अभी उदाहरण दिया है कि प्रत्यक्ष कल्पनापोढ है, स्वलक्षण अनिर्देश्य है। यह सब असिद्धका उदाहरण है। प्रत्यक्ष कल्पनासे रहित है ऐसी बात सिद्ध थोड़े ही है। तो असिद्धके उदाहरणसे कोई व्यवस्था नहीं मानी जा सकती स्वलक्षण अनिर्देश्य है, यह भी उदाहरण दिया है तो यह अविद्यमानका उदाहरण दिया। जब पदार्थ है तब ही उदाहरण दिया नहीं जा सकता। जब कुछ कहा जायगा पदार्थके सम्बन्धमें तब वह पदार्थ रहा ही नहीं, क्योंकि पदार्थ सर्वथा क्षणिक माने हैं क्षणिक सिद्धान्तमें। उदाहरण भी यह अविद्यमानका रहा। तो असिद्ध और अविद्यमानका उदाहरण युक्त नहीं करता। प्रसिद्ध पदार्थोंका ही उदाहरण दिया जाना सम्यक् होता है। जितने उदाहरण दिये जायें वे सब प्रसिद्ध ही होना चाहिए, क्योंकि सिद्ध पदार्थको व्यवस्थासे ही दृष्टान्त बनता है। अब यहाँ देखिये तो न तो स्वलक्षण प्रसिद्ध है और न कल्पना रहित प्रत्यक्ष प्रसिद्ध है? स्वलक्षण निर्देश्य कहा गया है। तो इस लक्षणको यदि सर्वथा ही अनिर्देश्य माना जाय कि वह किन्हीं शब्दोंसे निर्दिष्ट किया ही नहीं जा सकता। तो स्वलक्षण अनिर्देश्य है इस वचनके द्वारा निर्देश किया जाना अविरुद्ध न बन सकेगा। अर्थात् 'स्वलक्षणमनिर्देश्य' इस वचनसे भी स्वलक्षणका निर्देश नहीं किया जा सकता। तो ये दोनों ही उदाहरण असिद्धके उदाहरण हैं और फिर स्वयं यह कथन स्ववचन बाधित है। बात तो रख रहे हो यह कि तत्त्व अवक्तव्य है और उनको किन्हीं न किन्हीं शब्दोंमें वक्तव्य बना ही रहे हो अतः अवक्तव्यताके एकान्तमें तत्त्व अवक्तव्य है, इस वचनसे भी कुछ कहा न जा सकेगा।

परमार्थज्ञानसे ज्ञात स्वलक्षणकी सविकल्पज्ञानसे ही निर्देश्यता होनेसे परमार्थतः स्वलक्षणकी अनिर्देश्यता होनेसे अवाच्यतैकान्तकी निर्दोषताका शंकाकार द्वारा कथन—अब शंकाकार कहते हैं कि 'स्वलक्षण है" इस कथनसे भी स्वलक्षण निर्देश्य नहीं हो रहा, किन्तु स्वलक्षण अनिर्देश्य है इस वचनके द्वारा स्वलक्षण सामान्य ही निर्देश्य हो रहा है। स्वलक्षण सामान्यका अर्थ है अन्यापोह।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अन्यापोहका तो निर्देश कर दिया जा सकता लेकिन अन्यापोह तो वस्तुभूत नहीं है। वह तो सविकल्प ज्ञान है, उसमें शुद्ध सत्वकी बात नहीं आती है। शुद्ध सत्व ही स्वलक्षण कहलाता है। तो वचनोंके द्वारा स्वलक्षणसा निर्देश नहीं किया गया किन्तु स्वलक्षण सामान्य अर्थात् अन्यापोहका ही निर्देश किया गया है, क्योंकि स्वलक्षणमें तो निर्देश सम्भव ही नहीं होता। निर्देशका अर्थ है शब्द। निर्देश शब्दकी व्युत्पत्ति है — निर्दिश्यते अनेन इति निर्देश: अर्थात् जिसके द्वारा निर्देश किया जाय, बताया जाय उसे निर्देश कहते हैं। बताया जाता है शब्दोंके द्वारा। अतः निर्देशका अर्थ हुआ शब्द। तो स्वलक्षणमें शब्द सम्भव नहीं है। शब्दकी प्रवृत्ति अन्यापोहमें होती है अर्थात् शब्दका अर्थ अन्यापोह है, शुद्ध सत्व नहीं है। शुद्ध सत्व तो अवक्तव्य है। अर्थमें शब्द नहीं हुआ करते कि अर्थ आधार हो और उसमें शब्द आधेय हो जिससे कि शब्दोंको अर्थापत्तिसे मान लिया जाय और यह कह दिया जाय कि अर्थके प्रतिभास होनेपर शब्द भी प्रतिभासित हो जाता है। तो अर्थमें शब्द नहीं रहता। अब स्वलक्षण हैं याने अन्यापोह रूप पदार्थ है कल्पनासे आरोपित, उसको ठीक उन्हीं शब्दोंमें समझानेका उपाय ही नहीं है, क्योंकि तत्व तो अवक्तव्य है। अब कल्पनासे जो कुछ कहा जाता है अन्यापोह अथवा निर्देश्यपना। निर्देश्य शब्दसे इसका तो निर्देश हो जाता है क्योंकि उसमें कोई विरोध नहीं है। तो यों "स्वलक्षणमनिर्देश्यं" इस वचनके द्वारा स्वलक्षण सामान्य अर्थात् अन्यापोह ही कहा गया तत्व नहीं। तत्व तो अवक्तव्य ही है।

अवाच्यतैकान्तवादियोंकी आरेकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तब तो फिर स्वलक्षण अज्ञेय भी हो जायगा। जैसे अभी कह रहे हो कि पदार्थमें शब्द नहीं है जिससे कि शब्दके प्रतिभास होनेपर पदार्थ प्रतिभासित हो जायें, अर्थके प्रतिभासित होनेपर शब्द प्रतिभासित हो जायें। यों शब्द अर्थमें नहीं रहता। सो इस तरह स्वलक्षण अनिर्देश्य कह रहे तो यों स्वलक्षण अज्ञेय भी हो जायगा। जैसे कि स्वलक्षणमें अर्थात् इन्द्रियके विषयमें, प्रत्यक्षके विषयमें शब्द नहीं है यह कह रहे हो तो ऐसे हो यह भी कह दिया जायेगा कि उस प्रत्यक्ष ज्ञानमें विषय भी नहीं है। जैसे कहते हो कि स्वलक्षणमें शब्द नहीं है, जैसे कहते हो कि स्वलक्षण शब्दके द्वारा नहीं बताया जा सकता। तो यह भी कहा जा सकता कि प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय नहीं है। जिससे कि प्रत्यक्ष ज्ञानके प्रतिभासमान होनेपर विषय भी प्रतिभासित हो जाय। जब विषय पदार्थ स्वलक्षण प्रत्यक्षज्ञानमें नहीं है तो वह प्रत्यक्षज्ञानमें आ ही नहीं सकता। यह बात स्पष्टतया कही जा सकती है कि जो वस्तु जहाँपर आधेय रूपसे नहीं है वह तदात्मक नहीं होता और फिर उसके प्रतिभासमान होनेपर भी वह प्रतिभासित नहीं होता। जैसे कि अभी कहा गया शंकाकार द्वारा कि प्रत्यक्षके विषयभूत स्वलक्षणमें शब्द नहीं है। अतः स्वलक्षण शब्दात्मक नहीं और शब्दों द्वारा स्वलक्षणका प्रतिभास नहीं हो सकता। ऐसे ही प्रत्यक्ष ज्ञानमें स्वलक्षण विषय नहीं जिससे कि ज्ञान स्वलक्षणात्मक बने और तभी प्रत्यक्षज्ञान होनेपर भी स्वलक्षणका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिभास न होगा। क्योंकि प्रत्यक्षज्ञान में उसके विषयभूत स्वलक्षण नहीं है अतः ज्ञान जुदा स्वलक्षण जुदा सो ज्ञानका तत्त्व भी ज्ञेय न हो सकेगा।

विषयसामर्थ्यसे ज्ञानोत्पाद होना मानकर ज्ञानमें विषयकी ग्राह्यता माननेपर इन्द्रिय शक्तिसे ज्ञानोत्पाद होनेके कारण इन्द्रियशक्तिकी भी ग्राह्यता का प्रसंग — यहां शंकाकार कहते हैं कि अर्थमें शब्द नहीं है इसको असिद्धिके विरोध मे जो यह आक्षेप किया जा रहा है कि यों तो यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष ज्ञानमें ज्ञानका विषय नहीं है, सो ऐसा आक्षेप करना युक्त नहीं है कारण कि विषयों की सामर्थ्यसे प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। विषय अकारण नहीं हुआ करता। तो यों प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति विषयकी सामर्थ्यसे होनेके कारण प्रत्यक्षमें प्रतिभासमान होनेपर अक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर स्वलक्षण अर्थ प्रतिभासित होता ही है अर्थात् पदार्थोंका स्वरूप जो स्वलक्षणमात्र है, अनिर्देश्य है वह प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रतिभासित होता ही है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना समीचीन नहीं है। यदि अक्षज्ञानकी उत्पत्तिके कारणोंसे उत्पन्न होना बताकर उस कारणको प्रतिभासमें लेना बनाते हो तो प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति इन्द्रिय शक्तिसे भी होती है। तो यों इन्द्रिय सामर्थ्यसे प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे इन्द्रिय सामर्थ्यका भी प्रतिभास हो जाना चाहिए क्योंकि केवल विषयके बलसे दर्शनके प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति होती हो सो नहीं, किन्तु चक्षु आदिककी शक्तिसे भी उस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। सो जैसे विषयसे भी ज्ञान उत्पन्न होनेके कारण विषयका प्रतिभास ज्ञानमें मानते हैं इसी तरह चक्षु आदिक शक्तियोंसे प्रतिभास होनेके कारण उन इन्द्रियशक्तियोंका भी प्रतिभास मानना पड़ेगा।

कारणत्वकी अविशेषता होनेसे दर्शनमें विषयकारण ही अनुकरणका अनियम — यहां शंकाकार कहते हैं कि दर्शन याने इन्द्रियज ज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान विषयों के आकारका अनुकरण कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान क्या कि उसमें ज्ञेयाकार आये। वह ज्ञेयाकार क्या? विषय। तो विषयोंके आकारका अनुकरण करता है दर्शन इस कारण दर्शनमें विषय प्रतिभासित होता है, पर इन्द्रियां प्रतिभासित नहीं होतीं, क्योंकि दर्शन इन्द्रियके आकारका अनुकरण नहीं करता। ज्ञान हुआ करता। ज्ञान हुआ तो उस ज्ञानका कुछ आकार ग्रहणमें आया, जैसे कहेंगे ग्राह्याकारका, विषयके आकारका अनुकरणता दर्शन करता है, पर इन्द्रियके आकारका अनुकरण नहीं करता याने ज्ञानमें इन्द्रिय आदिकका आकार नहीं झलकता इस कारण दर्शनके प्रतिभासमान होनेपर विषयका प्रतिभास मानना युक्त है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि तब तो पदार्थ की तरह इन्द्रियका भी अनुकरण करनेकी योग्यता है ज्ञानमें फिर पदार्थके आकारका ही अनुकरण करे और इन्द्रियके आकारका अनुकरण न करे ऐसा पक्षपात क्यों? क्योंकि उस दर्शनकी उत्पत्तिमें जैसे पदार्थ कारण है उसी प्रकार इन्द्रिय शक्ति भी कारण है तो पदार्थकी तरह इन्द्रियका भी अनुकरण दर्शनको करना चाहिए। प्रश्न तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वहीका वही रहता है। केवल कह देने मात्रसे प्रश्नका उत्तर नहीं हो सकता है।

अनेक कारणोंमेंसे किसी एकके आकारका अनुकरण कह देनेपर विषय के आकारके भी अनुकरणका अभाव और स्वोपादानमात्रके अनुकरणका प्रसंग

यहाँ शंकाकार कहते हैं कि यद्यपि इन्द्रियज्ञानकी उत्पत्ति होनेमें, दर्शनकी उत्पत्तिमें अनेक कारण मौजूद हैं लेकिन अनेक कारणोंके मौजूद होनेपर भी दर्शनमें केवल विषय के आकारका अनुकरण करनेका स्वभाव है। जैसे कि पुत्रोत्पत्तिके कारण अनेक हैं लेकिन पुत्र पिताके आकारका अनुकरण करता है। तो ऐसे ही दर्शनकी उत्पत्तिके अनेक कारण हैं, इन्द्रिय शक्ति भी कारण है, आलोक भी कारण है विषय (पदार्थ) भी कारण है लेकिन दर्शन एक विषयके आकारका ही अनुकरण करता है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कह देना केवल बात ही बात है। अनेक कारणोंके होनेपर भी दर्शन केवल विषयका ही अनुकरण करता है यह भी क्यों रहे? समस्त कारणों का भी दर्शन अनुकरण नहीं करता यह मानों और फिर मानिये यह कि दर्शन अपने उपादान मात्रका अनुकरण करता है। देखिये ! विषय अबाह्य है और ज्ञान आधेय है इस तरहके आलम्बन कारणका ज्ञान होनेमें और इन्द्रिय है उपादान उसका है समन न्तरज्ञान सो उपादान कारणका ज्ञान होनेसे प्रत्यासत्ति दोनोंके साथ प्रत्यक्षज्ञानकी है याने प्रत्यक्षज्ञानका एक तो है आलम्बनभूत कारण और एक है समनन्तर कारण। इस प्रकार यह समझिये कि जो भिन्न वस्तु है विजातीय है वह तो है आलम्बनरूप, निमित्तरूप कारण और जो सजातीय है स्वयकी सतति है उपादान है वह है समनन्तर कारण। अर्थात् ज्ञानरूप कार्य होनेमें पहिलेकी ज्ञानधारा है उपादान कारण। तो यों विषयोंके आलम्बनके कारण और समनन्तर प्रत्ययके कारण विषय और इन्द्रिय इन दोनोंमें कारणत्वकी प्रत्यासत्ति विशेष पाया जाता है, इस कारण दर्शन याने इन्द्रियज ज्ञान दोनों ही आकारोंका अनुकरण करलेगे ऐसा बात हम मान लेंगे। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि देखिये ! यो तो फिर रूपादिककी तरह निर्विकल्प ज्ञानकी भी विषयता हो जानेकी आपत्ति आयगी। याने जिस प्रत्यक्षज्ञानमें रूपादिक पदार्थोंका ज्ञान माना है कि यह विषय है रूपक्षण रसक्षण आदिक, तो इसी तरह निर्विकल्प ज्ञान भी विषय बन जायगा और उसका भी ज्ञान आना पड़ेगा, क्योंकि इन दोनोंमें अब ज्ञान विशेषता न रही। जब दोनों आकारोंका अनुकरण कर लिया ज्ञानने विषयोंके आकारका भी अनुकरण किया और अपने उपादानका निर्विकल्प ज्ञान का भी आकार ग्रहण किया तो जैसे रूपादिक पदार्थ विषय कहलाते हैं ज्ञान कहलाते । विषयी, जानने वाले तो अब ज्ञान भी विषय कहलाने लगेगा क्योंकि आकारका अनुकरण तो दोनोंका मान लिया गया अन्यथा उपादानकी तरह वर्णादिक भी विषय न रहेंगे। जब ज्ञानमें विषयका और कारणका, इन्द्रियका दोनोंका आकार आया तो दोनों के आकारका अनुकरण होनेपर होनेपर भी इसमें यह बात न मानी जा सकेगी कि विषय एक रहेगा। या तो विषय रहेंगे या दोनों ही न रहेंगे। तब रूपादिककी तरह

http://sahjanandvarnishastra.org/

निर्विकल्प ज्ञान भी विषयमें आये या निर्विकल्पज्ञान और इन्द्रियकी तरह रूपादिक भी ज्ञानमें न आये।

कारणत्वकी प्रत्यासत्तिकी अविशेषता होनेसे क्षणिकवादमें ज्ञानमें विषयाकारताके अनुकरणके नियमकी असिद्धि—यहाँ शंकाकार कहते हैं कि देखिये ! यद्यपि दर्शन उपादानसे जन्म पाता है तदुत्पत्ति और तद्रूपकी पद्धतिसे कारणत्वकी अविशेषता है तो भी विषयका ही निश्चय रखता है दर्शन। अतः दर्शन बाह्य अर्थका ही विषय करने वाला है, उपादानका इन्द्रिय आदिक शक्तियोंका विषय करने वाला नहीं है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह भी कथन सारहीन है क्योंकि ऐसे मंतव्यमें यही तो प्रश्न हो रहा है कि जैसे वर्णादिकका अध्यवसाय होता है दर्शन, इन्द्रियज्ञान जैसे वर्णादिकको जानता है उसी प्रकार यह दर्शन उपादानको भी जानने लगे। पूर्वज्ञानमें भी अध्यवसाय होने लगे, ऐसा होता क्यों नहीं, अन्यथा दोनों ही जगह निश्चय न हो। जब ज्ञान अपने उपादानसे भी होता है और विषयोंसे भी उत्पन्न होता है तब विषयोंको ही तो जाने और अपने पूर्वज्ञानको न जाने, ऐसा नियम तो न बन सकेगा। न जाने तो दोनोंको न जाने, जाने तो दोनोंको ही जाने। और फिर देखिये कि रूपादिकका अध्यवसाय सम्भव नहीं होता। विकल्प रूपसे उनका निश्चय करना नहीं बनता, क्योंकि रूपक्षणादिकोंको तो दर्शनका विषय माना गया है निर्विकल्प ज्ञानका विषय होनेसे रूपादिकका अब विकल्परूप निश्चय नहीं सम्भव है। दर्शनको तो अनध्यवसाय रूप स्वयं माना है। यदि दर्शनको अध्यवसायरूप मान लेते है कि यह दर्शन निर्विकल्प ज्ञान भी विकल्परूप निर्णय किया करता है तब वह स्वलक्षणका विषय करने वाला न रहेगा। स्वलक्षण कहलाता है पदार्थका अवक्तव्य, लक्षण तो फिर उसको विषय करने वाला दर्शन न कहलायेगा, क्योंकि यहाँ यह मान लिया गया है कि दर्शन रूपादिकका अध्यवसाय करते हैं। यह रूप है, अमुक रूप है, इस प्रकारका निर्णय करने वाला बता रहे हो तो फिर विकल्पोंमें ही फँस जायगा दर्शन। वह अवक्तव्य तत्त्व तो विषय करने वाला न रहेगा।

निर्विकल्प ज्ञानको परम्परया निर्णायक मानकर स्वेष्ट सिद्धिका विफल प्रयास—यहाँ क्षणिकवादी प्रश्न कर रहे अथवा अपने आक्षेपका उत्तर दे रहे हैं कि यह दोष नहीं आता है कि दर्शन स्वलक्षणको विषय न करे, क्योंकि निर्विकल्प ज्ञानको सविकल्प ज्ञानका कारण माना गया है सो साक्षात् तो निर्विकल्प ज्ञान विकल्पात्मक निर्णय नहीं किया करता, किन्तु विकल्पात्मक निर्णय करने वाले सविकल्प ज्ञानका कारण है प्रत्यक्ष अतः परम्परया निर्णय हो जाता है सो कुछ भी दोष न दिया जा सकेगा और मानना होगा कि दर्शन साक्षात् तो स्वलक्षणको विषय करने वाला है और परम्परया यह विकल्पात्मक निर्णय करने वाला है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि क्षणिकवादियोंका यह कहना बिना परखके ही हुआ है, क्योंकि दर्शन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानमें प्रत्यक्षज्ञानमें तो शब्दका संसर्ग हो नहीं है। जहाँ शब्दका संसर्ग है वहाँ तो विकल्पात्मक निर्णय बन सकेगा। अनुभव करते ही हैं सब लोग कि जिस किसी भी पदार्थका विकल्पात्मक निर्णय होता है तो उस निर्णयके साथ शब्द कल्पना भी चलती है। यह घड़ा है, इस तरहका निर्णय होनेके साथ ही मनमें घड़ा शब्द भी उठ बैठता है तो जिस निर्णयमें शब्दका संसर्ग होता है वह तो विकल्पात्मक निर्णय है और जहाँ शब्दका संसर्ग नहीं उसे मानते हैं क्षणिकवादी निर्विकल्प ज्ञान। तो निर्विकल्प ज्ञानमें जब शब्दका संसर्ग ही नहीं तो रूपादिक पदार्थोंका अध्यवसाय निर्णय, निर्धारण कैसे आ सकेगा? जैसे कि वर्णादिकमें अभिलापका अभाव है जैसे स्वलक्षण इन पदार्थों में शब्दका संसर्ग नहीं है उसी प्रकार प्रत्यक्षमें भी शब्दका संसर्ग नहीं है। तब यह कल्पनासे भी रहित हो गया इस प्रत्यक्षमें तो शब्द कल्पना भी नहीं उठ सकता। व जो शब्दात्मक नहीं है ऐसे पदार्थकी सामर्थ्यसे उस नीलादिक स्वलक्षणकी उत्पत्ति हो जाती है, प्रत्यक्ष ज्ञानमें न शब्द है न शब्दका संसर्ग है तब वह कैसे अध्यवसायका निर्णय करने वाला बनेगा? नीलादिक स्वलक्षणको तो देखिये! वहाँ प्रत्यक्षके अभावमें भी अध्यवसायकी कल्पना चलती है। तो वह प्रत्यक्ष निर्णायक कैसे न कहलायेगा? स्वलक्षण स्वयं शब्द शून्य है फिर भी प्रत्यक्ष है, और अध्यवसायका भी कारण है। और, रूपादिक अध्यवसायके कारण न रहे यह कैसे सही कथन माना जायेगा?

निर्विकल्पज्ञानसे सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्तिकी सिद्धि—शंकाकार कहते हैं कि देखिये! निर्विकल्प प्रत्यक्षसे भी विकल्पात्मक अध्यवसायकी उत्पत्ति होती है। यद्यपि ये दोनों ज्ञान सजातीय नहीं हैं। प्रत्यक्ष तो निर्विकल्प है और अध्यवसाय सविकल्प है। याने जिसका केवल दर्शन ही हुआ है, मात्र प्रतिभास हो है वहाँ यह अमुक पदार्थ है ऐसा विवरण नहीं है। तो दर्शन तो हुआ निर्विकल्प और अध्यवसाय हुआ सविकल्प। यह अमुक वर्ण है, अमुक वस्तु है इस प्रकार यह हुआ सविकल्प तो निर्विकल्प ज्ञानसे सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे दीपक तो है प्रकाशात्मक और उससे कज्जलकी उत्पत्ति होती है। कितना अन्तर है कि कारण तो है प्रकाशरूप और कार्य हो रहा है काला, अंधेरारूप। तो विजातीयसे भी कार्यकी उत्पत्ति देखी गई है। जैसे—काजलकी उत्पत्तिमें कारण प्रदीप विजातीय कारण है, और उस विजातीय कारणसे कज्जल कार्यकी उत्पत्ति देखी गई है, ऐसे ही निर्विकल्प होनेपर भी दर्शनसे विकल्पात्मक अध्यवसायकी उत्पत्ति हो जायगी। इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो विजातीय पदार्थसे विकल्पात्मक प्रत्यक्षकी भी उत्पत्ति हो जाय, क्योंकि विजातीय कारणसे भी कार्य होने लगा मान लिया है। जैसे कि विजातीय निर्विकल्प अध्यवसाय की उत्पत्ति माना है ऐसे ही अचेतन अर्थसे विकल्पात्मक निर्णयके अध्यवसायकी उत्पत्ति हो जावे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जात्यादिकविषयताके कारण ही सविकल्पज्ञानकी विकल्पात्मकता होनेसे दोषनिराकरणका शंकाकारका निष्फल प्रयास—यहाँ शंकाकार कहते हैं कि जाति, द्रव्य गुण, क्रिया, परिणाम आदिक कल्पनाओंसे रहित पदार्थसे जाति आदिक कल्पना वाला प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ? यह आक्षेप करना गलत है और यह आक्षेप भी निर्बल है कि पदार्थसे ही अध्यवसायकी उत्पत्ति हो जायगी। उसके लिए निर्विकल्प दर्शनका कारण माननेकी आवश्यकता नहीं है, इस प्रसंगमें यह बात युक्त नहीं कि कल्पना रहित पदार्थसे ही कल्पनात्मक प्रत्यक्ष होजायगा। उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो यह भी पूछा जा सकता है कि जाति, द्रव्य गुण, क्रिया नाम आदिक कल्पनाओंसे रहित निर्विकल्प प्रत्यक्षसे जाति आदिक कल्पनाओं वाला विकल्प कैसे हो जायगा ? यह प्रश्न तो वहाँ भी समान बैठता है। शंकाकार कहते हैं कि विकल्प तो जाति आदिकका विषय करने वाला है। सो विकल्प तो जाति विषयक हुआ इस लिए सविकल्पज्ञान विकल्पात्मक है, प्रत्यक्षसे उत्पन्न होनेके कारण उसे विकल्पात्मक नहीं कहेंगे। सविकल्प प्रत्यक्षका स्वरूप ही विकल्प है यों कह दिया जायगा। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्तियुक्त नहीं जचती। विकल्प भी हुआ लेकिन है तो वह ज्ञानका ही परिणमन। तो जैसे ज्ञानका परिणमन प्रत्यक्ष है और उसमें जाति आदिकका विषय नहीं है। निर्विकल्प दर्शनमें जो कि साक्षात् प्रत्यक्षज्ञान है वह जाति आदिकका विषय नहीं करता सो इस ही तरह विकल्प वाले ज्ञानमें भी अध्यवसाय में भी जाति आदिकके विषयपनेका विरोध आता है। जैसे निर्विकल्प प्रत्यक्षमें शब्दके संसर्गकी योग्यता नहीं है उसी प्रकार निर्विकल्प प्रत्यक्षके अनन्तर होने वाले व्यवसायरूप विकल्पोंमें भी शब्द संसर्गकी योग्यता नहीं होती, क्योंकि उस सविकल्प ज्ञानमें भी न तो शब्दके साथ सम्बन्ध है और न कहा जाने योग्य या अध्यवसाय निर्णय किए जाने योग्य जाति आदिकका भी संसर्ग है क्योंकि सविकल्प ज्ञान तो अपने उपादानके सजातीय है सविकल्पज्ञानका उपादान है निर्विकल्पज्ञान। क्षणिकसिद्धान्तमें प्रत्यक्षज्ञान निर्विकल्प बताया है कि जो पदार्थसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान है उसमें विकल्प नहीं क्योंकि पदार्थ क्षणिक है इस कारण प्रत्यक्ष ज्ञानका दूसरा नाम निर्विकल्प दर्शन रखा गया है फिर लोकव्यवहार कैसे चलेगा ? यह घट है, पट है आदिक निर्णय जो पाये जा रहे हैं ये कैसे सम्भव होंगे ? ऐसा प्रश्न होनेपर क्षणिकवादियोंका यह उत्तर है कि यह है सब विकल्पात्मक ज्ञान, सो उस निर्विकल्प दर्शनसे सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। यहां यह माना जा रहा है कि सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति पदार्थसे नहीं। निर्विकल्प दर्शनसे है। और निर्विकल्प दर्शनकी उत्पत्ति पदार्थसे है और इस तरह विकल्पका निर्णय सविकल्प ज्ञानसे बतानेकी चेष्टा की जाती है। लेकिन विचार करनेपर यह सब कुछ सिद्ध नहीं होता। वह सविकल्पज्ञान भी तो चूँकि निर्विकल्पज्ञानसे उत्पन्न हुआ है और ज्ञान ज्ञानके नातेसे सजातीय है, सविकल्प ज्ञानसे पहिले होनेके कारण उपादान है तो उपादानभूत निर्विकल्प दर्शनका सजातीय होनेसे उस अध्यवसायमें भी शब्दका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

संसर्ग सम्भव नहीं।

क्षणिकवादमें सविकल्पज्ञानसे जात्यादि व्यवस्थाकी असंभवता—अब यहां शंकाकार आक्षेप करता है कि फिर तो इस स्थितिमें विकल्प जाति आदिका निर्णय करने वाला कैसे हो जायगा? सविकल्प ज्ञानको जाति आदिकका निर्णायक माना गया है और यहाँ जब यह सिद्ध कर रहे कि सविकल्प ज्ञानमें भी शब्दके साथ संसर्ग नहीं है क्योंकि वह अपने उपादानभूत निर्विकल्प दर्शनका सजातीय है सो जो प्रकृति उपादानभूत दर्शनमें है सो ही सविकल्प ज्ञानमें होगी, तब फिर विकल्पमें जाति आदिकका निर्णय कैसे होगा? उत्तरमें कहते कि किसी भी तरह नहीं हो सकता। क्षणिकसिद्धान्तमें माने गए आरोपित काल्पनिक सविकल्प ज्ञानमें जाति आदिककी निर्णायकता सम्भव नहीं है। वह कैसे? सो सुनो—देखिये! कोई वस्तु किसी जाति आदिकसे विशिष्ट होता हुआ जब विकल्पसे ग्रहणमें आये तब कहीं विशेषण विशेष्य और विशेषण विशेष्यके सम्बन्धकी व्यवस्थाको ग्रहण करनेकी अपेक्षा करता है। जैसे दंडी पुरुष कहा तो दंडी पुरुषका विशेषण दण्ड हुआ यह कैसे जाना? कि जब दण्ड वाले रूपसे ग्रहणमें आया तब दण्डी शब्द कहनेसे दण्ड वाला इस अर्थका ग्रहण कर देगा। विशेषण और विशेष्य सम्बन्धका विशेषण विशेष्यका जब ग्रहण कर लिया जायगा तब कोई उनका संयोजन करके उस प्रकारसे कोई ज्ञान करेगा कि यह इसका विशेषण है। जैसे नील कमल कहा तो कोई पुरुष नीलको भी जाने और उसके सम्बन्धको भी जाने तभी तो वह कहीं नील कमल इस प्रकार विशेषण विशेष्य भावसे जान पायगा अन्यथा नहीं। लेकिन यह सविकल्प ज्ञान इस व्यापारको, इस कामको करनेमें समर्थ नहीं है। विशेषणको जाना, विशेष्यको जाना, उसका सम्बन्ध जाना, फिर किसी घटनामें विशेषण विशेष्यका विकल्प बनाया इतनी बात क्षणिक सविकल्प ज्ञानमें नहीं बन सकती क्योंकि प्रथम तो वहां यह बात है कि वह सविकल्प ज्ञान निर्विकल्प दर्शनसे हुआ है और निर्विकल्प प्रत्यक्ष है क्षणिक तो सविकल्प ज्ञान भी क्षणिक है और क्षणवर्ती होनेके कारण उस सविकल्प ज्ञानमें विचारकता नहीं है। क्षणिकज्ञान विचारक नहीं हो सकता। इतना विकल्प बनायें, पूर्वोत्तरकी बातोंको निरखें, देश देशान्तरकी बातोंका सम्बन्ध सोचें इतना अवसर और इतनी योग्यता क्षणिक सविकल्प ज्ञानमें नहीं है। जैसे कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष क्षणिक है और वह अविचारक है इसी प्रकार क्षणिक सविकल्प ज्ञान भी अविचारक है।

अनादिवासनोद्भूत सविकल्प ज्ञानकी निर्विकल्प प्रत्यक्षसे विलक्षणता होना बताकर दोषपरिहार करनेका शंकाकारका प्रयास—अब यहाँ क्षणिकवादी शंकाकार शंका करते हैं कि यह दूषण हम लोगोंके यहां नहीं आ सकता कि शब्द संसर्गके अभावमें भी सविकल्पज्ञानमें यदि अध्यवसायकी कल्पना कर ली जाती है तब फिर निर्विकल्प दर्शन ही क्यों न अध्यवसाय कर बैठे? यह दूषण यों नहीं

दिया जा सकता कि प्रत्यक्ष मात्रसे ही तो अध्यवसायकी उत्पत्ति नहीं मानी है। सविकल्पज्ञानमें जो कि अनेक विषयोंका निर्णय करता है उसकी उत्पत्ति यद्यपि निर्विकल्प दर्शनसे कही गई है, लेकिन केवल निर्विकल्प दर्शनके कारण ही सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं मानी है। सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति शब्दकी वासनासे जो जाति आदिक विशिष्ट अर्थ हैं उनके विकल्पकी वासनासे माना गया है। अथवा कह लीजिए मनका विकल्प है यह ज्ञान तो मानसिक विकल्प शब्द अर्थके विकल्पकी वासनासे उत्पन्न होता है और वह विकल्प वासनाका विकल्प भी पूर्वविकल्प वासनासे होता है। इस तरह वासना विकल्पकी संतान अनादि है। जो प्रत्यक्ष संतानसे भिन्न है, सविकल्प ज्ञानकी संतान तो है विकल्पात्मक, विकल्प वासनासे उनकी उत्पत्ति है और निर्विकल्प प्रत्यक्षकी संतान है निर्विकल्परूप, तो ये दोनों ज्ञान बिल्कुल भिन्न जातिके हैं। निर्विकल्प ज्ञान है, निर्विकल्प जातिका और सविकल्प ज्ञान है विकल्प वासनाकी जातिका, तो विजातीय पदार्थसे विजातीयकी उत्पत्ति नहीं मानी गई। यदि विजातीयसे विजातीयका उदय मान लिया जाय तो उक्त दूषण कैसे कह सकते थे? लेकिन सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति शब्दार्थ-विकल्प वासनासे उनकी अनादि संततियोंसे हुआ करती है। अतः यह दोष नहीं दिया जा सकता कि शब्द संसर्गके अभावमें भी यदि विकल्प ज्ञानमें निर्णय बनता फिरे तो प्रत्यक्ष ही स्वयं क्यों नहीं सब विकल्पोंका निर्णय कर बैठता है?

विजातीय विकल्पज्ञानकी विजातीय निर्विकल्पज्ञानके विषयकी अनिर्णायकता—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस विजातीयसे विजातीयकी अनुत्पत्तिका हेतु बताकर सविकल्प ज्ञानकी तरह निर्विकल्प ज्ञानमें अध्यवसाय किये जानेके दोषका निराकरण करने वालेके यहाँ अब यह विडम्बना आती है कि शब्दार्थ विकल्पवासनासे उत्पन्न हुए सविकल्पज्ञानसे अब निर्विकल्प प्रत्यक्षके रूपादिकका विषय कराने वाला नियम कैसे सिद्ध होगा? याने निर्विकल्पज्ञानसे रूपक्षण, रसक्षण आदि जो कुछ समझा उसका निर्णय निर्विकल्पज्ञानमें तो है नहीं। निर्णय करता सविकल्पज्ञान। सो सविकल्पज्ञान प्रत्यक्षज्ञानके विषयका कैसे निर्णय कर सकेगा? क्षणिक सिद्धान्तमें यह माना गया है कि पदार्थ तो है स्वलक्षणरूप स्व याने लक्षण स्वतंत्र पदार्थ। जैसे रस स्वतंत्र पदार्थ कोई पिण्डरूप रस वाला नहीं है। पदार्थ तो यों अपने अपने लक्षण स्वरूप हैं, और उनका परमार्थसे जानने वाला प्रत्यक्ष है निर्विकल्प प्रत्यक्ष जो कि उन्हें जान तो ले, किन्तु क्या जाना, कैसा है पदार्थ? किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं होता। अब इस निर्विकल्प प्रत्यक्षके अनन्तर सविकल्प प्रत्यक्ष होता है इस सविकल्प ज्ञानसे यह नियम बनता है कि निर्विकल्प दर्शनका विषय ये रूपादिक थे। सो निर्विकल्प दर्शनका रूपादिक विषय है, यह नियम सविकल्प बुद्धिसे कैसे हो सकता है? क्योंकि कुछ पहले तो क्षणिकवादी मान रहे थे कि सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति निर्विकल्प दर्शनसे होती है, लेकिन इन दूषणोंसे ऊब जानेके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

कारण अब कहने लगे हैं कि सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति विकल्प वासनासे होती है। और विकल्प वासनायें पूर्व-पूर्वकी अनेक हैं। यों अनादि वासनाकी परम्परामें वर्तमान सविकल्प ज्ञानने निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञानके विषयका नियम बनाया। सो अब यह नियम कैसे बन सकता है? जब निर्विकल्प दर्शनसे सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न होने वाला न माना, केवल विकल्प वासनासे हुआ करता है सो विकल्प वासनासे तो उत्पन्न हो और वह निर्विकल्प ज्ञानके विषयका नियम बनाये यह बात नहीं हो सकती। अन्यथा अर्थात् वासना प्रभव विकल्पसे निर्विकल्प ज्ञानके विषयका नियम सिद्ध किया जाय तो अट पट किसी भी विकल्पसे निर्विकल्प दर्शनका अथवा किस ही विषयका नियम बन बैठे क्योंकि अब तो इस विकल्प ज्ञानमें निर्विकल्प दर्शनसे तो कुछ सम्बन्ध ही न रहा।

रूपादिक विकल्पसे निर्विकल्प दर्शनके विषयका नियम होनेकी आरेका—यहाँ शंकाकार कहते हैं कि बात यह है कि प्रत्यक्षज्ञानकी सहकारितासे, जो वासना विशेषसे उत्पन्न हुआ सविकल्प ज्ञान है उस ज्ञानसे यह नियम बन जायगा कि इस निर्विकल्प दर्शनका यह रूपक्षण आदिक विषय है। यद्यपि वह सविकल्प ज्ञान हुआ तो विकल्प ज्ञान हुआ तो विकल्पवासनासे उत्पन्न लेकिन उसमें प्रत्यक्ष ज्ञान, निर्विकल्प दर्शन सहकारी है। अतः उस रूपादिक विकल्पसे अब निर्विकल्प दर्शनके विषयका नियम हो जायगा। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो उस ही कारणसे उत्तरकालमें होने वाली प्रत्यक्ष बुद्धिसे निर्विकल्प उपादान रूप हुए पूर्व निर्विकल्प ज्ञान भी विषयभूत बन जायें। जब कि सविकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति दर्शनसे मानकर कि विकल्प वासनासे विकल्प दर्शन भी उसकी उत्पत्तिमें सहकारी है। तब वह विकल्पज्ञान कारणभूत निर्विकल्प ज्ञानका ही विषय क्यों नहीं करने लगता? अन्यथा यदि कहोगे कि सविकल्पज्ञान उपादानभूत निर्विकल्प ज्ञानको तो विषय नहीं करता, तो जब निर्विकल्प दर्शनसे उत्पन्न होकर भी सविकल्प ज्ञानमें निर्विकल्प प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं होता है तो फिर उसमें निर्विकल्प ज्ञानके विषयका भी नियम मत बनो। तब सविकल्प ज्ञानसे वह भी न जाना जा सकेगा कि निर्विकल्प प्रत्यक्षका यह विषय हुआ था?

रूपाद्युल्लेखी होनेसे सविकल्पज्ञानमें निर्विकल्पज्ञान विषयत्वके नियमका शंकाकार द्वारा कथन व उसमें पूर्ववत् दोषका निर्देशन—क्षणिकवादी शंकाकार कहते हैं कि जो सविकल्प ज्ञान हो रहा है वह रूपादिकका उल्लेख करने वाला हो रहा है अतएव वह विकल्प ज्ञान अपने विकल्पके बलसे यह नियम कर देता है कि निर्विकल्प ज्ञानका विषय रूपक्षण आदिक ही अमुक है। याने रूप है या रस है, या गंध है इस प्रकारका नियम सविकल्प ज्ञान कर देता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि यहां जब यह मान लिया कि उत्तर कालमें होने वाले सविकल्प ज्ञानमें

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूर्वकालमें हुए निर्विकल्प ज्ञानके विषयको तो बता दिया फिर तो जैसे उस निर्विकल्प ज्ञानके विषयको बता दिया त्यों ही उस प्रत्यक्ष बुद्धिमें शब्दका संसर्ग है, यह भी उसी तरह अनुमानमें आ जाय। क्योंकि वे जो विकल्प हुए हैं वे शब्दके द्वारा कहे जाने वाले जाति आदिकका उल्लघन करनेके रूपसे हुए। यदि यह विकल्पज्ञान "निर्विकल्प ज्ञान शब्दका संसर्ग है" ऐसा न जाने तो विकल्प ज्ञानकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। उस उक्त अनुमानसे जैसे प्रत्यक्ष बुद्धिमें शब्दके संसर्गका अनुमान किया तो उसी प्रकार अब उस अनुमति ज्ञानसे प्रत्यक्ष बुद्धिमें जो शब्द संसर्गका बोध हुआ उस बोधसे अब रूपादिक पदार्थोंमें स्वलक्षणमें भी शब्दके संसर्गका अनुमान हो जाना चाहिए। और, तब इस तरह देखो—प्रत्यक्ष ज्ञानमें भी शब्द संसर्गका निर्णय हुआ और स्वलक्षण आदिक पदार्थोंमें भी शब्द संसर्गका निर्णय हुआ तब तो शब्दाद्वैतवादियोंका सिद्धान्त सिद्ध होता है कि सारा विश्व अंतस्तत्त्व बहिस्तत्त्व सब कुछ शब्दमय है। तब यह क्षणिकवाद निर्विकल्प दर्शनका भी शब्द संसर्ग नहीं करा सकता।

क्षणिकवादमें जगतके विकल्परहित और नामरहित होनेका प्रसंग— बात अब यहाँ यह दूसरी कही जा रही है कि वे चाहते हुए भी कि प्रत्यक्ष बुद्धिमें शब्दका संसर्ग बन जाय तो भी क्षणिकवादमें प्रत्यक्ष बुद्धिके साथ शब्दका सम्बन्ध नहीं बन सकता, जब पदार्थ था तब ज्ञान न हुआ। पदार्थ मिटा तब तो ज्ञान हुआ, क्योंकि क्षणिकवादमें ऐसा होना ही पड़ेगा और जब ज्ञान मिटा तब उसका शब्द और विकल्प बनाया। तो यह तो मन चाहा कथन है। प्रत्यक्षमें शब्दका संसर्ग नहीं बन सकता। इस ही कारण ये क्षणिकवादी किसी भी नीलादिक पदार्थको देखते हुए उसके सदृश पहिले देखे हुएका स्मरण नहीं कर सकते। क्योंकि उस पदार्थमें नाम विशेषका स्मरण नहीं हो रहा। एक नील पदार्थको देखा तो देखकर क्षणिकवादी मानते हैं कि इस नील पदार्थसे पहिले भी नील पदार्थ था। जिसे पहिले जाना था जाना था उसका स्मरण करके इसको भी नील कह रहे हैं। तो क्षणिकवादमें स्मरण न बन सकेगा, क्योंकि यहाँ तो दो के स्मरण एक साथ बनते होंगे—पदार्थका और नाम विशेषका। तो नाम विशेषका स्मरण न करता हुआ ही उसके शब्दको यह जान रहा है। न जाने तो शब्दके साथ पदार्थकी योजना नहीं कर सकते। और, जब पहिले देखे हुएके नामको न जान सका तो ये दृश्यमान पदार्थका निर्णय भी नहीं कर सकते। फिर तो न कहीं विकल्प रहा और न कहीं शब्द रहा। तो सारा संसार विकल्प और शब्दसे शून्य हो जायगा।

शंकाकार द्वारा अविकल्पाभिधान जगत होनेके आक्षेपके समाधानका अविफल प्रयास— हां शंकाकार कहते हैं कि नाम है कारण जिसका ऐसा विकल्प तो प्रत्येक आत्माके अनुभवमें आ रहा है। हम सभी मनुष्योंमें जो भी निर्णयात्मक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विचारात्मक चिन्तन चलता है उस विकल्पके साथ शब्द भी जुड़े रहते हैं और किन्हीं शब्दोंका सहारा लेकर वे विकल्प होते रहते हैं। ऐसा सभी मनुष्योंको अनुभवजन्य है और सभी मनुष्योंके स्वेत्रज्ञानमें शब्दका भी प्रतिभास हो रहा है। सभी लोग तो शब्द सुन रहे हैं तब यह दूषण कैसे आ सकेगा कि सारा संसार विकल्प और शब्दसे रहित हो जायगा? विकल्पोंका भी अनुभव चल रहा है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि बात तो यह ठीक है कि जगत विकल्प और शब्दसे शून्य नहीं है लेकिन क्षणिकवादमें विकल्प और शब्दका निश्चय असम्भव है। और क्षणिकसिद्धान्तमें विश्व विकल्प और शब्द रहित हो जायगा यह दूषण बताया है। विकल्पका और शब्दका ग्रहण कैसे नहीं होता क्षणिक सिद्धान्तमें सो सुनो! स्वसम्वेदन ज्ञानके द्वारा अथवा इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा जो कि निर्विकल्प माना गया है उसके द्वारा विकल्प और शब्द गृहीत होते ही नहीं। यदि निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा सविकल्पका ग्रहण मान रहे हो तो फिर निर्विकल्प ज्ञानके ही द्वारा स्थिर स्थूल और आकारका ग्रहण भी क्यों नहीं पहले ही मान लेते? जैसे कि निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा विकल्पका ग्रहण मानते हैं तो साथ ही यह भी मान लो कि स्थिर पदार्थका भी निर्विकल्प ज्ञानमें ग्रहण हो गया। और, देखिये! बहिस्तत्त्व अथवा अंतस्तत्त्व याने चेतन और अचेतन पदार्थ कुछ भी कदाचित् गृहीत भी मान लिए जायें याने निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा पदार्थ विषय में आ जाते हैं ऐसा भी माना जाय तो ऐसा गृहीत भी अगृहीतके समान है, क्योंकि निर्विकल्प ज्ञान नाम जाति आदिककी योजना सहित पदार्थका ग्रहण नहीं करता। उसे तो स्वलक्षण मात्रका ही प्रतिभास करने वाला माना है। सो जैसे क्षणक्षय स्वलक्षण, सम्वेदन आदिक भी न ग्रहण किएकी तरह हैं निश्चयमें नहीं आये हुए हैं इसी प्रकार समस्त बाह्य तत्त्व और अन्तस्तत्त्व भी अग्रहण किए हुएके समान है। और जब विकल्प और शब्द सम्भव न हो सके क्षणिक सिद्धान्तमें और निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा गृहीत पदार्थ भी अगृहीतके समान हो रह गया। तब यह समस्त जगत अचेतन बन जायगा।

पूर्वसंविदित व नामविशेषका युगपत स्मरण होनेसे अविकल्पाभिधान जगत होनेके आक्षेपको दूर करनेका शंकाकारका प्रयास – अब यहाँ शंकाकार कहता है कि हमारे मतमें ऐसा नहीं माना है कि कोई पुरुष किसी नील आदिक पदार्थको अथवा सुखादिक अंतस्तत्त्वको जानता हुआ वह सम्विदित अर्थको जो कि वर्तमान सम्विदितके समान है ऐसे पूर्व जाने गए अर्थको और वर्तमान जानने वालेके नाम विशेषका क्रमसे स्मरण करता है, सो जब हमने इन दोनोंका क्रमसे स्मरण न माना याने निर्विकल्प ज्ञानमें नीलादिकका ग्रहण किया तो उसे ग्रहण करते हुयेमें उसके निर्णयके लिए दो बातें आती हैं ना, एक तो उसके समान जो पहिले जाना है उसका स्मरण हो और नाम विशेषका स्मरण हो तब निर्णय होता है। तो निर्णयके लिए जरूरत तो इन दो बातोंकी है कि वर्तमानमें जो जाना गया है उसके समान जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पहिले जाना था उसका स्मरण हुआ हो और ज्ञानमें आ रहेका नाम विशेषका स्मरण हो तब तो निर्णय होता हैं कि यह वही बात है, यह सही है। तो इसमें दोका स्मरण तो होता है पर क्रमसे स्मरण नहीं मानते। इन दोनोंका अर्थात् पूर्व संविदित पदार्थका और सम्वेद्यमान पदार्थके नाम विशेषका एक साथ ही स्मरण होता है। क्योंकि पूर्वसम्विदित पदार्थका और सम्वेद्यमान नाम विशेषका जो संस्कार हैं उन संस्कारोंका ज्ञेयके ज्ञानके साथ ही जागरण हो जाता है अर्थात् निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा जो कुछ प्रतिभास किया गया उस दृश्यके दर्शनसे ही एक ही साथ पूर्व सम्विदित पदार्थका और सम्वेद्यमान पदार्थके नाम विशेषका एक साथ प्रबोध होता है। इस कारण यह पुरुष किसी भी नीलादिक पदार्थको देखता हुआ ही उसके सदृश पूर्व देखे गएका स्मरण कर लेता है और उस ही सम्बन्धमें दृश्यमान नीलादिक पदार्थमें नाम विशेषका स्मरण हो जाता है। इस कारणसे उसका यह नाम है यह योजना बन जाती है। और इसी कारण जब दृश्य पदार्थका नामके साथ योजना बन गई तो अब यह दूषण न आ सकेगा कि लो सारा जगत विकल्प और शब्दसे रहित बन जायगा।

शंकाकारकथित पूर्वसंविति और नामविशेषकी युगपत्स्मृतिकी क्षणिकवादमें अयुक्तता—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह सब कथन युक्ति-संगत नहीं है क्षणिक सिद्धान्तमें विश्वके शब्द और विकल्प रहित हो जानेका दूषण बराबर ही रहता है क्योंकि दृश्यमान पदार्थके नामका और दृश्यमानके समान पूर्व देखे गए पदार्थका क्षणिक सिद्धान्तमें एक साथ स्मरण होना अयुक्त ही है, क्योंकि इन दोनोंके एक साथ स्मरणका मंतव्य उन हीके मतसे विरुद्ध है। क्यों विरुद्ध है ? क्यों विरुद्ध है कि क्षणिक सिद्धान्तमें एक साथ एक बारमें २ स्मृतियाँ नहीं मानी हैं कि वर्तमान कालका और अतीत कालका स्मरण एक साथ हो जाय। यह क्षणिक सिद्धान्तमें माना ही नहीं गया, क्योंकि दृश्यमान पदार्थ और पूर्वदृष्ट पदार्थ इनमें तो बाध्य बाधक भाव है। बिल्कुल ही विषय निराला है। पूर्व दृष्ट अतीत सम्बन्धित है, दृश्यमान वर्तमान सम्बन्धित है, पूर्वदृष्ट तो असत् हैं, किन्तु दृश्यमान पदार्थ सत् है। तब यहाँ जो स्वयं बाध्य बाधक हो रहे हैं कैसे उनकी एक बारमें स्मृति बन सकती है ? अन्यथा यदि एक विकल्पके समय दूसरा विकल्प भी जुड़ा हुआ हो तो कोई पुरुष घोड़ेका विकल्प कर रहा है तो उस विकल्प करने वाले पुरुषके भी गायके दर्शनमें, प्रत्यक्ष होनेमें द्वितीय कल्पनाका विरह सिद्ध नहीं होता। मानना होगा कि अश्वका भी विकल्प चल रहा है और गायका प्रत्यक्ष कर रहा तो गायका भी विकल्प चल रहा, पर ऐसा तो क्षणिकसिद्धान्तमे है नहीं। और प्रत्यक्ष व स्मरण ये दोनों ज्ञान भिन्न भिन्न हैं। दो ज्ञान एक आधारमें न हो सकते। और होते हैं जहाँ, वे प्रत्यभिज्ञान नामक जात्यंतर हो जाते हैं। तो क्षणिकवादमें प्रत्यभिज्ञान नामका प्रमाण नहीं माना गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणिकवादमें एक नामकी भी स्मृतिकी असम्भवता अच्छा, और विशेष भी विचार छोड़िये ! पहिले यह ही सिद्ध कर लो कि जिस पदार्थको जान रहे हैं उस पदार्थके नाम मात्रका भी स्मरण नहीं बन सकता, क्योंकि किसी भी दृश्यमान पदार्थका जो भी नाम है उस नाममें अनेक अक्षर, अनेक मात्रायें हैं और उनका जन्म भी क्रमसे है। जब पदार्थ जिस नामसे कहा गया उस नाममें कई अक्षर मात्रायें हैं और उनका बोलना क्रमसे होता है। जैसे नील शब्द कहा तो नील शब्दमें चार अक्षर हैं - न् ई ल् अ। अब ये क्रमसे बोले गए तो इनका निश्चय भी क्रमसे ही होगा तो क्रमसे जब निश्चय हुआ नामकी अक्षर मात्राओंका तो एक साथ तो निर्णय हुआ नही, सो एक साथ निश्चयका अभाव होनेपर नामकी स्मृति नहीं बन सकती जैसे कि क्षणक्षय आदिकमें अध्यवसाय नहीं होता तो उसकी स्मृति नहीं मानी है, स्मृति आदिक सब सविकल्प ज्ञानोंमें उपचरित ज्ञानोंमें माने हैं। क्यों नहीं क्षणक्षय आदिक की परमार्थ ज्ञानसे स्मृति है कि पदार्थ तो जब हुआ उस ही समय नष्ट हो जाता है। सो ऐसे ही जो नाम स्मरणके लिए बोले गए सोचे गए हैं उनमें अक्षर मात्रायें अनेक हैं, उनका एक साथ स्मरण हो नहीं सकता। तो लो दृश्यमान पदार्थके नाममात्रका भी तो व्यवहार पहिले सिद्ध करलें। नामकी अक्षर मात्राओंका एक साथ विचार निश्चय सम्भव नहीं है विरोध होनेसे। वे जुदे-जुदे समयमें उत्पन्न हुए हैं। कैसे उनका एक साथ अध्यवसाय हो जायगा ? अन्यथा उन सब शब्दोंका एक साथ अध्यवसाय हो जाय, निश्चय हो जाय तो फिर सुनना संकुल हो जायगा ज्ञान भी संकुल हो जायगा। संकुलका अर्थ एकदम मिला हुआ किसी एक भी रूप न रहा। ऐसा ज्ञान बन गया। जैसे नील यह शब्द बोला तो इस शब्दमें चार वर्ण हैं। उन चार वर्णोंका परस्पर भेदरूपसे तो ज्ञान बना नहीं, याने एक साथ सब अध्यवसाय मान लिया है। तो जब चारों अक्षरोंमें एक साथ ही अध्यवसाय हुआ तब क्या सुननेमें आया ? कुछ भी नहीं, संकुल श्रवण हो गया।

अभिलाप (नाम) के व्यवसायके सम्बन्धमें दो विकल्प और उनमें प्रथम विकल्पका निराकरण—अब और भी सुनो - नाम क्या है ? एक पद है। बोलचाल क्या है ? पदोंका समूह। तो पदरूप अभिलापका और पदोंके अन्य स्वरूप वर्णोंका जो निश्चय मान रहे हो सो यह बतलावो कि नाम विशेषकी स्मृति न होनेपर व्यवसाय होता है या नाम विशेषकी स्मृति होनेपर उन वर्णोंका निश्चय होता है ? जैसे स्वलक्षण यह शब्द बोला तो इस स्वलक्षण शब्दका एक निश्चय दूसरे स्वलक्षण शब्दका एक निश्चय दूसरे स्वलक्षण वाचक शब्दका स्मरण होनेपर हुआ या दूसरे नाम विशेषका स्मरण न होनेपर हुआ ? इसका भावार्थ यह समझिये मोटे रूप में जैसे कि घड़ा देखा और उसको हो रहा घड़ेका ज्ञान तो इस घड़ा शब्दकी तरह और दूसरे घड़ा शब्दका स्मरण होनेपर हुआ या दूसरे घड़ा नामके स्मरण बिना ही घड़ा नामका निश्चय हो गया ? ये दो विकल्प किए जा रहे हैं। यदि यह कहो कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नाम विशेषका स्मरण न होनेपर इस नामका और वर्णोंका निश्चय हो गया तो जब नामान्तरके बिना भी तमाम अभिलापका, नामका ग्रहण मान लिया गया, निश्चय मान लिया गया तब शब्दरहित रूपमें पदार्थका ही पहिले निश्चय क्यों न हो जायगा, ज्ञानने पदार्थको जाना, जान लिया इतने नामकी क्या जरूरत है साथमें ? शब्दरहित रूपसे ही पदार्थका निश्चय हो जाय। जैसे कि इस नामका दूसरे शब्दके स्मरण बिना भी ज्ञान हो गया था, तो सीधा ही पदार्थका बिना ही किसी शब्दकी योजनाके ज्ञान हो जाय, क्योंकि अब तो क्षणिकवादियोंने अपने एकान्त अभिमतका त्याग कर दिया, उनका अभिमत पहिले यह था कि अपने नाम विशेषकी अपेक्षा रखते हुए ही अर्थ विकल्पोंके द्वारा निश्चित किया जाता है। अब यह एकान्त तो न रहा। यहाँ देखिये कि दृश्यमान पदार्थका नाम भी तो पदार्थ है और वह नाम नामक पदार्थ बिना शब्द योजनाके निश्चित हो गया। तब फिर यह अर्थ ही सीधा बिना नाम योजनाके निश्चित हो जाय। निर्विकल्प ज्ञानसे पदार्थका आकार रूपसे ग्रहण बन जाय। जैसे घट पट आदिक पदार्थ हैं। नाम भी पदार्थ है और स्वलक्षण एक शब्द नाम है उसके यहाँ अपने वाचक शब्दकी अपेक्षा बिना ही निश्चय मान लिया गया है। तो जब अपने अभिमत एकान्तका त्याग कर दिया तब इस हठका भी त्याग करदो कि पदार्थका निश्चय शब्द योजना पूर्वक होता है। जैसे शब्द योजनाके बिना नामका व्यवसाय कर लिया ऐसे ही शब्द योजनाके बिना पदार्थका भी व्यवसाय मान लेना चाहिए।

नामका व्यवसाय न कहनेपर जगतकी प्रमाण प्रमेय शून्यताकी क्षणिक सिद्धान्तमें आपत्ति—उक्त दोषके भयसे यदि कहो कि नाम विशेषका व्यवसाय नहीं किया जाता अर्थात् नाम विशेषके निश्चय किए बिना प्रकृत स्व लक्षण नामको समझ लिया जाता है तो जब नाम विशेषके स्मरण बिना प्रकृति नामका निर्णय हो गया था नामका निर्णय ही नहीं मानते तब तो कहीं भी कोई निश्चय न हो सकेगा, क्योंकि नाम और नामके अंशरूप वर्णोंके अनिश्चय होनेपर नामका जो अर्थ है उस पदार्थका भी निश्चय नहीं हो सकता। और निर्विकल्प दर्शनकी बात देखिये कि वह तो अनिश्चयात्मक है। केवल दृष्टामात्र है अर्थात् अनिश्चयात्मक निर्विकल्प ज्ञानके द्वारा जो कुछ भी देखा गया वह न देखेके ही समान है। तब व्यवसायात्मक ज्ञान तो न बना। अव्यवसायी ज्ञानसे प्रमाण किया जाता नहीं। तो निष्कर्ष यह निकला कि समस्त प्रमाणोंका अभाव है जब प्रत्यक्ष प्रमाण न बन सका, निर्विकल्प प्रत्यक्षका जब समग्र रूपसे अभाव हो गया तो अनुमान तो हुआ करता है निर्विकल्प प्रत्यक्षके आधारपर, सो अब प्रत्यक्ष ज्ञानकी असत्ता होनेमे अनुमान प्रमाण भी न बन सकेगा। यों जब दोनों ही प्रमाण न रहे जैसे कि क्षणिकवादमें सिर्फ दो ही प्रमाण माने हैं और दोनों प्रमाणोंका सत्त्व नहीं रहता तो समस्त प्रमेयोंका भी अभाव हो गया, क्योंकि प्रमाणके विनष्ट होनेपर प्रमेयकी व्यवस्था नहीं बन सकती। इस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तरह यह सारा संसार प्रमाण और प्रमेयसे शून्य हो गया। तो अब प्रकरणसंगकी बात देखिये कि नाम और नामके अंशभूत वर्ण इनका यदि नाम नहीं है, यह नाम स्वयं नाम रहित है ऐसा ही स्वीकार करनेपर सारा जगत प्रमाण इसे शून्य बन गया। इस कारण पहिला विकल्प तो युक्तिसंगत न रहा कि नामके वर्णोंका और नामका व्यवसाय अन्य नामविशेषकी स्मृति न होनेपर हो जाता है।

नाम और नामके अंशभूत वर्णोंका व्यवसाय नाम विशेषकी स्मृति होनेपर माननेकी असंगतता—अब शंकाकार कहते है कि यदि प्रथम पक्षकी बात न रही, नाम विशेषकी स्मृति न होनेपर नामका व्यवसाय न रह सका तो न रहा, हम प्रथम विकल्प न मानकर द्वितीय विकल्प मानेंगे याने नाम और नामके अंशभूत वर्णोंका व्यवसाय (निश्चय) अन्य नाम विशेषकी स्मृति पर होता है ऐसा हम द्वितीय विकल्प स्वीकार करते हैं याने प्रत्यक्ष ज्ञानसे जो पदार्थ निरखा है उस पदार्थका जो नाम है उस नामका निश्चय उसके सदृश पदार्थके नामका स्मरण होनेपर होता है। ऐसा द्वितीय पक्ष हम स्वीकार करते हैं, तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि नाम और नामके अंशभूत वर्णोंका व्यवसाय करनेके लिए अन्य नामान्तर विशेषकी कल्पना करनेपर अन्य नाम विशेषका स्मरण किया जानेपर व्यवसाय माननेपर अनवस्था दोष हो जायगा क्योंकि जिस नाम विशेषका स्मरण करेंगे उस नाम और नामके वर्णोंके निश्चयसे भी अन्य नामका स्मरण अपेक्षित होगा। फिर उस अन्य नामके व्यवसायके लिए भी अन्य नाम विशेषका स्मरण अपेक्षित होगा। यों अनेक नामान्तरकी स्मृतिमें बढ़ते जाइये! प्रकृत नामविशेषका व्यवसाय हो न सकेगा। और, अनवस्था दोष आयगा। तो इस तरह भी नहीं दोष आता है कि सारा जगत प्रमाण और प्रमेयसे शून्य हो जायगा, क्योंकि जब प्रकृत नामका व्यवसाय न हो सकेगा अनवस्था होनेसे तो अर्थोंका भी निश्चय न होगा, प्रमाणका निश्चय न होगा तो सारा जगत प्रमाण प्रमेयसे शून्य हो जायगा।

शब्दरहित रूपमें सामान्यका व्यवसाय माननेपर उसी ज्ञानसे अशब्द स्वलक्षणके ज्ञानका प्रसंग—अब शंकाकार कहते हैं कि ये सब दोष हमारे सिद्धान्तमें यों न लगेंगे कि हम सामान्यको शब्दरहित ही निश्चित करते हैं। सामान्य कहलाया निर्णय पदार्थोंका स्वरूप याने निर्विकल्प दर्शनसे जो पदार्थ जाना गया वह तो है स्वलक्षण याने विशेष। अब उसके बाद उसके सम्बन्धमें जानना कि यह इस नामका है यह इस उपयोगका पदार्थ है आदिक विकल्पात्मक जितने भी विषय होते हैं ज्ञानमें वे क्षणिकवादमें माने गए हैं सामान्य। तो वह सामान्य भी शब्द रहित है, ऐसा माननेपर फिर तो दोष न आयगा। इसके उत्तरमें कहते हैं कि बताये गए दोष के भयसे यदि ये क्षणिकवादी शब्दसे रहित रूपमें सामान्यका निर्णय करते हैं तो इस तरह फिर इस ज्ञानके द्वारा शब्दरहित स्वलक्षण ही क्यों न निर्णीत कर लिया जाय,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्योंकि सामान्यके लक्षणमें और स्व लक्षणमें अब कोई भेद न रहा। स्वलक्षण शब्द रहित माना जाता था और अब स्वलक्षणका व्यवसाय करनेके लिये जो सविकल्प ज्ञान उत्पन्न हुआ है उसका विषय जो सामान्य है उसे भी शब्दरहित मान लें, तो लो अशब्दपनेके नातेसे सामान्य लक्षण और स्वलक्षणमें भेद न रहा। तब सीधा पहिले ही ज्ञानसे ही स्व लक्षणका निश्चय कर लिया जाना चाहिए।

अर्थक्रियाकारिता व अनर्थक्रियाकारितासे स्वलक्षण व सामान्यलक्षण में भेद सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास यहाँ शंकाकार कहता है कि देखिये! अर्थ क्रियाकारी परमार्थभूत शब्द जो स्वलक्षण कहलाता है, उसमें स्वलक्षणता है। विकल्प किसी भी प्रकारका नहीं है और उससे भिन्न जो काल्पनिक सत् हैं जाति, द्रव्य गुण आदिकके निर्णय, ये अर्थ क्रियाकारी नहीं है, ऐसे काल्पनिक सत्को सामान्य लक्षण कहा है, सो सामान्य लक्षणमें और स्वलक्षणमें अभेद कैसे हो जायगा। जो ही अर्थक्रियाकारी हो वह ही परमार्थ सत् होता है। और जो अर्थ क्रियाकारी नहीं है वह काल्पनिक सत् होता है। तो सामान्य लक्षण तो है काल्पनिक सत्रूप और स्व लक्षण है परमार्थ सत्रूप। तब इसमें एकता कैसे मान लिया जायगा? यदि ऐसे भिन्न भिन्न लक्षण वाले सामान्य और स्वलक्षणका अभेद कर दिये जायें तो काल्पनिक और पारमार्थिक स्वरूप कुछ रहेंगे ही नहीं, यों क्षणिकवाद सिद्धान्तमें स्व लक्षण और सामान्य लक्षणके स्वरूप न्यारे हैं। अतः स्व लक्षणके जाननेके लिए निर्विकल्प दर्शनका मानना और सामान्यके जाननेके लिये सविकल्प ज्ञानका मानना विरुद्ध नहीं ठहरता।

स्वलक्षणत्व व अर्थक्रियाकारित्वकी दृष्टिसे दृश्य और सामान्यमें अभेद होनेका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहने वाले क्षणिक सिद्धान्तके अनुयायी केवल अपने दर्शनके अनुरागी हैं। परीक्षा कर सकने वाले नहीं हैं देख लीजिए! सामान्यका लक्षण क्या होगा जो सामान्यमें ही पाया जाय, विशेषमें न पाया जाय? किसी भी पदार्थका लक्षण इस ही पद्धतिसे बनेगा कि वह लक्षण उसमें ही पाया जाय, अन्यमें न पाया जाय। तो सामान्यका जो भी असाधारण रूप है सो अपने असाधारण रूपसे लक्ष्यमें आये हुए सामान्यमें भी तो स्वलक्षणता आ गयी! स्वलक्षण नाम किसका है? जो तत्त्व है पदार्थ है, उसका जो लक्षण है वह स्वलक्षण है। स्वलक्षण और सामान्य लक्षण ये भिन्न-भिन्न चीज क्या? जिसका जो लक्षण है वह उसका स्वलक्षण कहलाता है। जैसे कि विशेष पदार्थ किस लक्षणसे लक्षित होता है सो देखिये! असाधारण रूपके द्वारा जो कि सामान्यमें न पाया जाय ऐसे विसदृश परिणामात्मक अपने खास स्वरूपके द्वारा जो लक्षित हो उसका नाम विशेष है। तो सामान्यका भी लक्षण देखिये! अपने उस असाधारण रूपके द्वारा जो कि सदृश परिणामात्मक है और विशेषोंमें न पाया जाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हो, जैसे अपने असाधारण रूपके द्वारा सामान्य लक्षित होता है तो विशेषका स्वलक्षण विशेषमें है, सामान्यका स्वलक्षण सामान्यमें है। तो स्वलक्षणताके नातेसे सामान्यको विशेषसे भिन्न कैसे कहा जा सकता है ?

अर्थक्रियाकारित्वकी दृष्टिसे भी सामान्य और विशेषमें अभेदका प्रतिपादन— और भी देखिये ! क्षणिकवादियोंने जो एक यह भेद डाला है कि विशेष तो अर्थक्रियाकारी है और सामान्य अर्थक्रियाकारी नहीं है। इस भेदके होनेसे सामान्य लक्षणमें और स्वलक्षणमें अभेद नहीं कहा जा सकता। तो इसके विषयमें भी सुनो ! जैसे विशेष अपनी अर्थक्रियाको कर रहा है। विशेषकी अर्थक्रिया क्या है कि अन्य पदार्थसे व्यावृत्त करा देवे, हटा देवे मिले हुए अनेक पदार्थोंमेसे अन्य पदार्थोंको हटा कर किसी एक पदार्थका अलग ज्ञान करा देवे, यही तो विशेषकी अर्थक्रिया है। सो विशेषकी अर्थक्रिया है। सो व्यावृत्तिका ज्ञान कराने वाली अपनी अर्थक्रियाको करता हुआ विशेष जैसे अर्थक्रियाकारी माना गया है उसी प्रकार सामान्य भी अन्वयका ज्ञान करा देवे, ऐसी अपनी अर्थक्रियाको करता हुआ अर्थक्रियाकारी कैसे न माना जायगा ? तो जैसे विशेषको अर्थक्रियाकारी कहा है इसी तरह सामान्य भी अर्थक्रियाकारी है यह सिद्ध होता है। विशेषने तो यह काम किया कि अन्य तत्त्वोंसे, परिणमनोंसे भिन्नता का ज्ञान करा दिया तो सामान्यमें यह अर्थक्रिया की कि अपने सब परिणमनोंमें अन्वय का ज्ञान कराया और जा तभून सब पदार्थोंमें व्यापने वाले सामान्य स्वरूपका ज्ञान कराया सो दोनों ही अर्थक्रियाकारी हो गये। अब रही इस प्रकारकी अर्थक्रियासे अन्य प्रकारकी अर्थक्रियाकी बात। जैसे गायसे दूध प्राप्त होनेकी अर्थक्रिया होती है और बैलपर बोझ लादनेकी अर्थक्रिया होती है तो वाह और दोह आदिक अर्थक्रिया करने की जैसे कि बताते हो कि सामान्यमें सामर्थ्य नहीं है सो ठीक है। इस अर्थक्रियाको करनेकी जैसे सामान्यमें सामर्थ्य नहीं है, इसी प्रकार केवल अर्थात् सामान्यरहित विशेष भी अर्थक्रियाको करनेमें समर्थ नहीं है। क्योंकि बोझ लादना, दूध दुहना आदिक क्रियावोंमें सामान्य विशेषात्मक वस्तु गाय, बैल आदिकका ही उपयोग है। इस तरह अर्थक्रियाकारी रूपसे भी सामान्य और स्व लक्षणमें अभेद सिद्ध होता है। जब एक ही बात सिद्ध हो गई तब यह क्यों नहीं मान लिया जाता कि प्रथम ही बार हुए प्रत्यक्षसे सब कुछ निश्चय हो जाता है। सामान्य और विशेष ये दो धर्म कोई निरपेक्ष स्वतंत्र पदार्थ नहीं हैं। एक ही द्रव्यसे सामान्य और विशेष परिणामों का कथंचित् अभिन्नपना है इसलिये अभेद मानना चाहिए। और, उस प्रकार सामान्य का निश्चय रखते हुए भी फिर उससे अभिन्न रूपमें रहने वाले स्वलक्षणका निश्चय न करे यह बात कैसे युक्त हो सकती है ?

स्वलक्षणको जात्यन्तरभूत माननेपर सामान्य विशेषात्मक प्रमेयके ज्ञानकी सिद्धि—शंकाकार कहते हैं कि स्वलक्षण न तो द्रव्यरूप है, न उसके परि-

Version 1

णात्मक है। अर्थात् न तो सामान्यरूप है और न विशेषरूप है। फिर क्या है ? तो सुनो—उस द्रव्य और पर्यायसे भिन्न ही कुछ ऐसा जो सर्वथा निर्देश किए जानेके लिए अशक्य प्रत्यक्षज्ञानमें प्रतिभासमान होता है वह है स्वलक्षण। इस शंकाके उत्तर में कहते हैं कि फिर तो इस तरह भी स्वलक्षण क्या सिद्ध हुआ ? कोई जात्यंतर सामान्य विशेषात्मक पदार्थ, क्योंकि सामान्य विशेषात्मक पदार्थका ही जो कि परस्पर निरपेक्ष सामान्य और विशेषसे भिन्न है। तथा परस्पर निरपेक्ष सामान्यवान विशेषवान द्रव्यसे भिन्न है, ऐसे सामान्य विशेषात्मक पदार्थका ही प्रत्यक्षज्ञानमें प्रतिभास होता है। प्रत्यक्षके द्वारा कोई निरन्वय क्षणक्षयी, निरंश, परमाणुरूप लक्ष्यमें नहीं आता। तो ऐसे सामान्य विशेषात्मक जात्यतरमें जो इन्द्रियजन्य निश्चय हुआ वह नाम विशेषकी अपेक्षा न रखकर कैसे न हुआ ? जिससे कि ज्ञान अशब्द स्वलक्षण का ज्ञान न करे यही निश्चय मानना चाहिये कि तब ज्ञान जब जिस पदार्थको जानता है तब वह उसका समग्र व्यवसाय कर लेता है, क्योंकि सामान्य और विशेष चूंकि सामान्य विशेषात्मक पदार्थ है, पदार्थ ही सामान्य विशेष स्वरूप है, वहाँ सामान्य अलग अंशोंमें हो और विशेष अलग अंशोंमें हो ऐसा नहीं है सो जब सामान्य और विशेषमें अभेद है तब क्षणिकवादी जैसे सामान्यको निश्चित करते हुए शब्दोंसे योजित कर देते हैं इसी प्रकार स्वलक्षणको निश्चित करते हुए भी शब्दोंसे योजित करना चाहिए। इस कारण कोई भी प्रमेय अनभिलाप्य नहीं है अर्थात् शब्दोंसे योजित न किया जा सके याने वक्तव्य न हो सके ऐसा नहीं है। सभी पदार्थ श्रुतज्ञानसे हरिच्छेद्य हैं क्योंकि शब्दोंसे योजित हुए पदार्थमें श्रुतका विषयपना सिद्ध होता ही है।

प्रत्यक्षको अनभिलाप्य माननेपर दृष्टविषयक सामान्यके निर्णयके भी अभावका प्रसङ्ग - और भी सुनिये ! प्रत्यक्षको अवक्तव्य हो माननेपर यह बताइये कि अपनी उत्पत्तिमें दृष्ट सम्बन्धित सामान्यका व्यवसाय (निश्चय) यदि स्मृतिसे आए हुए शब्द योजनकी अपेक्षा रखता है अर्थात् पहिले अर्थदर्शन हो पश्चात् शब्द योजन हो और शब्दयोजनके सहयोगसे दृष्टसम्बन्धित सामान्यका निश्चय हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्यक्ष दृष्ट पदार्थ और उसके निश्चयके बीच शब्दयोजनाका व्यवधान हो गया। तब ऐसी स्थितिमें इन्द्रियज्ञानसे सामान्यका निर्णय न होगा और सविकल्प ज्ञानसे निर्विकल्प ज्ञानका निश्चय न होगा। देखिये ! जैसे क्षणिकवादी नैयायिकोंके मन्तव्यमें इस प्रकार दूषण देते हैं कि शब्दान्वित अर्थको ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष माननेमें यह आपत्ति है कि वहाँ पदार्थके ज्ञानका व्यापार होनेपर भी स्मरणसे आये हुए शब्दयोजनाओंकी इन्द्रियज्ञान अपेक्षा करता है तो वह प्रत्यक्षका विषयभूत पदार्थ स्मृतिसे आगत शब्दयोजनासे व्यवहित होगया अर्थदर्शन और निश्चयके बीचमें शब्दयोजना आ पड़ी, इस कारण वह पदार्थविषयक इन्द्रियज्ञान सविकल्प नहीं रहेगा, क्योंकि अब शब्दयोजनासे इन्द्रियज्ञान बना है सो अब पदार्थके अभावमें सविकल्प, इन्द्रियज्ञान हो गया और पदार्थका सद्भाव होनेपर भी इन्द्रियज्ञान नहीं हुआ, जैसे यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षणिकवादी नैयायिकोंके प्रति यह दूषण देते हैं, इसी प्रकार योजना शब्द सहित पदार्थ निर्णय करना मानने वाले क्षणिकवादियोंके ज्ञानमें भी ऐसा ही दूषण आता है। किन्तु दोनों मन्तव्योंमें पदार्थके स्वरूपमें ही मतभेद रहा कि नैयायिक तो पदार्थको ही शब्दानुविद्ध मानते हैं और क्षणिकवादी नील क्षण आदि पदार्थोंको शब्दरहित मानते हैं। निश्चय करनेमें तो नैयायिकोंने भी शब्द योजना मानी और क्षणिकवादियोंने भी यहाँ शब्द योजना मान ली।

स्वलक्षण प्रतिभास व उसके निश्चयके बीच शब्दयोजनाका व्यवधान होनेसे पदार्थसे सविकल्पक ज्ञानकी उत्पत्तिकी असंभवता—देखिये क्षणिकवाद में किस प्रकार नैयायिकोंके प्रति क्षणिकवादियों द्वारा कहा गया दूषणकी भांति दूषण आता है। इन्द्रियज्ञानरूप सविकल्प ज्ञान उपयोग होनेपर, अर्थदर्शन होनेपर अपनी उत्पत्तिके लिये यदि शब्द योजनकी अपेक्षा करता है जैसा कि आम तौरपर ऐसा लगता है कि पहिले अर्थदर्शन होता है, पश्चात् शब्द योजना होती है पश्चात् उसका निश्चय होता है, यों यदि शब्द योजनाकी अपेक्षा रहती है तो वह इन्द्रियज्ञान अपने विषयके नामस्मरणके द्वारा व शब्दयोजना व्यवहित हो गया और तब इन्द्रियज्ञानसे पदार्थ निश्चय नहीं हुआ, क्योंकि अब पदार्थके अभावमें भी सविकल्प ज्ञान हो गया और पदार्थके सद्भावमें सविकल्प ज्ञान न हो सका। क्षणिकवादी इस दूषणके लिए नैयायिकोंके प्रति यह कहता है कि अर्थग्रहणका व्यापार होनेपर भी फिर यदि इन्द्रियज्ञान स्मरणागत शब्दयोजनाकी अपेक्षा करता है तो वह अर्थ शब्दयोजनासे व्यवहित हो गया। इस उपालम्भको क्षणिकवादके अभिमतमें भी कह सकते हैं कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष होनेपर फिर यदि सविकल्प ज्ञान शब्दयोजनाकी अपेक्षा करता है तो वह प्रत्यक्ष शब्दयोजनासे व्यवहित हो गया। ऐसी स्थितिमें सविकल्प ज्ञानसे साक्षात् न तो पदार्थका निर्णय हुआ और न प्रत्यक्षका निर्णय हुआ। सविकल्प ज्ञान और अर्थज्ञानके बीच शब्द योजना आ पड़ी तथा सविकल्पज्ञान और प्रत्यक्ष इनके बीच भी शब्द योजना आ पड़ी।

सविकल्प ज्ञानको शब्द योजना सापेक्ष माननेका एकान्त करनेपर तत्त्व निर्णयकी अनुपपत्ति—और भी देखिये जैसे सौगतमतानुयायी शब्दाद्वैतवादियोंके प्रति यह दूषण देते हैं कि जैसे जो निर्विकल्प अर्थ स्मरणागत शब्दानुयोजन से पहिले शब्दानुविद्ध अर्थ विषयक इन्द्रियज्ञानका उत्पन्न करने वाला नहीं वह बादमें भी स्मरणागत शब्दानुयोजन होनेपर भी उस इन्द्रियज्ञानका अजनक याने न उत्पन्न करने वाला रहेगा, क्योंकि निर्विकल्पमें इन्द्रिय ज्ञानव्यापारकी विशेषता नहीं है और इसी कारण अर्थका विनाश होनेपर भी इन्द्रियज्ञान हो जावे। जैसे यह दूषण सौगत शब्दाद्वैतवादियोंको देते हैं इसी प्रकार सौगतमतमें भी यह दूषण आता है कि जो इन्द्रियज्ञान स्मरणागत शब्दयोजनासे पहिले सामान्य व्यवसायका अजनक है वह बाद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में भी शब्द योजना होनेपर भी सामान्यव्यवसायकी अविशेषता होनेसे सामान्यव्यवसायका अजनक रहा और इसी कारण इन्द्रियज्ञानका अभाव होनेपर भी सामान्य व्यवसाय हो जावे क्योंकि इन्द्रियज्ञान पहिलेकी तरह पीछे भी सामान्यव्यवसायका अजनक रहा आया,सो उसके बिना भी दर्शन हो जावे यह गी है यह निर्णय हो जावे निष्कर्ष यह है कि इस प्रकार दर्शनसे निश्चय संभव नहीं होता अतः इतने हेतु देनेपर भी कि नीलादि स्वलक्षणका अवलम्बन है, उपादानभूत पूर्वक्षण ज्ञानसे उत्पन्न हुआ है, निर्विकल्पज्ञानसे सरूपता है । इनकी अविशेषता होनेपर भी क्षणिकत्वादियोंके निराकार दर्शनमें अपने विषयके परिज्ञानका नियम नहीं सिद्ध होता ।

स्वलक्षण और सामान्यमें अत्यन्त भेद माननेपर अनभिलाप्य स्वलक्षण का अनुभव होनेपर अभिलाप्य सामान्यकी स्मृतिकी अनुपपत्ति—और भी देखिये– सौगतोंके अनभिलाप्य, अवक्तव्य स्वलक्षण (विशेष) का अनुभव होनेपर अभिलाप्य, वक्तव्य (सामान्य) की स्मृति कैसे हो जावेगी, क्योंकि स्वलक्षणका सामान्यमें तो अत्यन्त भेद है, जैसे कि सह्याचल और विन्ध्याचलमें अत्यन्त पार्थक्य है सो सह्याचलके जाननेपर विन्ध्याचलकी स्मृति हो ही जावे यह तो नहीं होता । शंकाकार कहता है कि विशेष और सामान्यमें एकत्वका अध्यवसाय होनेसे विशेषका अनुभव होनेपर सामान्यका स्मरण हो जाना युक्त ही है । इसके समाधानमें यह पूछा जा रहा है कि बताओ, विशेष और सामान्यमें एकत्वका अध्यवसाय किस प्रमाणसे हो जाता है ? प्रत्यक्षसे (निर्विकल्प प्रत्यक्षसे) तो विशेष व सामान्यमें एकत्वका निश्चय नहीं हो सकता है क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्षको तो स्वलक्षणका (विशेषका) ही विषय करने वाला माना है सो वह सामान्यको विषय ही नहीं करता । निर्विकल्प प्रत्यक्षके पश्चात् होने वाले सविकल्प ज्ञानसे अथवा अनुमानसे भी विशेष व सामान्य के एकत्वका अध्यवसाय (निश्चय) नहीं हो सकता क्योंकि सविकल्प ज्ञानको व अनुमान प्रमाणको सौगतोंने विशेषका विषय करने वाला नहीं माना है । तथा विशेष और सामान्य दोनोंको विषय करने वाला प्रत्यभिज्ञान जैसा कोई भी प्रमाण सौगतोंने माना नहीं । यदि विशेष व सामान्य इन दोनोंमेंसे किसी भी एकको विषय करने वाले ज्ञान द्वारा उन दोनोंके एकत्वका निश्चय करना मान लिया जावे तो इसमें बड़ी विडम्बनायें बनेंगी, तब तो दूरवर्ती व निकटवर्ती पदार्थोंमें भी एकत्व इन्द्रियज्ञानसे हो जावे, भूत व वर्तमान पदार्थोंमें भी एकत्व ज्ञान हो जावे सूक्ष्म व स्थूल पदार्थोंमें भी एकत्व ज्ञान हो जावे । और भी देखिये—शब्द और अर्थमें जो वाच्यवाचक रूप सम्बन्ध है अस्वाभाविक माननेपर अर्थमात्रको देखता हुआ सौगतानुयायी शब्दका स्मरण कैसे कर लेगा तथा शब्दको सुनता हुआ अर्थका कैसे स्मरण कर लेगा जिससे कि यह सब निश्चय उनके सिद्ध हो जावे कोई भी पुरुष मात्र सह्याचलको देखता हुआ विन्ध्याचलका स्मरण नहीं कर लेता ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वलक्षणका अनुभव होनेपर सामान्यकी स्मृति सिद्ध करनेके लिये स्वलक्षण और सामान्यमें एकत्वाध्यवसायका शंकाकार द्वारा कथन व उसका निराकरण – शंकाकार कहता है कि शब्दका विकल्पके साथ याने सविकल्प ज्ञानके विषयभूत नीलादिक अर्थके साथ अर्थात् सामान्यके साथ तदुत्पत्ति रूप सम्बन्ध माना गया है, इस कारणसे शब्दका अथवा विकल्पका दृश्य पदार्थके साथ याने स्वलक्षणके साथ एकत्वका निश्चय हो जाया करता है और इसी कारण विशेषका अनुभव होनेपर व्यवहारी पुरुष शब्दका अथवा नीलादिक अर्थका अथवा विकल्प विषयका स्मरण कर लेते हैं प्रवृत्ति भी इसी तरह देखी जाती है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात युक्ति-संगत नहीं है क्योंकि किसी भी प्रमाणसे दृश्य और विकल्पका एकत्व निश्चय नहीं हो सकता है उसका कारण यह है कि दृश्य तो है क्षणिक जो निराकार दर्शनका विषय-भूत हो उसका नाम दृश्य है, वह है स्वलक्षणरूप, उसे माना गया है क्षणिक और सामान्य है कुछ काल ठहरने वाला। जो सविकल्प ज्ञानका अथवा अनुमान प्रमाणका विषयभूत हो वह सामान्य कहलाता है। तो दृश्यका स्वभाव और है, सामान्यका स्वभाव उससे भिन्न है, ऐसे भिन्न स्वभाव वाले दृश्यका और विकल्पका अर्थात् विक-ल्प ज्ञानमें आये हुए सामान्य विषयका एकत्व कभी भी नहीं हो सकता है। इस कारण प्रत्यक्ष प्रमाणमें स्वत: ही निश्चयात्मकता मानना चाहिए न कि नाम जाति आदिककी योजनाकी अपेक्षासे अथवा प्रत्यक्षकी प्रमाणतामें निश्चय करनेके लिए सविकल्प ज्ञान उठने चला जाय, ऐसा क्रम न करना चाहिए।

अक्षज्ञानमें कथंचित् व्यवसायात्मकत्वका अभाव माननेपर दृष्ट सजा-तीयकी स्मृतिकी अनुपपत्ति और भी देखिये! चक्षु आदिक इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है वह यदि किसी भी प्रकार व्यवसायात्मक नहीं माना जाता नील आदिक पदार्थोंको ग्रहण करता इस रूपसे भी सत्के प्रत्यक्षको निश्चयात्मक नहीं माना जाता तो फिर दृष्ट सजातीयकी भी स्मृति नहीं हो सकती क्षणिकवादमें प्रत्येक पदार्थ क्षणिक माना गया है लेकिन किसी भी पदार्थका जो रूपज्ञान हो रहा है और समझमें आ रहा है कि यह तो वही है जो अभी पहिले था तो ऐसे ज्ञानमें जो सिद्धा-न्तका कारण यह बताया गया कि दृष्ट सजातीयकी स्मृति हुई। वर्तमानमें जो कुछ देखा गया है उससे सजातीय पदार्थका स्मरण हुआ है और ऐसा स्मरण होनेका कारण भी यह बताया कि पदार्थमें यह हुआ करता कि पहिला पदार्थ अपना आकार नये पदार्थको सौंपकर नष्ट हो जाता है। तो अब वर्तमानमें जो कुछ देखा गया है उसे देखकर उसके पूर्वकी जो कि उसके समान है उसकी स्मृति होती है लेकिन अब चक्षु आदिक ज्ञानको किसी भी प्रकार जब निश्चयात्मक नहीं माना तो यह स्मृति नहीं हो सकती। जैसे कि जो पुरुष दानमें निरत है अथवा हिंसासे विरक्त है उस पुरुषको स्वर्गादिक फल इससे उत्पन्न होते हैं ऐसा सामर्थ्यका ज्ञान नहीं होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अक्षप्रत्यक्षसे मानसप्रत्यक्षके उत्पादकी अनुपपत्ति शंकाकार कहता है कि निश्चयात्मक मानसिक प्रत्यक्षसे इष्टके सजातीयका स्मरण हो जायगा, अर्थात् जो पदार्थ दीखा वह तो निराकार दर्शन हुआ। वहाँ तो निश्चय होता नहीं पर उसके बाद निश्चय होता है तो उस समय निराकार दर्शनके द्वारा देखा गया पदार्थ रहता नहीं, क्योंकि पदार्थ क्षणिक माना गया है। किन्तु इस मानसिक प्रत्यक्षके द्वारा ज्ञान जरूर हो जाता कि यह अमुक पदार्थ है। तो वहाँ हुआ क्या कि वर्तमानमें देखे पदार्थसे सजातीय पदार्थकी स्मृति हुई है। तो यों निश्चयात्मक मानसिक प्रत्यक्षसे इष्ट सजातीयकी स्मृति हो जाती है। समाधानमें कहते हैं कि देखिए—प्रत्यक्ष ज्ञानसे दर्शन करनेके पश्चात् निश्चयात्मक मनोविज्ञानकी जो उत्पत्ति माना है सो इसमें यह विरोध आता है कि अनिश्चयात्मक इन्द्रियज्ञानसे निश्चयात्मक मानसिक ज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो गई? जैसे कि अनिश्चयात्मक इन्द्रिय ज्ञानसे जो कि निराकार दर्शन के बाद उत्पन्न होता है उस इन्द्रियज्ञानसे व्यवसायात्मक विकल्पकी उत्पत्ति नहीं होती। क्योंकि अविकल्प अथवा अव्यवसायी ज्ञान और व्यवसायी ज्ञान इन दोनोंका स्वभाव भिन्न है। तब स्वयं निश्चयात्मक इन्द्रियज्ञानसे नीलादिक पदार्थका व्यवसाय हो जाता है ऐसा मान लीजिए और उस क्षणक्षयका भी और स्वर्ग प्रापण शक्तिका भी फिर व्यवसाय होने लगेगा, इस कारणसे इन्द्रियज्ञान व्यवसायात्मक नहीं माना गया है। ऐसा यदि शंकाकार कहे तो फिर यह भी मान लीजिए कि इस ही कारण अर्थात् मानस प्रत्यक्ष जो कि स्वयं निश्चयात्मक है उसके द्वारा नीलादिकका व्यवसाय होनेपर फिर क्षणक्षय और स्वर्गप्रापण शक्ति आदिकका भी निश्चय उसीमें ही मानना पड़ेगा इस ही कारण मानसिक प्रत्यक्षको भी निश्चयात्मक मत मानो अथवा मानसिक प्रत्यक्ष निश्चयात्मक न रहेगा। यदि कहो कि मानसिक प्रत्यक्ष तो क्षणक्षय आदिकको विषय नहीं करता है। क्योंकि क्षणक्षय तो निर्विकल्प प्रत्यक्षका विषय है। निराकार दर्शन ही उसका प्रतिभास करनेमें समर्थ है अतएव मानसिक प्रत्यक्ष क्षणक्षय स्वर्ग प्रापण शक्ति जैसी परोक्ष बातोंको विषय न करनेके कारण मानसिक प्रत्यक्ष क्षणक्षय आदिकका व्यवसायी न रहेगा। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर इसी कारण अर्थात् अक्ष्य ज्ञान भी क्षणक्षयको विषय नहीं करता इस कारण इन्द्रियज्ञानमें भी व्यवहार सविकल्पपना न रहा?

इन्द्रियजज्ञानको कथंचित् व्यवसायात्मक माननेपर इसी प्रकार संवादकता होनेसे सभी ज्ञानोंमें व्यवसायात्मकताकी सिद्धि—अब यदि इन सब दोषोंके निवारणके अर्थ यह मान लेते हो कि इन्द्रियज्ञान कथंचित् व्यवसायात्मक है कि इन्द्रियज्ञान नीलादिक पदार्थोंका ग्रहण तो करता है इस रूपसे वह निश्चयात्मक है तब तो मानसिक प्रत्यक्षकी कल्पना भी न होना चाहिए। क्योंकि प्रयोजन न रहा मानसिक प्रत्यक्ष माननेका जो कुछ भी प्रयोजन था याने निर्णय हो जाना पदार्थका वह तो इन्द्रियज्ञानसे ही सिद्ध हो गया है। यहाँ तकके प्रकरणसे यह निर्णय

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रखना चाहिए कि इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्षज्ञान ये सभी स्वय निश्चयात्मक है। किसी अन्य योजनाकी अपेक्षा रखकर निश्चयात्मक नहीं है। और जैसे इन्द्रियज्ञान स्वय निश्चया-त्मक है इसी प्रकार मानसिक प्रत्यक्ष भी स्वयं निश्चयात्मक है। जो लोग मानसिक प्रत्यक्षको अव्यवसायी मानते हैं, अनिश्चयात्मक मानते हैं, उनका निश्चय सही नहीं है।

निर्विकल्प अध्यक्षज्ञानसे अभ्यासादि कारणसे दृष्टसजातीयके स्मरणका युक्त बतानेका शंकाकार द्वारा कथन— अब शंकाकार कहता है कि इन्द्रियज्ञान यद्यपि निर्विकल्प है। निर्विकल्प होनेपर भी अभ्यास अथवा प्रकरणको समझ लेनेमें चतुरता था उस पदार्थको जाननेकी रुचि अथवा उस पदार्थकी चाह, इन सब कारणों के कारण उस इन्द्रियज्ञानसे भी दृष्ट सजातीयकी स्मृति बन जाती है। यदि सविकल्प प्रत्यक्ष होनेपर भी अभ्यास प्रकरण चातुर्य अथवा इच्छा आदिक न हो तो वहाँ भी स्मरण नहीं होता। जैसे प्रतिज्ञादियोंके द्वारा बताये गए समस्त वर्ण पदादिकका स्मरण भी तो होता है जब कि कुछ चातुर्य हो और उस पदार्थकी चाह हो, उसके अभावमें तो वर्ण पदादिकका भी स्मरण नहीं होता और अभ्यास आदिकके अभावमें श्वासोच्छ्वास आदिककी संख्याका भी निश्चय नहीं हो पाता। इससे इन्द्रिय ज्ञान यद्यपि निर्विकल्प है, फिर भी अभ्यास होनेके कारण प्रकरणकी बात समझनेमें चतु-राई होनेके कारण और पदार्थकी चाह होनेके कारण दृष्ट सजातीयमें स्मरण होना युक्तिसंगत है। सविकल्प प्रत्यक्षके द्वारा पदार्थका निश्चय होनेपर भी किसी पुरुषको अभ्यास आदिकका अभाव हो तो वहाँ भी पुनः उसकी स्मृति नहीं हो सकती। निष्कर्ष यह है कि किसी बातकी स्मृतिके लिये अभ्यास और उसकी चाह और बुद्धि चातुर्य होना आवश्यक है, इसी कारण अब प्रत्यक्ष ज्ञानको सविकल्प मानना सार्थक नहीं है। प्रत्यक्ष निर्विकल्प भी रहे तो भी अभ्यास आदिकके कारण उससे दृष्ट सजा-तीयकी स्मृति हो जाती है फिर उससे सविकल्प ज्ञान होते, व्यवहार चलता। अतः अक्ष प्रत्यक्षको सविकल्प माननेकी सफलता है। ऐसा सौगत सिद्धान्तके अनुयायी कोई प्रज्ञाकर कहते हैं।

प्रत्यक्षप्रमाणको अभ्यासस्वभावरहित माननेपर उपाय द्वारा भी उसमें अभ्यासके योगकी असंभवता बताते हुए प्रज्ञाकरकी उक्त शंकाका समाधान प्रज्ञाकरकी उक्त बात युक्तिसंगत नहीं है। जो सर्वथा निरंशरूप एक स्वभाव हो ऐसा प्रत्यक्ष माना गया है ऐसे प्रत्यक्षको और प्रत्यक्षको ही क्या, जो भी सत् है प्रत्येक सत् निरंश माना गया है सौगत सिद्धान्तमें। तो निरंश प्रत्यक्षका किसी भी पदार्थके विषय में अभ्यासका अथवा अनभ्यासका एक बार भी प्रसंग नहीं आ सकता है। प्रत्यक्षमें अभ्यास कैसे ? वह तो निरंश है, क्षणिक है। अभ्यास तो वहाँ सम्भव है जहां ज्ञान कुछ काल टिका रहे, लेकिन जहाँ ज्ञान क्षणिक है वहां अभ्यास सम्भव नहीं है।

Version 1

शंकाकार कहता है कि अनभ्यासकी व्यावृत्तिसे उस प्रत्यक्षमें अभ्यासका योग हो जायगा। जैसे कि पदार्थका ज्ञान इसी प्रकार होता है कि अन्यका अपोह करदे। जैसे गौ जाना गया तो गौ शब्दने सीधा गौ अर्थको नहीं जान लिया गया, किन्तु गायके अतिरिक्त अन्य पदार्थ नहीं है ऐसी अगौ व्यावृत्तिसे गौको जाना गया है, ऐसे ही जब अनभ्यास न रहा तो अभ्यास अपने आप सिद्ध हो गया सो उसका यहाँ योग किया गया। समाधानमें कहते हैं कि वाह री बुद्धि ! यह तो बताओ कि जिसमें अभ्यास जोड़ा जा रहा है प्रत्यक्ष ज्ञानमें, यहाँ अभ्यास जोड़ा जारहा है तो वह जोड़ा जा रहा है अनभ्यासकी व्यावृत्तिसे याने अनभ्यास न रहा तो उसमें अभ्यास स्वयं सिद्ध होगया इस तरह अन्य व्यावृत्तिसे अभ्यास मानते हो तो जरा यह तो बतलाओ कि उस प्रत्यक्ष ज्ञानमें अभ्यासका स्वभाव है या नहीं ? यदि उसमें अभ्यासका स्वभाव नहीं है तो अन्यकी व्यावृत्तिसे भी अभ्यासका योग नहीं आ सकता। और कदाचित् यह आग्रह कर लो कि न रहे वह स्वभाव फिर भी उसमें अन्य व्यावृत्ति आती है। तो देखो ! फिर तो अग्निमें अशीतपनेकी व्यावृत्ति हो जानी चाहिए। अशीतका अर्थ है शीतपना नहीं, मायने गर्मी। उस गर्मीकी व्यावृत्ति आ जायगी, क्योंकि अब अग्निमें गर्मीका स्वभाव न मानकर जिस चाहेकी व्यावृत्ति मानते हो तो अग्निमें अगर्मीकी व्यावृत्ति कहते हो तो हम कहते कि अग्निमें अशीतकी व्यावृत्ति हो गई। यदि अग्निमें गर्मी स्वभाव नहीं है तो अगर्मीकी व्यावृत्ति ही क्यों कहते ? अशीतकी व्यावृत्ति कहदो अर्थात् गर्मी ही खतम हो जायगी।

प्रत्यक्ष प्रमाणको अभ्यास स्वभाव माननेपर अनभ्यास व्यावृत्तिकी कल्पनाकी निष्प्रयोजनता और प्रमाणकी स्वयं व्यवसायात्मकताकी सिद्धि— यदि प्रत्यक्ष प्रमाणका अभ्यास स्वभाव मानते हो तो लो—सब बात बन ही गई। अब प्रत्यक्ष प्रमाण अभ्यास स्वभाव वाला हो गया। उसमें अन्यकी व्यावृत्तिका कल्पना इसीलिए तो की जानी थी कि प्रत्यक्षमें अभ्यासका योग आ जाय। अब प्रत्यक्षको अभ्यास स्वभाव वाला ही मान लिया गया तो अभ्यासका योग स्वभावतः ही हो गया, अब अनभ्यासकी व्यावृत्ति माननेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि प्रतिनियत जो भी स्वभाव है वह स्वभाव स्वयं ही अन्यकी व्यावृत्तिरूप है प्रत्येक पदार्थ अपना एक असाधारण स्वभाव रखता है और असाधारण स्वभाव होनेके ही कारण यह बात वहाँ अपने आप सिद्ध होती है कि उस स्वभावके अतिरिक्त अन्य स्वभाव नहीं है। प्रत्येक पदार्थ सदसदात्मकरूप होता है, अपने स्वरूपसे सत् है और पररूपसे असत् है। अपने स्वरूपसे सत् है इसीमें यह बात आ जाती है कि वह पररूप। असत् है। अब वहाँ यह मानना कि पररूपसे असत् है इसकी कृपासे इसमें सत्त्वका योग हुआ है ऐसा कौन विवेकी मानेगा ? इसी प्रकार ज्ञानमें स्वयं अभ्यासका स्वभाव पड़ा हुआ है इसलिये अभ्यासका वहाँ योग है। अभ्यास भी चलता है। अब उस अभ्यासको यों मानना कि अनभ्यासकी व्यावृत्ति होती है इस कारण उस ज्ञानमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अभ्यासका योग जोड़ा गया है ऐसा मानना एक मोहका ही फल है। अपना पक्ष रखना है, इस आग्रहमें ही ऐसी विडम्बनाकी वृत्ति की जा सकती है।

स्याद्वाद शासनमें स्मृतिके अभ्युदयकी प्रामाणिक व्यवस्था—अब देखिये सविकल्प प्रत्यक्ष ज्ञान मानने वाले स्याद्वादियोंके सिद्धान्तसे स्मृतिका अभ्युदय किस प्रकार होता है स्याद्वाद शासनमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके चार प्रकार माने गए हैं- अवग्रह ईहा, अवाय और धारणा। इनमें अवग्रह ईहा अवाय ये तीन ज्ञान अनभ्यासात्मक है, किन्तु चौथा जो धारणा नामक ज्ञान है वह अभ्यासात्मक है। जब धारणा नामक ज्ञान न हो पाया तो दूसरे लोगोंके द्वारा समस्त वर्ण पद आदिक भी कहे जायें लेकिन अवग्रह ईहा, अवाय इन तीनों ज्ञानके हो जानेपर भी स्मरण नहीं होता। और जब धारणा नामक ज्ञान बन जायगा तो उसके सद्भावमें दूसरे लोग वर्ण पद आदिक जो कुछ भी व्यवहार करते हैं उन सबसे स्मरण हो ही जाता है। सब स्थितियोंमें संस्कारके माफिक स्मरण होना माना गया है। और, संस्कार रखने वाला ज्ञान है धारणा ज्ञान। संस्कारके अनुकूल स्मरण माना गया है, इसकी झलक अनेक दर्शनोंमें हो सकती है। नीलादिक पदार्थोंमें जैसे शब्दका संस्कार होनेसे शब्दोंके द्वारा अभिलापकी स्मृति हो जाती है इसी प्रकार संस्कारके माफिक ही सब जगह स्मृति मानी गई है।

प्रत्यक्षमें अभिलाप संस्कारका विच्छेद माननेपर तत्त्व निर्णय विषयकी प्रतिपाद्यताकी असिद्धि—और भी देखिये ! यदि निर्विकल्प ज्ञानका अथवा उसके विषयमें शब्दोंके संस्कारका विच्छेद कर दिया जाय अर्थात् शब्द संस्कारका योजन न माना जाय या उनका वाच्य वाचक सम्बन्ध न स्वीकार किया जाय तो फिर बतलाओ कि सविकल्प ज्ञानमें आये हुए पदार्थ और शब्द इनके साथ संयोजन किस प्रकार हो सकेगा ? जिससे कि सामान्य शब्दके द्वारा प्रतिपाद्य बन सके। यथार्थ तो यह है कि प्रत्यक्षसे ग्रहण किए गए ही, स्वलक्षण परम्परासे संश्लेष सहित प्रमाणरूप विषय ही, अन्यसे व्यावृत्त जो अपनी मुद्रा रखे हुए है अर्थात् सामान्यसे पृथक प्रत्यक्ष गृहीत स्वलक्षण ही जब साधारण आकाररूपसे प्रतिभासमें आता है अर्थात् यह गौ है, यह गौ है आदिकरूपसे जब प्रतिभासमें आता है तो वह ही सामान्य विकल्प और शब्दके योजनके द्वारा शब्द द्वारा प्रतिपाद्य कहा जाता है।

एक पदार्थकी अनेक प्रमाणगोचरता—यहां ऐसा नहीं है कि प्रत्यक्षका विषयभूत पदार्थ अन्य हो और सविकल्प ज्ञानका विषयभूत पदार्थ अन्य हो और सविकल्प ज्ञानका विषयभूत पदार्थ अन्य हो। वह ही एक विषय जब प्रत्यक्षसे ग्रहण किया गया है तो वह अन्य व्यावृत्त अर्थात् विशेष मात्र प्रतिभासमें आ रहा है। किन्तु वह ही पदार्थ जब साधारण आकार रूपसे प्रतिभासमें आता है तो वही सामान्य कहलाता है और शब्द द्वारा प्रतिपाद्य बन जाता है। इस कारण विषय वह एक है,

Version 1

निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ग्रहणमें आ रहा, वह स्थिति निर्विकल्प प्रत्यक्षकी है और जब उसकी आकार आदिक ज्ञानमें आ रहा तो वह स्थिति सविकल्प ज्ञानकी है। यहाँ यह शंका न करना चाहिए कि जब ग्राहक प्रमाणके प्रतिभासमें भेद है अर्थात् प्रत्यक्ष द्वारा जैसा प्रतिभास होता है वह जुदे प्रकारका है और स्मृति द्वारा जैसा प्रतिभास होता है वह जुदे प्रकारका है। तो यों प्रतिभासभेदसे विषय स्वभावमें भी भेद मानना चाहिए, फिर विषय स्वभावमें अभेदका अभाव हो जायगा यह बात नहीं कह सकते। क्योंकि एक साथ एक अर्थमें जुड़ा हुआ प्रत्यक्ष एक तो निकटवर्ती पुरुषको हो रहा है, एक दूरवर्ती पुरुषको हो रहा है। तो दोनोंके ज्ञानका विषय तो वह एक ही पदार्थ है। किन्तु एकके तो स्पष्ट ज्ञात हो रहा, दूसरेको अस्पष्ट समझमें आ रहा। तो यों प्रतिभास भेद हो जानेसे क्या वहाँ पदार्थ अन्य अन्य बन गया। तो जैसे एक बारमें ही एक ही पदार्थका जैसे वृक्षका ही पास खड़े होने वाले पुरुषने ज्ञान किया और दूर खड़े होने वाले पुरुषने ज्ञान किया तो स्पष्ट और अस्पष्ट रूपसे वहाँ प्रतिभास भेद हो रहा है। परन्तु वृक्ष वह एक है, पदार्थके स्वभावमें भेद नहीं है। उसकी एकताका वहाँ उल्लंघन नहीं है। ऐसे ही समझियेगा कि ग्राहक प्रमाण दो हैं इस समय प्रत्यक्ष और स्मरण और प्रत्यक्ष प्रतिभास अन्य प्रकारसे हैं और स्मृतिज्ञानके प्रतिभास अन्य प्रकारसे हैं ? जैसे प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्पष्ट प्रतिभास हो रहा है और स्मृतिज्ञान द्वारा अस्पष्ट प्रतिभास हो रहा है तो स्पष्ट और अस्पष्ट रूपसे प्रतिभासका भेद होनेपर प्रत्यक्षज्ञानने जिसको विषय किया उस हीको स्मरणज्ञानने विषय किया। उन दोनोंके विषयभूत पदार्थोंमें भेद नहीं है। तो इस प्रकार वह पदार्थ एक स्वभाव वाला सिद्ध हो गया अथवा कहो कि स्वलक्षण विषय एक स्वभाव वाला सिद्ध हो जाता है।

वस्तुकी कथंचित् अभिधेयताकी सिद्धिकी सर्वसम्मतता—अब और विचार कीजिये अस्पष्ट प्रतिभास वाले स्वलक्षणमें अथवा शब्द विकल्पके विषयभूत घटादिक पदार्थोंमें आखिर उसके संकेतका व्यवहार तो सोचना ही पड़ता है संकेतका व्यवहार जो बनाया गया है उस नियमकी कल्पना होनेपर तो यह बात प्रकट सिद्ध हो जाती है कि वस्तु कथंचित् अनभिलाप्य कहा है फिर भी निराकार दर्शनको समझनेके लिए किन्हीं शब्दों द्वारा संकेत तो किया ही जाता है तो वह कथंचित् अभिधेय ही तो बन गया। जहाँ तक हो सकेगा उस निर्विकल्प प्रत्यक्षके सम्बन्धमें उसका ज्ञान करानेका प्रयत्न किया गया लेकिन कुछ संकेत होनेपर भी उसका स्पष्ट प्रतिबोध नहीं कराया जा सका इस कारण उसे अनभिलाप्य कह दिया, किन्तु किन्हीं भी शब्दोंमें उनके संकेतका व्यवहार तो बनता ही है इस कारण वस्तु कथंचित् अभिलाप्य है यह बात युक्तिसिद्ध है।

अवाच्यताके एकान्तका सहज निराकरण— अब उक्त समस्त कथन होनेके बाद अवाच्यताके एकान्तकी बातका समाधान कर लेना चाहिए। देखिये !

http://www.jainkosh.org

रूपादिक स्वलक्षणमें शब्द नहीं हैं ऐसा ही तो मानकर क्षणिकवादी कहते हैं कि वह अवाच्य ही है। तो ऐसा कहने वाले क्षणिकवादियोंके सिद्धान्तमें यह प्रसंग आयगा कि प्रत्यक्ष प्रमाणमें अर्थका भी तो अभाव है। अर्थ है जुदा पदार्थ और प्रत्यक्ष है ज्ञान-क्षण। तो प्रत्यक्षमें अर्थका अभाव होनेसे फिर अर्थ प्रत्यक्षमें ज्ञेय भी न हो सकेगा क्यों कि अब यहाँ यह स्वीकार कर लिया है कि रूपादिक स्वलक्षणमें अर्थात् अर्थमें शब्द नहीं है इस कारण वह अवाच्य है। तो ऐसे ही यहाँ कह लीजिए कि प्रत्यक्षमें अर्थका अभाव है इस कारणसे अर्थ अब ज्ञेय नहीं हो सकता। यदि कहो कि रूपादिक पदार्थ तो कथंचित् ज्ञेय हैं ही, नीलादिकके रूपसे तो वहाँ बराबर प्रतिभास हो ही रहा है तो इस तरहसे अभिलाप्यपना भी सिद्ध कर लीजिए तब स्वलक्षण रूप अर्थ प्रत्यक्षका आधार बन गया और प्रत्यक्षरूपसे भी उपलभ्यमान हो गया और इस तरहसे जब अभिलाप्यपनेकी सिद्धि हो गयी तो अब प्रकृत जो विषय चल रहा है कि सर्वथा अवाच्यताका एकान्त नहीं है उसकी सिद्धिमें दूषण देना निष्प्रयोजन है।

सर्वथा अवाच्यके वचनकी असमञ्जसता—यह जान ही लेना चाहिए कि अवाच्यताका एकान्त करनेपर अवाच्य है इस प्रकारसे भी नहीं बोला जा सकता। भला विचारो कितनी असमञ्जसताकी बात है कि अवाच्यताका तो एकान्त कर रहे और अवाच्य है ऐसा शब्द बोल रहे तो सर्वथा अवाच्य कहाँ रहा? इसमें तो स्ववचन विरोध आयगा। जैसे कोई पुरुष कहता है कि स्वलक्षण अनिर्देश्य है तो अब सर्वथा अनिर्देश्य कहाँ रहा? उसका लक्षण बना ही तो लिया कि स्वलक्षण अनिर्देश्य होता है। तो जैसे स्वलक्षण अनिर्देश्य हैं यह वचन स्ववचन विरुद्ध होनेसे असमीचीन है, इस प्रकार अवाच्यताका एकान्त है, इस प्रकार उसे अवाच्य शब्दसे बोलना यह भी स्ववचनविरुद्ध बात है। तो जैसे स्वलक्षण अनिर्देश्य है ऐसा अवाच्यताका एकान्त करनेपर इन शब्दोंसे भी नहीं कहा जा सकता, इसी प्रकार प्रत्यक्षज्ञान कल्पना से रहित है अनभिलाप्यका संसर्ग न माननेपर अर्थात् शब्दोंद्वारा प्रतिपाद्य न कहनेपर विकल्पोंकी उत्पत्ति ही न हो सकेगी। सविकल्प ज्ञान हो न बन सकेगा और, जब अभिलापका संसर्ग मान लेते हैं तब सविकल्पपना भी सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार अवाच्यताका एकान्त करना भी एक मिथ्या आग्रह है अवाच्यताके एकान्त में कुछ भी बोलना युक्त नहीं हो सकता है।

प्रभुके स्याद्वादशासनकी निर्दोषताके प्रतिपादनके प्रसङ्गमें भावैकान्त व अभावैकान्तका निराकरण—इस प्रकरणमें यह बताया गया है कि हे प्रभो! तुम्हारे मतमें यथार्थ विषयका प्रतिपादन विरुद्ध नहीं है, अतएव प्रभु तुम्हारे ही वचन निर्दोष हैं और निर्दोष होनेके कारण आपमें ही सर्वज्ञता है और आप ही वंदनीय हैं! इस प्रकरणसे सम्बन्धित यह बात चल रही है कि कैसे समझा कि प्रभुके वचन निर्दोष हैं? उस ही निर्दोषताकी प्रसिद्धिके लिए कुछ सिद्धान्तोंका वर्णन चल रहा है। जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वप्रथम भाव और अभावकी बात चलायी गई। वस्तु भावात्मक ही है ऐसा कुछ दार्शनिकोंका कथन है। अब यहां विचार करनेकी बात है कि वस्तुको यदि केवल भावस्वरूप ही मान लिया जाय तो उसका अर्थ यह होगा कि समस्त पदार्थ बस भावरूप ही हैं। सब कुछ सब रूप हो जायगा। वहाँ फिर भावान्तर सत्ता न रहेगी क्योंकि पदार्थ सभी सर्वथा भावस्वरूप हैं। तो पदार्थोंकी सत्ता कायम रहे इसके लिए यह मानना पड़ेगा कि प्रत्येक पदार्थ अन्य पदार्थके अभावरूप है। है भी यही बात। वस्तुतः भी यही समझमें आता है। हम किसी भी पदार्थका जब निर्णय करते हैं, कथन करते हैं तो वहाँ यह ज्ञानमें समाया ही हुआ है कि यह पदार्थ यह ही है। अन्य कुछ नहीं है। तो पदार्थको केवल भावस्वरूप मान लिया जाय तब तो अभाव न माननेके कारण सभी पदार्थ सभी रूप हो जायेंगे किन्तु ऐसा है तो नहीं, इस कारण पदार्थमें भाव एकान्तकी बात नहीं माना। तब कुछ लोग अभाव एकान्त मानते हैं पदार्थ अभाव स्वरूप ही है। तो अभाव स्वरूप माननेपर अर्थात् शून्यका ही तत्त्व माननेपर या पदार्थ स्वयं अन्य व्यावृत्तिरूप ही हैं अन्य प्रकार नहीं है इस तरह अभावका एकान्त माननेसे जब भाव नहीं माना तब फिर न ज्ञान रहा, न वाक्य रहा, न प्रमाण रहा। फिर कुछ सिद्धि कर सकनेकी वहाँ गुंजाइस ही नहीं रही। तो पदार्थ न केवल भावस्वरूप है और न केवल अभाव स्वरूप है, किन्तु भावाभावात्मक है।

भावाभावोभयैकात्म्यका निराकरण—अब भावाभावात्मक पदार्थ है, इसको कोई दार्शनिक यों सिद्ध करने लगे कि कोई पदार्थ तो भावस्वरूप है और कोई कोई पदार्थ अभावस्वरूप है। इसलिए पदार्थोंको भावात्मक और अभावात्मक दोनों प्रकारका मान लेना चाहिए। तो यह सिद्धान्त भी युक्तिसंगत यों नहीं है कि इस तरह भाव अभाव दोनों मान लिए जानेपर भी विवक्षित किसी भी पदार्थमें माना तो एक पक्ष ही गया है। तो यों निरपेक्ष भाव और अभाव भी नहीं बन सकता है, क्योंकि जो भावस्वरूप है उसमें भाव एकान्तका दूषण है। जो पदार्थ अभाव स्वरूप है उसमें अभाव एकान्त वाला दूषण है। तब कोई यह कह बैठे कि फिर वस्तु अवक्तव्य ही रही आये न उसे भावरूप कहो न अभावरूप कहो, न उभयरूप कहो। अनुभय है, अवक्तव्य है, तो यह एकान्त भी संगत नहीं होता, क्योंकि अवक्तव्य इस शब्द द्वारा भी वह वक्तव्य न हो सकेगा? यदि अवक्तव्यका एकान्त माना जाय।

स्याद्वादविधिसे वस्तुस्वरूपका दिग्दर्शन—उक्त प्रकारमें पदार्थका यह निर्णय हुआ कि वह स्यात् भावरूप है, स्यात् अभावरूप है। स्यात् उभयरूप है। स्यात् अवक्तव्य है, स्यात् भावरूप अवक्तव्य है, स्यात् अभावरूप अवक्तव्य है, स्यात् भावरूप अभावरूप अवक्तव्य है। इस प्रकरणमें कमसे कम इतना तो भले प्रकार समझ ही लेना चाहिए कि पदार्थ अपने स्वरूपसे भावस्वरूप है, परके स्वरूपसे अभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूप है। तब पदार्थ स्वरूपकी व्यवस्था स्याद्वाद शासनका आश्रय लिये बिना नहीं हो सकती। सो हे प्रभो! तुम्हारे शासनमें कहीं भी बाधा नहीं आती, आपके शासनके वचन युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी है अतः तुम ही निर्दोष हो, इस कारण हे प्रभो आप वन्दनीय हैं। अपने वस्तु स्वरूपका यथार्थ निर्णय करके असार पर पदार्थ व परभावोंसे उपयोग हटाकर सार निज सहज अन्तस्तत्त्वके संवेदनमें रहकर कर्मकलङ्कोंसे मुक्ति पा ली है, आप मोक्षमार्गके नायक हो और समस्त सत्के जाननहार हो! आपकी स्वाभाविक स्थिति सदा शाश्वत परिपूर्ण आनन्दमय है। आपकी भाव वन्दनासे उपासक कर्म कलङ्कोंसे छूटकर पवित्र हो जाते है, सदाके लिये सर्व संसार संकटोंसे छूट जाते हैं।

Version 1